बहती रेता

लेखक
श्री गुलदन

भारती साहित्य सदन

बहती रेता की भूमि

ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का यह प्रयास मेरे लिए पहला नहीं। इसी श्रेणी के मेरे उपन्यास पहले छप चुके हैं। अन्तर केवल यह है कि इस बार मैंने वर्तमान इतिहास को आधार न रखकर बौद्ध-राज्य के होने से कुछ ही काल पूर्व की पृष्ठ-भूमि को ले 'बहती रेता' उपन्यास लिखा है।

अन्य भी कई लेखकों ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। उनमें से बहुतों ने किसी ऐतिहासिक घटना अथवा ऐतिहासिक व्यक्ति को आधार बना अपनी कहानियों की रचना की है। मैंने ऐसा न कर केवल तत्कालीन समाज को ही इस उपन्यास का आधार बनाया है।

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के लगभग एक सौ वर्ष पश्चात्, वैशाली, मगध, अयोध्या, मल्ल इत्यादि राज्यों की अवस्था को और उस काल में वहाँ की समाज की अवस्था को इस उपन्यास की पृष्ठ-भूमि के रूप में लिया है।

यह वह काल था, जब बौद्ध मत और आर्य मत में संघर्ष आरम्भ हो गया था। उस समय गणराज्यों के अवगुणों का प्रकाश होकर साम्राज्यों का निर्माण होने लगा था। इस परिवर्तन काल के विषय में कुछ कहने के विचार से ही यह पुस्तक पाठकों की सेवा में अर्पित है।

देश की सांस्कृतिक ऐक्यता को भंग करने में जहाँ बौद्ध मत का हाथ था, वहाँ गणराज्यों की स्थापना का हाथ भी था। इस व्यवस्था ने, राजनीतिक विचार से, देश को अनेक छोटे-छोटे देशों में बाँटने का काम किया। परिणाम यह हुआ कि आर्य एक जाति और भारत एक देश की भावना विलुप्त होकर अनेक मत-मतान्तरों की सृष्टि हुई और

लिच्छवी, मागधी, मल्ल, किन्नर इत्यादि अनेक जातियों और अनेक देशों की भावना जाग उठी।

इस कहानी का काल वह है, जब अभी उक्त विनाशकारी भावनाओं का पूर्ण रूप से प्रचार नहीं हो पाया था। अभी जनता के असीम अधिकारों का भूत लोगों के सिर चढ़ने का श्रीगणेश ही हुआ था और विद्वान् पढ़े-लिखे सदाचारी लोगों की महिमा कम होनी आरम्भ ही हुई थी।

अधिकार योग्यता के आधार पर टिकते हैं। अयोग्य लोगों के हाथ में अधिकार अत्याचार का रूप धारण कर लेते हैं और अत्याचार विनाश का पूर्व रूप है। मनुष्य शरीर धारण करने से कोई व्यवस्थापक अर्थात् राजा नहीं हो सकता। इसके लिए योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है और इस योग्यता को आँकने के लिए जनमत माप-दण्ड नहीं है। जनमत प्रजातन्त्र अर्थात् गणराज्यों का आधार है और यही कारण है कि प्रजातन्त्र राज्यों में विद्वत्ता का अर्थ निर्वाचन में सफलता प्राप्त करना बन जाता है।

निर्वाचन में सफलता प्राप्त करने के लिए अधिक-से-अधिक लोगों के मनोद्‌गारों को उभार मत प्राप्त करना होता है। किसी भी समाज में विद्वानों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। अतएव जन-साधारण से मत प्राप्त करने के लिए ऐसी बातें करनी पड़ती हैं, जो अविद्वानों को प्रेरणा दे सकें। इसका प्रमाण है निर्वाचन काल में झूठ, भ्रमजनक और फूहड़ बातों का प्रचार।

ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध मत के प्रादुर्भाव से पूर्व देश के विद्वान् और अधिकारी लोगों के मन में विकार उत्पन्न हो गए थे। इससे विद्वत्ता तथा मन, वचन, कर्म की ऐक्यता का समन्वय नहीं रह सका था। राजा लोग ऋषि तथा महात्माओं के मत की अवहेलना करने लगे थे और अनार्य तथा विदेशी लोगों की प्रथाएँ यहाँ पर प्रचलित होने लगी थीं। राजा ईश्वर का रूप, क्रीत दासों की प्रथा और मनुष्य-मनुष्य में उनके देश तथा जाति के कारण ऊँच-नीच का भेद और इसी प्रकार की अनार्य

संस्कृति की अन्य बातें थीं, जिनका प्रचार भारत में हो रहा था। इनके प्रचार के विरुद्ध बौद्ध मत का आविर्भाव हुआ।

परन्तु बौद्ध मत, सुधार न होकर, वेद मत को सर्वथा मिथ्या कह, एक नवीन पथ का निर्माता बन गया। यह पूर्ण प्राचीन प्रथाओं, अनुभवों और भावनाओं के स्थान नवीन बातों की स्थापना करने वाला हो गया। सहस्रों वर्षों के अनुभव को खत्ते में डाल, नये परीक्षण करने का आह्वान बन गया। बौद्ध मीमांसा ब्राह्मण और क्षत्रियों की विरोधी होने के साथ साथ आर्य संस्कृति और वेद मत की विरोधी हो गई।

आर्य संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है विद्वान्, वीर तथा सदाचारी लोगों की मान-प्रतिष्ठा करना। बौद्ध मत में निर्वाण परम् लक्ष्य होने से विद्वत्ता तथा वीरता दूसरे स्थान पर हो गई। आर्य संस्कृति में समष्टिगत भावनाओं पर बल था और बौद्ध मत में व्यक्तिगत निर्वाण-प्राप्ति पर। बौद्ध मत में निर्वाण-प्राप्ति ही केवल साध्य है, आर्य संस्कृति में व्यक्ति समाज का अंग होने से सामाजिक व्यवस्था प्रथम साध्य वस्तु है।

बौद्ध मत ऋषियों की परम्परा को छोड़ महात्माओं की परम्परा का डालने वाला था। ऋषि का अर्थ ऋचाओं का द्रष्टा, अर्थात् विद्वान् व्यक्ति होता था और महात्मा का अभिप्राय, केवल मन, वचन, कर्म से एकरस व्यक्ति से है। दोनों में अन्तर है। मन, वचन, कर्म से एक, कोई मूर्ख भी हो सकता है। इसी प्रकार एक विद्वान् कुटिल भी हो सकता है। उस काल में दोनों का समन्वय अभिप्रेत था। वह नहीं हो सका।

उक्त बातों में से कुछ को कहानी के रूप में रखने का प्रयास ही उपन्यास है। उपन्यास होने से इसमें वर्णित नाम वास्तविक नहीं हैं। न ही किसी की निन्दा अथवा प्रशंसा करने से इसका प्रयोजन है। केवल-मात्र आन्दोलनों की प्रगति का वर्णन कर देना ही उद्देश्य है।

—गुरुदत्त

अनुक्रमणिका

एक

तक्षशिला विश्वविद्यालय

: १ :

तक्षशिला विश्वविद्यालय में वसन्त महोत्सव मनाया जा रहा था। फाल्गुन-सुदि-पञ्चमी से यह उत्सव आरम्भ होकर दस दिन तक चला करता था। विश्वविद्यालय के विद्यार्थी-गण, अध्यापक-वर्ग और देश-विदेशों से आये हुए प्रतिष्ठित दर्शक इस महोत्सव में सरुचि भाग ले रहे थे।

धनुष-बाण के करतब, युद्ध-व्यूह रचना, दौड़ इत्यादि के खेल, मल्ल-युद्ध, रथों की दौड़, खड्ग और भालों के युद्ध इत्यादि शारीरिक व्यायामों में प्रतियोगिता के प्रदर्शन होने में आठ दिन लग गए। इन सब दिनों में कार्यक्रम इतना रोचक और उत्तेजक रहा कि दर्शक उत्सुकता और उद्वेग से उत्तेजित हो उठते थे। इन खेलों में विद्यार्थी भाग ले रहे थे और अध्यापक, दर्शक तथा अन्य विद्यार्थी देखने वाले थे।

फिर पढ़ने-लिखने के विषयों में भी प्रतियोगिता हुई। इसमें कवि-समारोह, संगीत-सभा, राजनीतिक गोष्ठियाँ इत्यादि कार्यक्रम थे।

तक्षशिला विश्वविद्यालय के अधीन एक महिला महा-विद्यालय भी था। महिला-आश्रम पुरुष-गृह से आधे कोस के अन्तर पर था और वहाँ शिक्षिकाएँ भी महिलाएँ ही थीं। कभी-कभी विशेष उत्सवों पर अथवा अन्य समारोहों पर बालक-बालिकाएँ, पुरुष-स्त्रियाँ, अध्यापक-अध्यापिकाएँ एकत्रित होती थीं। परीक्षा के समय भी लड़कियाँ विश्वविद्यालय के मुख्य भवन में आती थीं।

वसन्तोत्सव के समारोह में भी लड़कियाँ उचित भाग ले रही थीं। कुछ लड़कियों ने धनुष-बाण आदि खेलों में भी भाग लिया था। कवि-समारोह और संगीत-सभा में तो लड़कियों का विशेष भाग था।

फाल्गुन पूर्णिमा को एक वृहत् यज्ञ का आयोजन था। प्रातःकाल से ही यज्ञ-मण्डप विद्यार्थियों-विद्यार्थिनियों, स्त्री-पुरुष दर्शकों और अध्यापक-अध्यापिकाओं से भरा हुआ था। यज्ञ-मण्डप एक विशाल और छता हुआ चबूतरा था। छत एक सौ पत्थर के बने खम्भों पर खड़ी थी। चबूतरा सौ हाथ लम्बा और अस्सी हाथ चौड़ा था। खम्भे बीस हाथ ऊँचे थे। मण्डप में उत्तर की ओर एक ऊँचा मञ्च बना हुआ था। यह मञ्च मण्डप की पूरी चौड़ाई में था और बीस हाथ लम्बाई की ओर था। इस ऊँचे मञ्च पर यज्ञशाला बनी हुई थी।

मण्डप के दक्षिण की ओर दस हाथ आगे बढ़ी हुई परछत बनी थी। यह चबूतरे की भूमि से दस हाथ ऊँचाई पर थी। परछत्त दस हाथ मण्डप के भीतर तक आई हुई थी। इसके आगे झरनेदार एक हाथ ऊँची मुंडेर लगी थी।

मण्डप की तथा परछत की भूमि लाल रंग के पत्थर की बनी थी। परछत्त पर दरी-कालीन और श्वेत चाँदनियाँ बिछी थीं और उन पर प्रतिष्ठित दर्शकगण बैठे थे। मण्डप की भूमि पर भी सूती दरियाँ बिछी थीं। यहाँ मञ्च के आगे एक ओर विद्यार्थिनियाँ और महिला-दर्शक बैठी थीं, दूसरी ओर विद्यार्थी और साधारण दर्शक थे। दोनों के बीच में तीन हाथ चौड़ा मार्ग छोड़ा हुआ था। इस मार्ग पर दरी के अतिरिक्त लाल रंग का कपड़ा बिछा था। मार्ग, मञ्च से चलकर मण्डप के दक्षिण द्वार तक बना था और स्त्रियाँ तथा पुरुष पृथक्-पृथक् मार्ग के दाहिने-बायें बैठे थे।

मञ्च पर एक कुण्ड बना था और उस कुण्ड के चारों ओर विश्व-विद्यालय के आचार्य, अध्यापक तथा अध्यापिकाएँ बैठी थीं। इनमें सबसे ऊँचा सिर किये, एक भव्य मूर्ति बैठी थी, जिसकी दूध-समान श्वेत दाढ़ी-मूँछें तथा जटायें उसकी दीर्घ आयु का परिचय दे रही थीं। उसकी आँखों

की बुरौनियां तथा भौएँ श्वेत हो रही थीं। इस भव्य मूर्ति के समीप एक वृद्धा, परन्तु अति ओजस्वी मुख वाली, बैठी थी।

मण्डप में डेढ़ सहस्र विश्वविद्यालय के विद्यार्थी-विद्यार्थिनियाँ और पाँच सौ से ऊपर दर्शकगण विद्यमान थे। मण्डप, यज्ञ में सम्मिलित होने वालों से खचाखच भरा हुआ था और सब लोग श्रद्धा तथा रुचि से हवन हो रहा देख रहे थे। हवन सूर्योदय से पूर्व 'ओं भूर्भवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव व्यरिम्णा...' इत्यादि मन्त्रों से आरम्भ हुआ और दो मुहूर्त-भर हवन होने के उपरान्त 'ओं द्यौः शान्तिरन्त रिक्षँ...' इत्यादि से समाप्त हुआ।

इस दिन हवन के पश्चात् पठन में उत्तीर्ण हो विश्वविद्यालय से जाने वाले विद्यार्थियों को उपाधि-वितरण का आयोजन भी था। इस समय तक मण्डप, हवन में सुगन्धित तथा पौष्टिक पदार्थों के जलने से, सुगन्धि से भर-पूर हो रहा था।

उपाधि-वितरण होने का कार्यक्रम आरम्भ होने से पूर्व यजुर्वेद से मन्त्र-पाठ हुआ। उपरान्त वह भव्य मूर्ति मण्डप की भूमि पर तथा मण्डप की परछत्त पर बैठे लोगों की ओर मुख कर बैठ गई। इससे पूर्ण श्रोतागण दत्त-चित्त होकर सुनने लगे। सब के मन में विश्वविद्यालय के कुलपति मुनि वैवस्वत के लिए भारी श्रद्धा थी। किंवदन्ति थी कि मुनि वैवस्वत वेद-वेदांग तथा दर्शन-पुराण का ज्ञाता और आयु में दो सौ वर्ष से ऊपर था। ऐसे लोग दर्शकों में थे, जिनके पितामह आचार्य से पढ़े थे। इस कारण जब आचार्य ने श्रोताओं की ओर मुख किया तो सब दत्त-चित्त और शान्त हो गए। मण्डप में पूर्ण निस्तब्धता विराजमान हो गई।

आचार्य ने दाहिना हाथ उठा उपस्थित समाज को कहना आरम्भ कर दिया, "सभ्य गण! हमारे विश्वविद्यालय को कार्य करते हुए एक सहस्र वर्ष के लगभग हो रहा है। ऋषि भलन्दन ने उस समय इसे एक साधारण विद्यालय के रूप में स्थापित किया था। जब मैं इस विद्यालय में विद्यार्थी बनकर आया था, तो यह पूर्ण रूप से विकसित होकर एक विश्व-

विद्यालय बन चुका था। पश्चात् मैं इसमें आचार्य बना और अब एक सौ तीस वर्षों से यहाँ के कुलपति के रूप में माता सरस्वती की आराधना कर रहा हूँ।

"लगभग एक सहस्र वर्षों से देश-देशान्तर के बालक-बालिकाएँ यहाँ शिक्षा-ग्रहण कर रही हैं। उनको विद्या-दान निःशुल्क दिया जाता है। विद्या-दान के लिए शुल्क लेना भारत के नाम को कलंकित करना है और देश के धनी-मानी तथा राजा-महाराजाओं की उदारता से हम यह महायज्ञ सम्पन्न करते चले आ रहे हैं।

"प्रतिवर्ष वसन्तोत्सव के अवसर पर उपाधि-वितरण का कार्य हुआ करता है। उन विद्यार्थियों को, जो शिक्षा समाप्त कर विश्वविद्यालय को छोड़ते हैं, इस बात का प्रमाण-पत्र दिया जाता है। इस वर्ष ऐसे जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या दो सौ पच्चीस है। ये राजनीति, न्याय, संगीत-कला, युद्ध-कला, गृह-निर्माण-कला, आयुर्वेद, धर्म-शास्त्र, पुराण और वेद-वेदांग इत्यादि विषयों में निपुणता प्राप्त कर जा रहे हैं। इन सवा दो सौ स्नातकों में पाँच ऐसे स्नातक भी हैं, जो अपने-अपने विषय में सर्वोत्तम प्रतिभा प्रकट करते रहे हैं। उनको प्रमाण-पत्रों के अतिरिक्त विशेष प्रतिष्ठा-प्रमाण तथा शास्त्रविज्ञ संज्ञक उत्तरीय कौशेय प्रदान किये जायेंगे।"

इसके पश्चात् उपाधि-वितरण कार्य आरम्भ हुआ। दो सौ पच्चीस विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियाँ बारी-बारी से मुनि वैवस्वत के सम्मुख आईं और उनके कर-कमलों से प्रमाण-पत्र प्राप्त कर, चरण-स्पर्श कर आशीर्वाद ले, अपने-अपने स्थान पर जाकर बैठ गईं। प्रमाण-पत्र भोजपत्र पर काली मसि से लिखे थे और लकड़ी की पाटी पर चिपकाये हुए थे। पाटी पर एक प्रकार का पारदर्शक लेप किया हुआ था, जिससे पाटी और भोज-पत्र तथा उस पर लिखावट के अक्षर चमक रहे थे। यह प्रमाण-पत्र रेशमी वस्त्र में लपेटे हुए थे।

अब उन पाँच विद्यार्थियों की बारी आई, जो अपने-अपने विषय में विशेष प्रतिभा प्रकट कर चुके थे। आचार्य ने ऊँचे स्वर से पुकारा, "वत्स

भानुमित्र, काश्मीर निवासी, राजनीति में विशेष विज्ञ सम्मुख आवे।"

एक युवक, दुबला-पतला, सिर मुँडाए हुए, सिर पर एक लम्बी चोटी को गाँठ दिये, लम्बा मुख, छोटी-छोटी परन्तु तीव्र आँखें, ऊँचा मस्तक, तीखी नाक, कद का लम्बा और लम्बे पतले हाथों वाला, विद्यार्थियों की पंक्ति में से उठकर आचार्य के सम्मुख आ खड़ा हुआ। आचार्य ने उसका परिचय कराया, "यह बालक अति मेधावी राजनीतिज्ञ है। हमारे विश्वविद्यालय के एक स्नातक, काश्मीर निवासी पण्डित महीदेव न्याय-शास्त्री का सुपुत्र है। हमें पूर्ण आशा है कि भानुमित्र इस विश्वविद्यालय की कीर्ति को फैलावेगा। हमारे परीक्षक-मण्डल ने इसे अपनी विशेष योग्यता के लिए यह पुरस्कार दिया है।"

इतना कह चन्दन की लकड़ी की बनी सन्दूकची और उस पर रखा रेशमी पूर्ण पहिरावा उसे भेंट में दिया गया। भानुमित्र ने चरण-स्पर्श कर नमस्कार की। आचार्य ने उसे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। पश्चात् वह वापस लौट अपने स्थान पर आकर बैठ गया। पश्चात् 'दीर्घनाद' का नाम लिया गया। एक और विद्यार्थी आचार्य के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसे गृह-निर्माण-विशेषज्ञ की उपाधि दी गई। इसी प्रकार धर्म-शास्त्र के विशेष ज्ञाता की उपाधि एक और बालक 'निकुम्भ' को मिली। दो बालिकाएँ भी थीं, जिनको विशेष योग्यता का पुरस्कार दिया गया। इनमें एक का नाम मल्लिका था। उसे संगीत-कला के विशेष ज्ञान के लिए उपाधि दी गई। उसका परिचय देते समय आचार्य ने बताया, "कुमारी मल्लिका गान्धार देश के एक व्यापारी की बहन है। भारतीय संगीत तथा नृत्य-कला में इसकी विशेष प्रतिभा के लिए इसे पारितोषित किया जाता है।"

: २ :

यज्ञ तथा उपाधि-वितरण का कार्यक्रम एक प्रहर दिन गये तक चलता रहा। इसके समाप्त होने पर सब से प्रथम आचार्य मुनि वैवस्वत अपने स्थान से उठे। इस पर सब उपस्थितगण अपने-अपने स्थान पर उठ खड़े

हुए। यह वहाँ की प्रथा थी कि सभा-विसर्जन होने पर प्रधान आचार्य तथा अन्य अध्यापकों को मण्डप से बाहर जाने का अवसर सब से प्रथम दिया जाता था। अतः मुनि वैवस्वत, पीछे उनके समीप बैठी हुई वृद्धा विदुषी महामाई, मण्डप के बीचोंबीच, रिक्त छोड़े हुए मार्ग पर से बाहर निकले। उनके पीछे मंच पर बैठी अध्यापिकाएँ तथा अध्यापक निकले। इसके उपरान्त विश्वविद्यालय की छात्राएँ गईं और पीछे दर्शकगण तथा छात्र थे।

परछत्त से उतरने के लिए मण्डप के दक्षिण बाजू की ओर बाहर, सीढ़ियाँ बनी थीं। परछत्त पर प्रतिष्ठित दर्शक बैठे थे। जब तक आचार्य इत्यादि लोग मण्डप से बाहर निकलते रहे, ये लोग भी अपने-अपने स्थान पर खड़े रहे। उनके निकल जाने पर ये परछत्त से बाहर आ, जूते पहन सीढ़ियों के नीचे उतरने लगे।

इन प्रतिष्ठित लोगों में देश-विदेश के कई नरेश भी थे। पाञ्चाल-नरेश, गान्धार का गणपति, वैशाली के महासेठ, अवध के महाराज, विदेह के गणपति इत्यादि अनेकों विशिष्ट-जन उपस्थित थे।

सीढ़ियों से उतरते हुए अवध-नरेश मुरहारी विक्रम ने अपने एक साथी को सम्बोधन कर कहा, "चमुचूड़!"

"हाँ, महाराज!"

"कुमारी मल्लिका को देखा है?"

"अद्वितीय सुन्दरी है।"

"हम उसे पटरानी बनावेंगे।"

"परन्तु महाराज! यह तो उसकी इच्छा से ही हो सकेगा।"

"हाँ! देखो, उससे मिलकर बात करने का यत्न करो। नहीं तो गुरुवर कुलपति जी से सहायता माँगनी पड़ेगी।"

चमुचूड़ ने सिर हिलाकर आज्ञा-पालन करने का संकेत दिया। सीढ़ियाँ उतर चमुचूड़ महाराज को अपने निवास-गृह की ओर जाते देख, पृथक् हो वहाँ जा पहुँचा, जहाँ छात्रायें अपने-अपने प्रमाण-पत्र लिये हुए निकल रही थीं।

मुख म्लान देख पूछा, "माता जी ! क्या बात है ? यह कौन था ?"

उत्तर मल्लिका ने दिया, "मेरे सौन्दर्य के प्रशंसकों में से था !"

"तो इस में चिन्ता की कौन बात है, माता जी ! यहाँ महाविद्यालय में मल्लिका सब कन्याओं से सुन्दर मानी जाती है।"

मल्लिका की माँ ने कहा, "ठीक है बेटा ! परन्तु सौन्दर्य एक बहुत ही मूल्यवान वस्तु है। इसकी रक्षा के लिये किसी शक्तिशाली संरक्षक की आवश्यकता है। बहुत से मधुप रस-स्वादन के लोभ में भर्र-भर्र करते आते हैं, परन्तु क्या किसी मस्त हाथी के इधर आ जाने पर वे अपनी जान बचा भाग न खड़े होंगे और सुन्दर सुरभित कमल को उसके पाँव तले कुचले जाने के लिये छोड़ न जायेंगे ? बेटा ! जितना मूल्यवान रत्न होता है, उतनी ही सुदृढ़ तिजोरी उसकी रक्षा के लिये चाहिये।"

मल्लिका की माता के इस कथन को सुन भानुमित्र चिन्ता अनुभव करने लगा और उसका मुख उतर गया। वह यह सब बात अपने पर लागू कर विचार कर रहा था। वह सोचता था कि इस सुन्दर निधि को, सत्य ही, यदि कोई बलपूर्वक हरण करने आ गया तो वह इसकी रक्षा कर सकेगा क्या ? जो आशा वह कई वर्षों से लगाये हुए था, वह उसे बालू की भीत के समान गिरती प्रतीत हुई। उसके मन में युद्ध-व्यूह-रचना देखने के लिये जाने का उत्साह नहीं रहा।

मल्लिका अपनी माता और भानुमित्र को इस प्रकार गम्भीर और चिन्तित होता देख पूछने लगी, "पर माँ ! आज यह नई बात क्या हुई है ? यदि मेरा सौन्दर्य मूल्यवान था, तो अब तक भी तो उसकी रक्षा कोई करता रहा है। यह कौन पुरुष था, जो आज हर्षोत्सव में दुःख सम्भावनारूपी विष छिड़क गया है ?"

माँ ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। भानुमित्र ने सब का ध्यान बदलने के लिये कहा, "माँ जी ! व्यूह-रचना देखने चलेंगी आप ?"

"बेटा ! युद्ध-कला हम स्त्रियों के देखने की वस्तु नहीं है। तुम जाओ, देखो। हम अभी आराम करेंगी। तुम सायंकाल आना, कवि-समारोह देखने चलेंगे।"

मल्लिका के मुख पर असन्तोष का भाव स्पष्ट दिखाई देता था। इस पर भी माँ के कथन का विरोध नहीं कर सकी। भानुमित्र उनके साथ उनके निवास-गृह तक जाना चाहता था और अपने तथा मल्लिका के विषय में निर्णयात्मक बात करना चाहता था। इस कारण अपने मन के भावों के समर्थन की आशा में मल्लिका के मुख की ओर देखने लगा; परन्तु उसे चुप देख, हाथ जोड़, नमस्कार कर जाने के लिये लौट पड़ा। मल्लिका ने उसके मुख पर अतीव निराशा का भाव देखा। इससे जब वह जाने लगा तो बोली, "मित्र ! सायं हम इसी स्थान पर प्रतीक्षा करेंगे।"

भानुमित्र बिना इसका उत्तर दिये अपने निवास-गृह की ओर चल पड़ा।

: ३ :

भानुमित्र का पिता न्यायशास्त्री महिदेव तक्षशिला से शिक्षा समाप्त कर श्रीनगर में एक विद्यालय खोल जीविकोपार्जन करने लगा था। अनन्तनाग के धनाढ्य पुरोहित की लड़की रोहिणी से उसका विवाह हो जाने पर सुख पूर्वक निर्वाह होने लगा था। घर में लड़का उत्पन्न हो जाने से तो दम्पति-जीवन अति मधुर हो उठा था और पं० महिदेव अपने को संसार के महासौभाग्य का भागी मानता था।

भानुमित्र विशेष प्रतिभाशाली निकला। जब उसने व्याकरण इत्यादि समाप्त कर लिया तो पिता का विचार हुआ कि वह राजनीति का अध्ययन करे और इसके लिये उसे तक्षशिला विश्वविद्यालय में भेजा गया। उस समय वह चौदह वर्ष का था। इस छोटी-सी अवस्था में भी वह छः शास्त्र, उपनिषद् और कई पुराण पढ़ चुका था। यजुर्वेद उसे कण्ठस्थ था। इस प्रतिभाशाली बालक को आया देख विश्वविद्यालय के आचार्य और कुलपति बहुत प्रसन्न हुए और बालक के लिये विशेष शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया।

भानुमित्र विश्वविद्यालय के वसन्तोत्सव के अवसर पर पहुँचा था और पहले ही दिन उसने मल्लिका को अपने देश का गीत सुनाते देखा था। तब ही उसके मन में इस मधुरभाषी कोकिल-कण्ठी बालिका ने स्थान बना लिया था। इस पर भी प्रथम भेंट तब हुई, जब भानुमित्र को विश्वविद्यालय में आये दो वर्ष व्यतीत हो चुके थे और उसने वसन्तोत्सव पर, भारत की राजनीति में परिवर्तन पर अपना लेख पढ़ा था। उस लेख में उसने चीन, मंगोल तथा यवन देशों में चल रही राजनीतिक प्रगति का वर्णन कर, भारतवर्ष में अराष्ट्रीयता के बढ़ने के कारणों का विश्लेषण किया। यह सब वर्णन इतनी स्पष्ट तथा सरल भाषा में किया गया था कि इस विषय में रुचि न रखने वाले लोग भी भली भाँति समझ रहे थे और भानुमित्र के कथन की सत्यता को अनुभव कर रहे थे।

इस लेख के पढ़ने के समय बाहर के कुछ दर्शक भी उपस्थित थे। वैशाली का गणपति देवधर्मा भी तीर्थाटन करता हुआ तक्षशिला में पहुँचा हुआ था। वह इस बालक को गणराज्यों की त्रुटियाँ इतनी स्पष्टता से बताता सुन, बालक के ज्ञान पर चकित रह गया था। उसने लेख समाप्त होने पर आगे आ, भानुमित्र को गले लगाया और अपने गले की मुक्तामाला उतारकर उसे पहिना दी। पश्चात् आचार्य की आज्ञा से भानुमित्र की योग्यता की प्रशंसा करते हुए उसे शिक्षा समाप्त कर वैशाली आने का निमन्त्रण दे दिया।

समारोह के पश्चात् मल्लिका ने भानुमित्र से भेंट की। वह इस भेंट को अपनी विजय मानता था और इसके पश्चात् दोनों में कई बार भेंट हुई। फिर दोनों में प्रेम हो गया और वे प्रायः मिलने लगे। जब भी भानुमित्र तथा मल्लिका के माता-पिता आते तो दोनों की उनसे भेंट होने लगी। यद्यपि कोई बात कही नहीं गई थी, तो भी दोनों परिवार यह समझने लगे थे कि गान्धार की सुन्दरी काश्मीर में व्याही जावेगी।

मल्लिका के पिता का, जो गान्धार देश का एक भारी सौदागर था, देहान्त हो चुका था। परन्तु उसका एक भाई था, जो अपने देश के मेवे और

ऊनी कालीन तथा गुम्मों का भारत में व्यापार करता था।

जब भानुमित्र उदास-मन अपने निवास-गृह की ओर चला तो मल्लिका और उसकी माता अतिथि-गृह की ओर चल पड़ीं। मार्ग में माँ ने लड़की से कहा, "वह पुरुष अवध-नरेश का सेवक था।"

"हूँ।" मल्लिका ने, जो भानुमित्र के उदास मुख को देख सोच में पड़ गई थी, कहा।

"वह अपने स्वामी की आज्ञा सुना रहा था।"

"हूँ।" मल्लिका का ध्यान अभी भी भानुमित्र की ओर ही था।

"अवध-नरेश ने तुम्हें उपाधि-वितरण के समय देखा था।"

"तो?" अभी भी मल्लिका अर्धचेतनावस्था में थी।

"उन्होंने तुम्हें पसन्द किया है।"

"तो मैं क्या करूँ?" मल्लिका ने उद्विग्न हो कहा।

"वे तुमसे मिलना चाहते हैं।"

इस समय तक मल्लिका सतर्क हो चुकी थी। इससे उसने माता की ओर, माथे पर त्यौरी चढ़ाकर देखते हुए पूछा, "क्या प्रयोजन है उनका इसमें?"

"तुमसे विवाह करना चाहते हैं।"

"मैंने अपने विवाह का निश्चय कर लिया है।"

"परन्तु हमने तो नहीं किया। तुमने उसे वचन दे दिया है क्या?"

"वचन दिया ही समझ लेना चाहिए।"

"इस समझने के कुछ अर्थ नहीं होते, बेटी! बात पक्की न होने के यही अर्थ हैं कि यह विचाराधीन है। अब तुमसे विवाह करने का इच्छुक एक और भी है। इससे तुम्हें अन्तिम निर्णय करने से पूर्व उसका भी ध्यान करना चाहिए। मैं जानती हूँ कि भानुमित्र विद्वान् है और चरित्रवान है; परन्तु वह निर्धन है और दुर्बल है।"

"तो माँ! तुम्हारी इच्छा है कि मेरा विवाह अवध-नरेश से हो?"

"तुम मिल लो, देख लो। मैं समझती हूँ वह तुम्हारे योग्य होगा।"

"नहीं माँ! इसमें लाभ नहीं। मैं भानुमित्र से ही विवाह करूँगी।"

"अच्छी बात है। इस पर भी मेरा कहना है देख तो लो, शायद तुम्हारा विचार बदल जावे।"

इस समय वे अतिथि-गृह में पहुँच गये थे। वसन्तोत्सव पर आये बहुत से लोग वहाँ ठहरे हुए थे। यह बहुत बड़ा गृह था। लगभग एक सौ आगार इसमें थे। मल्लिका की माँ को एक पृथक् आगार मिला था। जब से वह आई थी, मल्लिका उसके पास आचार्या की स्वीकृति से रहती थी।

मल्लिका और उसकी माँ कमरे में जा बैठ गई। अतिथि-गृह का प्रबन्धक भोजन के लिए कहने आया तो दोनों भोजनशाला में जा पहुँचीं। मुख-हाथ-पाँव धो आसन पर जा बैठीं। इस भोजनशाला में केवल स्त्रियाँ ही खा रही थीं। भिन्न-भिन्न देशों और प्रदेशों से आये हुए अतिथि थे। सब एक शाला में बैठे एक समान भोजन कर रहे थे।

मल्लिका चुपचाप भोजन करते समय माँ के प्रस्ताव पर विचार कर रही थी। अभी एक घड़ी पहले तक उसका मन भानुमित्र से विवाह करने में स्थिर था, परन्तु अब इस नये व्यक्ति का विचार उत्पन्न हो जाने से उसके मन में चंचलता उत्पन्न हो गई थी। वह सोच रही थी कि पण्डिताइन बनना ठीक है अथवा रानी।

अपने ऊपर अपने विचारों को केन्द्रित करने से वह उन सब बातों को भूल गई थी, जो उसके और भानुमित्र के भीतर वर्षों से चल रही थीं। इस काल में बीसियों बार वे अपना घर, काश्मीर की वादी में, फल-फूलों से भरपूर उद्यान में, बनाने के चित्र खींच चुके थे। मल्लिका ने अभी तक यही सोचा था कि वह जीवन-भर उद्यान में क्यारियों को पानी देगी, फल तोड़ेगी और भानुमित्र की सेवा में जन्म व्यतीत कर देगी। एक धुँधला-सा चित्र, चार-पाँच बच्चों का, ऊनी कान-ढाँपी टोपियें और मोटे ऊनी कपड़े पहने उस उद्यान में घूमते हुए, उसके मस्तिष्क में आया करता था। परन्तु अब अवध-नरेश की रानी बनने के चित्र भी खिंचने लगे थे। अवध-नरेश, जो भगवान् राम की सन्तति में से है, जिनका राज्य अढ़ाई सौ कोस लम्बा-

चौड़ा है, जिनके राज्य में पाँच सहस्र गाँव और पन्द्रह बड़े-बड़े नगर हैं, जिनके कोष में अतुल धन हो सकता है, जो विपुल शक्तिशाली सेना के अधिपति हैं और जिनकी प्रजा की संख्या दो सौ लाख से भी अधिक है, क्या वह भानुमित्र से अधिक उपयुक्त पति नहीं ?

केवल एक बात थी। वह थी भानुमित्र से विवाह की मूक अनुमति। इससे वह किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच सकी। भोजन समाप्त हुआ। वे हाथ-मुख धोकर अपने कमरे में जा पहुँचीं। वहाँ पहुँच माँ ने कहा, "अवध-नरेश सायंकाल वहीं नीम के पेड़ के नीचे मिलने आवेंगे।"

"पर सायंकाल तो हमने कवि-समारोह में जाना है।"

"उस समय से पहले ही भेंट होगी।"

"पर माँ ! मैं भानुमित्र को वचन दे चुकी हूँ।"

"तुम्हारी आयु छोटी थी। तुम सज्ञान नहीं थीं। इस कारण आज से कई वर्ष पूर्व का दिया वचन प्रमाणित नहीं हो सकता। तुम्हें स्वतन्त्रता से अब निर्णय करना चाहिए। अपने देश में तो तुमसे कोई पूछता भी नहीं। बिना तुम्हारे अपने पति को देखे ही तुम्हारा विवाह कर दिया जाता।"

इस प्रकार की युक्ति से मल्लिका को सन्तोष नहीं हुआ। वह भारत में थी। वहाँ की सभ्यता में पली थी और भारतीय पद्धति से शिक्षा प्राप्त की थी। भारत में लड़कियों को अपना वर ढूँढने में पूर्ण स्वतन्त्रता थी और वह इसे ठीक समझती थी।

उसे अपने ही विश्वविद्यालय की एक लड़की की कथा स्मरण थी। उस लड़की ने पाञ्चाल देश के राजा को देखा और उससे प्रेम करने लगी थी। इस कारण अपनी शिक्षा पूर्ण कर महाराज के सम्मुख उपस्थित हो बोली कि वह उनसे विवाह करना चाहती है। नरेश ने देखा कि प्रार्थिनी सुन्दर है, स्वस्थ है, विदुषी है और उसका प्रस्ताव स्वीकार करने में उसे सुख मिलेगा। इससे उसके घर और सम्बन्धियों का पता कर विवाह कर लिया। महाराज की माता ने कहा भी था कि लड़की लोभी और पद-लोलुप

प्रतीत होती है। महाराज का कहना था कि एक राजा की स्त्री में ये गुण तो होने ही चाहिएँ।

मल्लिका को यह बात पसन्द थी। भारत में लड़कियाँ अपने वर का चुनाव स्वयं करती थीं; इससे उसने माता से कहा, "माँ! मैं स्वयंवर करूँगी।"

माँ का उत्तर था, "यह हमारे देश की प्रथा नहीं।"

"मुझे यह पसन्द है।"

"तुम्हारा भाई नहीं मानेगा।"

"मैं भैया को मना लूँगी।"

"तो यह कैसे होगा?"

"मैं आज अवध-नरेश से मिलूँगी। उसके विषय में प्रश्न करूँगी और यदि कुछ जानने लायक हुआ तो जान लूँगी। भानुमित्र को तो मैंने देखा-भाला है। पश्चात् निर्णय दूँगी। यदि तो मेरा निर्णय आपको पसन्द नहीं हुआ, तो मैं तब तक विवाह नहीं करूँगी, जब तक आप मान नहीं जातीं।"

माँ ने इसको स्वीकार कर लिया। मल्लिका तथा उसकी माँ थोड़ा आराम करने के लिए लेट गईं। वास्तव में दोनों सोच रही थीं कि कैसे यह समस्या सुलझेगी। मल्लिका की माँ मन-ही-मन भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि वे मल्लिका को सुबुद्धि दें।

अभी कवि-समारोह में कुछ समय शेष था कि चमुचूड़ आया और उसने अतिथि-गृह में से मल्लिका की माँ को बुला भेजा। माँ-बेटी दोनों गृह से बाहर आ गईं। मल्लिका की माँ का विचार था कि नरेश स्वयं पधारे होंगे; परन्तु उन्होंने बाहर आ, केवल चमुचूड़ को खड़े देखा। चमुचूड़ ने हाथ जोड़, शीश निवा, प्रणाम कर कहा, "महाराज जानना चाहते हैं कि देवी से कब और कहाँ भेंट हो सकती है?"

मल्लिका की माँ मल्लिका का मुँह देखने लगी। मल्लिका ने कुछ सोच-कर कहा, "कवि-समारोह के पश्चात् कुलपति श्री प्रधान आचार्य मुनि

वैवस्वत जी की कुटिया में।"

चमुचूड़ सिर निवा जाने लगा तो मल्लिका ने बात स्पष्ट कर दी, "देखो भद्र! मेरे से विवाह करने के लिए एक और भी इच्छुक है। मैं स्वयं वरना चाहती हूँ। यह वरन भेंट करने के पश्चात् होगा। महाराज को पता होना चाहिए कि उनको अस्वीकार भी किया जा सकता है। जो कुछ मेरा निर्णय होगा, वह परम पूजनीय आचार्य जी के चरणों में बैठकर होगा।"

"एवमस्तु।" कह चमुचूड़ झुक, प्रणाम कर लौट गया। उसके चले जाने के पश्चात् माँ मल्लिका की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगी। मल्लिका जाते हुए चमुचूड़ की ओर देख रही थी। इस पर माँ ने पूछ ही लिया, "यह क्या कर रही हो, बेटी? बड़े आदमी को बुलाकर उसका अपमान न कर देना।"

"स्वयंवर में न चुने जाने वालों को अपमानित किया गया नहीं मानना चाहिए।"

"तुम बहुत गहरे पानी में तैरना चाहती हो, बेटी! स्वयंवर राजाओं की बेटियों को ही शोभा देता है। वे अपनी लड़की की मान-मर्यादा की रक्षा करने की शक्ति रखते हैं। हम यहाँ विदेश में निःसहाय ऐसी धृष्टता नहीं कर सकते कि एक राजा का अपमान कर जीवित रह सकें।"

"माँ! तुम यहाँ के विषय में कुछ नहीं जानतीं। एक ब्राह्मण की शरण में आये निर्बल को भी कोई पीड़ा नहीं दे सकता।"

माँ अपने मन में यह आशा लगा रही थी कि शायद कुलपति एक नृपति की सहायता करेंगे।

: ४ :

अभी कवि-समारोह के लिये जाने में देरी थी। इससे माँ-बेटी, दोनों विश्वविद्यालय के समीप एक बहती नदी के तट पर भ्रमणार्थ चली गईं। दोनों अपने-अपने विचारों में लीन थीं। मल्लिका चमुचूड़ की चौड़ी छाती, उच्च मस्तक और अकड़ी हुई मूछों पर विचार कर रही थी। भानुमित्र तो

उस के सम्मुख दुर्बल रूपहीन एक बालक ही प्रतीत होता था। वह सोच रही थी कि क्या इस पुरुष का स्वामी इससे भी अधिक रूपवान होगा! इस विचार के उठते ही वह अवध-नरेश को देखने की इच्छा करने लगी।

एक मुहूर्त-भर नदी के तट पर बैठ वे पुनः उस स्थान पर आ गईं, जहाँ भानुमित्र से मिलने का वचन था; परन्तु भानुमित्र वहाँ नहीं था। कितनी देर तक प्रतीक्षा कर वे सभा-मण्डप की ओर चल पड़ीं। कवि-समारोह का समय हो गया था और उसमें मल्लिका का संगीत होना था।

मण्डप के बाहर पहुँचकर भी उन्होंने उसकी प्रतीक्षा की; परन्तु वह दिखाई नहीं दिया। मण्डप लोगों से प्रातः से अधिक भरा हुआ था। इस समय कुलपति वहाँ पर उपस्थित नहीं थे और सभा का प्रधानत्व करने के लिये विश्वविद्यालय के साहित्याचार्य मंच पर एक चन्दन की चौकी पर रेशमी गद्दे के सहारे बैठे हुए थे। मल्लिका मंच पर जा बैठी और मल्लिका की माँ स्त्री-दर्शकों में।

मण्डप की परछत्त पर अवध-नरेश अपने साथी चमुचूड़ के साथ सब से प्रथम आ बैठे थे। मल्लिका को भीतर आ मंच की ओर जाते देख नरेश ने अपने सखा से पूछा, "क्या तुम मेरे सफल होने की आशा करते हो?"

"हाँ महाराज! मैं समझता हूँ कि आपकी आधी से अधिक जीत हो चुकी है।"

अवध-नरेश मल्लिका को मंच पर बैठे एकटक देख रहा था। उसके सौन्दर्य को देख-देखकर वह मन-ही-मन उसको रानी बनाने की युक्ति सोच रहा था। फिर उससे विवाह कर सकने पर दान-दक्षिणा की योजना बना रहा था। मल्लिका अपने समीप बैठी एक लड़की से बातें करती-करती हँस पड़ी। उसके अनार के दानों के समान दाँतों को रक्ताभ अधरों में देख अवध-नरेश को रोमाँच हो गया और उसने गम्भीर साँस ली।

दूर घड़ियाल ने दिन के तीसरे प्रहर होने की घोषणा की। सभा-संचालक घड़ियाल का शब्द सुन, चौकी पर खड़ा हो, हाथ का संकेत कर,

उपस्थित लोगों को चुप कराने लगा। जब शान्ति विराजित हुई तो वह कहने लगा :

"आज संगीत तथा कवि-समारोह आरम्भ होता है। मैं पञ्चवक्त्र को महाकवि वाल्मीकि की कविता का गान करने का आदेश देता हूँ।"

एक पीतवस्त्र धारी बालक उठा और स्वरसहित रामायण-गान करने लगा। गान करने के पूर्व उसने कहा, "कवि के शब्दों में आदर्श भगवान् राम के गुणानुवाद करता हूँ :

"विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः
महोरस्को महेष्वासो गूढ़जत्रुररिंदमः
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्शुभलक्षणः
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः
स च सर्व गुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।"

बालक का स्वर मधुर, प्रिय और उच्चारण स्पष्ट था। पूर्ण जनता मूर्तिवत् महाकवि के शब्दों को रसपूर्वक सुनती रही।

इसके पश्चात् सभा-संचालक ने अपनी कविता का पाठ किया। इसमें

साहित्याचार्य ने शिव के ताण्डव का वह भीषण रूप बाँधा और उसमें राक्षसों और दैत्यों को भयभीत, त्रसित और निःसहाय भागते, मरते, पिसते विनाश होते सुनाया कि सुनने वालों के रोमांच हुए बिना नहीं रहा। कुछ निर्बल मन के लोगों को तो अश्रुपात होने लगे।

इसके पश्चात् विद्यार्थी बालक और बालिकाएँ अपनी-अपनी कविताएँ सुनाने लगे और संगीत तथा नृत्य-कला का प्रदर्शन करने लगे। धीरे-धीरे रंग जमता गया। श्रोतागण कभी हँसते, कभी रोते, कभी गम्भीर हो विचार करने लगते। एक-आध बार वीर रस की कविता भी आई, जिसे सुन स्त्रियों के मुख आवेश में तमतमाने लगे और पुरुषों के भुजदण्ड फड़कने लगे। श्रोतागण आवेश में किसी के कला-प्रदर्शन पर पुरस्कार भी देते थे : कभी स्वर्ण-मुद्रा, कभी तलवार, कभी कोई भूषण।

यथासमय मल्लिका की बारी भी आई। उसने पहले कविता पढ़ी :

"किस विध पार करूँ मैं भव-सागर को।"

'इस संसार-रूपी अन्धकार में मैं नहीं जानती कहाँ से आई हूँ। न ही लक्ष्य का कुछ ज्ञान है। मार्ग भी राज-मार्ग नहीं, बीहड़ जंगल है। बाघ, सिंह, हिंसक जन्तु चीड़-फाड़कर खा जाने को भागे आ रहे हैं। दूर प्रकाश है। वह उदय काल का भानु है। उषाकाल की लालिमा से मैं रंगी जा रही हूँ। वन तथा रात्रि की भयंकरता को मैं भूल गई हूँ और प्रकाश से आशान्वित हो कली की भाँति प्रस्फुरित होने की प्रतीक्षा में हूँ। मुझे भूल गया है कि दिन के पश्चात् रात होगी और पुनः अज्ञात स्थान में भटकने पर विवश हो जाऊँगी। इस समय तो प्रकाश है, ऊष्मा है, सुन्दर, सब अति सुन्दर है।'

कविता सुन सब वाहवाह करने लगे। फिर उसने यही कविता गाई और साथ नृत्य किया। दो घड़ी-भर सब लोग स्तब्ध हो सुनते तथा देखते हुए अपने को भूल गए। नृत्य में जो मुद्रा मल्लिका ने बनाई वह अच्छे-अच्छे कलाकारों को भी चकित कर देने में सबल थी।

अवध-नरेश इस बालिका को मंच पर वीणा की झंकार के साथ चक्कर

काटते तथा कूदते-फाँदते और फिर ताल सम पर पाँव से घुँघरु की झंकार उत्पन्न करते देख, ऐसा अनुभव कर रहे थे मानो वह वायु से भी हलकी वस्तु है और हवा में उड़ रही है। बीच-बीच में उसकी मधुर संगीत-ध्वनि कानों को अतिप्रिय प्रतीत हो रही थी।

चमुचूड़ ने महाराज को कलाकार की शोक, भय तथा प्रसन्नता की मुद्रा के साथ-साथ चिन्तित, भयभीत और प्रफुल्लित मुख देख कहा, "महाराज का चुनाव अति सुन्दर है।"

नरेश ने, जो मल्लिका को देखने में लीन था, चमुचूड़ के कहने का अर्थ नहीं समझा। उसने अचम्भे में उसकी ओर देख पूछा :

"क्या कहा है?"

"महाराज की दृष्टि की परख बहुत श्रेष्ठ है।"

"हाँ, यदि पा सकूँ तो।"

"आज्ञा दें तो उसे हर कर ले जावें।"

महाराज ने बिना विचार किये सिर हिला इसका विरोध कर दिया और कहा, "महाराज राम के वंशज को यह शोभा नहीं देता।"

"समय पड़ने पर भीष्म ने भी यह किया था।"

"वे चन्द्रवंशी थे। आज उनका नाम लेने वाला भी कोई नहीं रहा। उनके पाप-कर्मों का फल ही तो यह है, जो आज भारत की यह दुर्दशा है।"

चमुचूड़ को अपने कथन पर स्वयं ही लज्जा लगने लगी। वह चुप हो गया और अवध-नरेश पुनः मल्लिका को नृत्य करते देखने लगा।

मल्लिका का नृत्य समाप्त हुआ तो कई ओर से उसे उपहार मिलने लगे। महाराज मुरहारी विक्रम ने अपने गले का मुक्ताहार उतार मञ्च पर सभा-संचालक के सम्मुख फेंकते हुए कहा, "धन्य हो, देवी! धन्य हो।"

मल्लिका ने हार उठा लिया। चने बराबर मोतियों के सात लड़ों का हार था। हार को देख मल्लिका ने उपहार देने वाले की ओर देखा। वह समीप बैठे चमुचूड़ को पहचान गई। उसने समझ लिया कि यह अवध-नरेश का दिया है। यह समझ उसने हार पहना नहीं। उसे सभा-संचा-

लक के सम्मुख रख दिया। उसने पूछा, "यह क्यों ?"

"बहुत मूल्यवान प्रतीत होता है। कहीं भूल से न दे दिया हो।"

इस पर संचालक ने उठकर, हार को दिखा कर लोगों से पूछा, "यह हार किसने, किसको दिया है ?"

इसका उत्तर चमुचूड़ ने अपने स्थान पर खड़े होकर दिया :

"अवध-नरेश श्री महाराज, दशरथ-पुत्र भगवान् रामचन्द्र वंशजोत्पन्न प्रजापालक श्री १०८ मुरहारी विक्रम, अवध-नरेश ने कवियित्री कलाकार मल्लिका देवी को उसकी नृत्य-कला में निपुणता के अर्थ पारितोषित किया है।"

आचार्य ने मुक्ताहार को देखते हुए कहा, "यह बहुमूल्य प्रतीत होता है।"

"महाराज के भूषणागार में ऐसे सैकड़ों विद्यमान हैं।"

सभा-संचालक ने वह माला मल्लिका के गले में पहनाने के लिये हाथ बढ़ाया, परन्तु मल्लिका ने उसे दोनों हाथों में ले लिया और धीरे से कहा, गुरुदेव ! क्षमा करें।"

मल्लिका ने वह हार अपने बायें हाथ पर लपेट लिया और हाथ जोड़ श्रोतागणों का धन्यवाद कह अपना स्थान ले लिया।

: ५ :

भानुमित्र ने मल्लिका की माँ की दृष्टि बदली देखी थी। उसने उसकी युक्ति, 'जितना मूल्यवान रत्न होता है, उतनी सुदृढ़ तिजोरी उसकी रक्षा के लिये चाहिए' सुनी थी। एकाएक मल्लिका की माँ की चिन्ता और मल्लिका की प्रशंसा के लिये एक विश्वविद्यालय के महोत्सव पर आये दर्शक का मल्लिका से मिलने आना, सम्बन्ध रखने वाली बातें प्रतीत होने लगी थीं। इससे वह अपने विषय में सोचने पर विवश हो अपने निवास-स्थान पर जा पहुँचा। एक बड़े-से भवन में दस विद्यार्थियों के लिये शयन-पट्ट और सन्दूक रखे थे। इस प्रकार के एक सौ से ऊपर भवनों की एक पंक्ति थी।

अपने भवन में पहुँच अपने शयन-पट्ट पर बैठ वह अपने भूत, वर्तमान और भविष्य पर विचार करने लगा। विद्यार्थी लोग भोजन करने गये हुए थे। भोजनोपरान्त वे युद्ध व्यूह-रचना देखने चले गए। अतः भवन में पूर्ण एकान्त था। वह विचार करने लगा—कैसे मल्लिका से उसकी प्रथम भेंट हुई, फिर कैसे वह आकर मेल-मिलाप उत्पन्न करने लगी। किस-किस प्रकार उनके माता तथा सम्बन्धियों के सम्मुख उनका परस्पर मिलना होता था। इस पर यह बात कि विश्वविद्यालय के प्रायः अध्यापक और विद्यार्थी-गण उनके परस्पर मेलजोल को जान उनके विवाह की घोषणा की प्रतीक्षा कर रहे थे और एकाएक किसी का बीच में आ पड़ना और मल्लिका की माँ के विचारों में अन्तर आ जाना, ये सब बातें भानुमित्र के सम्मुख चित्रवत घूमने लगीं।

वह सोचता था कि मल्लिका का उससे इतना लम्बा सम्बन्ध रह चुका है कि विवाह तो उसी से होगा। उसे विश्वास था कि मल्लिका किसी अन्य से विवाह के लिए उद्यत नहीं होगी। उसे यह भी समझ नहीं आता था कि मल्लिका की माँ, उस सब कुछ हो जाने पर, जो उसके और भानुमित्र के माता-पिता के भीतर हो चुकी थी, कैसे किसी और से विवाह की बात भी कर सकती है।

भानुमित्र एक बात भूल रहा था कि मल्लिका की माँ एक व्यापारी की पत्नी है और मल्लिका एक व्यापारी की लड़की। वह इस प्रकार के विचारों में लीन बैठा-बैठा थक गया तो अपने शयन-पट्ट पर लेट गया। उसे झपकी आ गई। जब उठा तो समय बहुत हो गया था। कवि-समारोह आरम्भ हो चुका था।

उसे मल्लिका से नीम के पेड़ के नीचे मिलने की बात स्मरण हुई तो वह भवन से बाहर निकल उस पेड़ की ओर चल पड़ा। पेड़ के नीचे कोई नहीं था। इससे अतिथि-गृह की ओर गया। वहाँ पहुँच उसे विदित हुआ कि माँ-बेटी चिरकाल से जा चुकी हैं। वहाँ से वह सभा-मण्डप में पहुँचा। मण्डप श्रोतागणों की भीड़ से पूर्णतः भर चुका था और कार्यक्रम आरम्भ

हो चुका था।

भानुमित्र कुछ काल तक बाहर खड़ा रहा। वहाँ वह भली भांति न तो सुन सकता था, न ही देख सकता था। इससे पुनः निराशामय विचार उसके मन में आने लगे और वह वहाँ से नदी-तट की ओर चला गया।

सभा समाप्त होने से पूर्व मल्लिका से मिलने की आशा में लौट आया और उस ओर जा खड़ा हुआ, जहाँ से महिलाएँ मण्डप से निकल रही थीं, परन्तु मल्लिका उस मार्ग से नहीं निकली। उसे और उसकी माँ को कुलपति के गृह को जाना था। वहाँ जाने के लिए ठीक दूसरी ओर के द्वार से निकलना ठीक जान मल्लिका और उसकी माँ उधर नहीं आईं, जिधर भानुमित्र खड़ा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

मल्लिका ने भवन की परछत्त पर चमुचूड़ के समीप बैठे ओजस्वी मुख अवध-नरेश को देखा था और फिर मुक्ताहार, जो उसने अपनी कलाई पर लपेटा हुआ था, देख रही थी। इतने कुछ का प्रभाव उसके मन पर अवध-नरेश के लिए अच्छा ही हुआ था।

कुलपति के गृह पर पहुँच द्वार खटखटाया तो सेवक बाहर आ, उनका नाम और प्रयोजन पूछ गुरुदेव से स्वीकृति लेने भीतर चला गया।

भीतर से आज्ञा पा माँ-बेटी, दोनों को गुरुदेव के सम्मुख ले गया। इस समय अन्धेरा हो चला था। गुरुदेव हवन-कुण्ड के सम्मुख सायं की नित्य-क्रिया समाप्त कर पलथी मारे बैठे थे। सेवक मल्लिका की माँ तथा मल्लिका को हवन-कुण्ड के, जिसमें अभी भी सुगन्धित द्रव्य जल रहे थे, दूसरी ओर आसन पर बैठा, दीपक जलाने लगा। यज्ञशाला इतनी बड़ी थी कि इसमें तीस-चालीस लोग सुगमता से बैठ सकते थे। इसे प्रकाशित करने के लिए खूंटे लगी थीं, जिन पर पीतल के दीपक रखे थे। उनमें तेल और बत्ती तो सेवक दिन के समय ही डाल चुके थे। इस कारण जलाने में समय नहीं लगा। दीपकों के जलाने से यज्ञशाला प्रकाशमय हो उठी।

प्रकाश होने पर कुलपति ने आँखें खोलीं और चाँदी की बारीक तारों के समान श्वेत लम्बी भौओं के बीच में से मल्लिका को देख और पहचान

पूछने लगे, "सुनाओ बेटी ! किस प्रयोजन से आई हो ?"

"भगवन् ! मैं एक दूसरे देश की रहने वाली हूँ। आज आपके विश्व-विद्यालय में आये अतिथियों में से एक ने मेरे से विवाह करने का प्रस्ताव किया है। वह एक शक्तिशाली राज्य का नरेश है। मैंने उसके प्रस्ताव पर निर्णय देने से पूर्व, उससे मिलने और उसके भावों को जानने की आवश्यकता अनुभव की है। मुझे भय है कि यदि मैंने उसे अस्वीकार किया तो वह मेरा बलपूर्वक अपहरण कर लेगा। मेरा इस देश में आपके अतिरिक्त और कोई रक्षक नहीं और आप रक्षा करने में सबल हैं, इस कारण मैंने उससे भेंट करने और अपना निर्णय देने का समय और स्थान आपके गृह में निश्चय किया है।"

इस पर मुनि वैवस्वत मुस्कराये और बोले, "मल्लिका बेटी ! मैं तुम्हें अभय-दान देता हूँ। कौन है वह पुरुष, जससे तुम भयभीत हो रही हो ?"

"अवध-नरेश, श्री मुरहारी विक्रम।"

"ओह, बेटी ! वह तो मेरा शिष्य है। उससे तुम्हें भय नहीं करना चाहिए। फिर यह विश्वविद्यालय एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। यहाँ कोई किसी प्रकार का उधम नहीं मचा सकता। वासनाधीन बहुत लोग अधर्म करते हैं, परन्तु यदि यहाँ किसी ने किंचित भी अधर्म-चेष्टा की तो उसको, निश्चय जानो, तपोबल से भस्म कर दूँगा।"

मल्लिका की माँ मुस्कराई ! गुरुदेव ने देख लिया और हँसते हुए कहा, "यह तेरी माँ है, बेटी ? इसे मेरे कथन का विश्वास नहीं हुआ। इतना तो तुम समझ ही सकती हो कि अवध-नरेश के अतिरिक्त और भी राजा-महाराजा यहाँ उपस्थित हैं। पाञ्चाल के नरेश भी यहाँ विद्यमान हैं, जिसका राज्य लाँघकर ही तो अवध जाया जा सकता है। यदि अवध-नरेश ने कुछ भी गड़बड़ की तो वह पाँच कोस से अधिक दूर तक नहीं जा सकेगा। उसे पकड़कर पुनः यहाँ वापस बुलाया जा सकता है।"

अभी बातचीत हो ही रही थी कि सेवक आया और अवध-नरेश के आने की सूचना दे उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

कुलपति ने कहा, "केवल महाराज को आने की स्वीकृति है। अन्य किसी भी कर्मचारी को साथ नहीं आना चाहिये।"

अवध-नरेश भीतर आ प्रणाम कर सम्मुख खड़ा हो गया। कुलपति ने उसे अपने दाहिनी ओर बैठ जाने का संकेत कर पूछा :

"मुरहारी विक्रम! कैसे आना हुआ है?"

"गुरुदेव! इस वर्ष ब्रह्मावर्त के तीर्थ-स्थानों पर भ्रमण करता हुआ यहाँ भी आया हूँ। वसन्तोत्सव को देखते हुए एक अति अनमोल वस्तु दिखाई दी, तो उसे पाने की अभिलाषा जाग उठी। उसे पाने के लिये आपके चरणों में उपस्थित होना आवश्यक हो गया, तो आपको कष्ट देने चला आया हूँ। वह अनमोल रत्न यह मल्लिका देवी है।"

मल्लिका नरेश के मुख के ओज, उसके व्यवहार की सभ्यता तथा भाषा की मधुरता देख-सुन रही थी। उसे भानुमित्र इस महान् पुरुष के सम्मुख एक सर्वथा साधारण व्यक्ति प्रतीत हुआ। इस पर भी उसने अभी निर्णय नहीं किया। उसने पूछा, "यदि मैं आपसे कुछ पूछूँ तो उत्तर देंगे?"

"इसी अर्थ तो उपस्थित हुआ हूँ।"

"आप तो भगवान् राम के वंशज हैं न? आप जो कहेंगे सत्य ही तो कहेंगे। मैं यह जानना चाहती हूँ कि यदि मैं आपको स्वीकार न करूँ तो आप क्या करेंगे?"

नरेश का मुख मलिन हो गया। उसे इस प्रश्न की आशा नहीं थी। इस पर भी मन कड़ा कर उसने कहा,

"अपने दुर्भाग्य को स्वीकार कर यहाँ से चला जाऊँगा।"

"देखिये, श्रीमान्! मैं यहाँ निःसहाय, निराश्रय और अबला हूँ। मैं आप जैसे महीपति के विरोध को सहन नहीं कर सकती।"

"देवी! मैं राजा हूँ और यह मेरा धर्म है कि मैं यथाशक्ति संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों को अपने राज्य में एकत्रित करता रहूँ। संसार की विभूतियों में सर्वोपरि आप हैं। इस पर भी गुरुदेव के चरणों में बैठ मैं यह वचन देता हूँ कि मैं आपको न जीत सकना अपना तथा अपने राज्य का दुर्भाग्य

मान, बिना किसी प्रकार की आपत्ति उठाये यहाँ से चला जाऊँगा । देवी ! मैं आर्य-सन्तान हूँ । आर्य लोग स्त्रियों का मान करते हैं, उनकी पूजा करते हैं; परन्तु यह अपहरण तो उनका अपमान होने से पाप हो जावेगा ।"

"तो कृष्ण ने रुकमणी का अपहरण कर पाप किया था ?"

"देवी ! यह बात आपको किसने बताई है ? कृष्ण ने तो रुकमणी को अपहरण किये जाते बचाया था । अपनी इच्छा से कोई स्त्री जाती हुई भी क्या अपहरण की गई समझती हैं आप ?"

मल्लिका निरुत्तर हो गई । इस पर उसने बात बदल दी और पूछा, "मैं एक व्यापारी की कन्या हूँ । आप क्षत्रिय-वंश शिरोमणि, एक विशाल राज्य के महाराजा हैं । भला आपने मुझ में क्या देखा है, जो इस प्रकार मुझे ऊँचे वर्ण में ले जाना चाहते हैं । शारीरिक रूप तो एक बहुत ही तुच्छ वस्तु है । किसी भी साधारण-सी घटना से बिगड़ सकती है ।"

"मैंने तो रूप देखकर ही समझा था कि इतना सुन्दर कलेवर रखने वाली मन और बुद्धि की निकृष्ट नहीं हो सकती; परन्तु अब दो घड़ी भर जो आपका कला-प्रदर्शन देख आया हूँ, इससे मुझे विश्वास हो गया है कि मेरा अनुमान सत्य है ।"

"परन्तु श्रीमान् ! वह भी तो केवल मात्र बाहरी बात ही है । स्वभाव क्या शरीर को मोड़ने-घुमाने के अभ्यास से पृथक और अधिक आवश्यक नहीं ?"

"देवी ! तुम्हारे स्वभाव तथा शील में सन्देह कर मुझे तक्षशिला की शिक्षा-दीक्षा में सन्देह करना पड़ेगा । ऐसी धृष्टता मैं नहीं कर सकता । मैं भी तो इसी विश्वविद्यालय का और इन्हीं गुरुजनों के चरणों में शिक्षा प्राप्त किया स्नातक हूँ । इससे मुझे अपने स्वभाव और चरित्र पर भी सन्देह हो उठेगा ।"

एकाएक मल्लिका ने बात बदल दी । उसने पूछा, "आपकी कितनी पत्नियाँ हैं, पहले ?"

"मेरी हँसी कर रही हो, देवी !"

"ऐसे राजा-महाराजा बहुत हैं, जो कई-कई पत्नियाँ रखते हैं।"

"मैं देवी को पटरानी बनाना चाहता हूँ।"

"जैसे महाराज दशरथ ने कैकेई को बनाया था?"

अपने पूर्वज पर कटाक्ष सुन अवध-नरेश का मुख लाल हो गया, परन्तु तुरन्त ही अपने को वश में कर कहने लगा, "देवी! क्या मैं आप से न्याय की भी आशा नहीं कर सकता? आप इतनी पढ़-लिखकर भी क्यों इतनी अयुक्ति संगत बातें कर रही हैं आज? महाराज दशरथ ने सन्तान के लिए विवाह किये थे अथवा वासना-तृप्ति के लिये? आप शायद इतिहास नहीं पढ़ीं?

"देखो देवी! दुर्भाग्य की बात महाराज दशरथ के साथ यह हुई थी कि पहले तो तीनों में से किसी रानी के भी सन्तान नहीं हो रही थी और जब हुई तो तीनों के हो गई। ऐसी बात सर्वत्र और सदैव नहीं हो सकती।"

इस थोड़ी सी डाँट पर मल्लिका चुप हो गई और अपने परास्त होने से मन-ही-मन प्रसन्न हो, परन्तु प्रकट में अन्यमनस्क-सी बैठी रही। कुछ काल-पर्यन्त अवध-नरेश उसके और प्रश्न पूछने की प्रतीक्षा करता रहा। पश्चात् पूछने लगा, "क्या मैं देवी के मनोभावों को जान सकता हूँ कि वह क्या चाहती हैं?"

"मैं अभी समझ नहीं सकी कि क्या करूँ?"

"देवी! वही करो जो मन कहता है। हाँ! इतना समझ लेना चाहिये कि पीतल तथा काँसे के मुकट में हीरे नहीं लगाये जाते। रत्न स्वर्ण के भूषण में ही शोभा पाते हैं। अवध की महारानी बनो। भारत-भर में कीर्ति और यश पाओगी। अवध इस समय वैभव तथा शक्तिशाली राज्य है। मगध से एक ओर, वैशाली से दूसरी ओर तथा अंग, बंग, हस्तिनापुर, कलिंग, कलिन्दी और मल्ल राज्यों से मित्रता रखता है। हमारी प्रजा हम से प्रसन्न है। हमारे यहाँ ब्राह्मण और शूद्रों का मान होता है। वैश्य सेठ हमारे यहाँ सुख और चैन से व्यापार करते हैं और धर्म-कर्म करते हैं।

हमारे राज्य में चोर नहीं हैं, असत्यवादी नहीं हैं। परस्त्री-गामी नहीं हैं। सब युवा-युवतियाँ विवाहित सुखमय जीवन व्यतीत करती हैं।

"ऐसे देश में आप सब की पूज्य महारानी बनकर रहेंगी। जहाँ अवध के लोग हमसे प्रसन्न होंगे, वहाँ आप भी यश और कीर्ति की भागी बनेंगी।"

मल्लिका इस चित्र को सुन चकाचौंध रह गई। जो दृश्य उसके सम्मुख खींचा गया, उसमें भानुमित्र एक क्षुद्र प्रजा दिखाई दिया। उसने भूमि की ओर देखते हुए कहा, "मैं आपको वरती हूँ।"

"धन्यवाद देवी! मुझे गद्‌गद् कर दिया आपने। मैं जन्म-भर आज के दिन को नहीं भूलूँगा।" अवध-नरेश का कहना था।

"चिरञ्जीव रहो, बेटी!" गुरुदेव का आशीर्वाद था।

माँ के प्रसन्नता से आँसू बहने लगे। उसने अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए उसका माथा चूम लिया।

कुलपति ने सेवक को एक पुष्पमाला लाने को कहा। वह पूजा-गृह में गया और एक-बड़ी सी पुष्पमाला उठा लाया। मल्लिका ने उठ वह माला अपने हाथ में ले ली और अवध-नरेश के गले में डाल कर, उन्हें हाथ जोड़ नमस्कार कर दिया।

इस समय चमुचूड़ और महाराज के अन्य सेवक भीतर आ गये। कानों-कान मल्लिका के महाराज अवध से विवाह होने का समाचार बाहर जा पहुँचा था। चमुचूड़ को देख महाराज ने आज्ञा दी, "तक्षशिला विश्वविद्यालय को एक लाख स्वर्ण-मुद्रा दी जायें और देखो आज ही अवध की महारानी के उपयुक्त भूषण तथा वस्त्र मल्लिका देवी के निवास-स्थान पर पहुँचा दो।"

पश्चात् गुरुदेव ने दोनों को सम्बोधन कर पूछा, "विवाह कब होगा?"

"कल प्रातःकाल।" अवध-नरेश ने कहा, "हम कल मध्याह्न समय चला जाना चाहते हैं।"

गुरुदेव ने मल्लिका की माँ की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा। उसने केवल इतना कहा, "जैसी महाराज की इच्छा हो।"

बात निश्चय हो गई। गुरुदेव ने कह दिया, "कल प्रातः यज्ञ के समय

तुम दोनों का विवाह-संस्कार पढ़ा जावेगा। देवी सौभाग्यवती और चिरंजीव होवो।" पश्चात् उन्होंने अपने सेवक को सम्बोधन कर कहा, "इस विवाहोत्सव के उपलक्ष में विश्वविद्यालय-भर में ढोल, तुरीं, नगाड़े तथा शंख बजाये जावें और विवाह का समारोह मनाया जावे।"

: ६ :

कवि-समारोह के विसर्जन पर जब सभा-मण्डप से सब स्त्रियाँ जा चुकीं, तो भानुमित्र को कुछ चिन्ता हुई। वह सभा-मण्डप के भीतर चला गया। भवन खाली हो गया था और मल्लिका वहाँ से जा चुकी थी। इससे वह पुनः द्वार पर आया और अतिथि-गृह के मार्ग में नीम के पेड़ तक गया। उन्हें वहाँ भी न देख निराश हो अपने निवास-गृह को लौट आया। वहाँ अन्य सहपाठियों के साथ भोजनालय में चला गया और हाथ-मुख तथा पाँव धो कुल्ला कर आसन पर जा बैठा।

भोजन परसा गया और वह अपने विचारों में लीन, साथियों की वार्तालाप, जो कवि-समारोह के विषय में हो रही थी, न सुनता हुआ भोजन करने लगा। इस पर भी उनकी वार्तालाप में जब मल्लिका का नाम आया, तो वह एकाग्र चित्त नहीं रह सका और ज्यूँ-त्यूँ कर मल्लिका के विषय की बात सुनने लगा। एक ने कहा था, "मल्लिका ने सब से अधिक उपहार पाया है।"

भानुमित्र ने चौकन्ना हो पूछा, "क्या पाया है?"

"तो तुम नहीं गये थे वहाँ?"

"नहीं! मैं भवन के बाहर ही रह गया था।"

"अवध-नरेश मुरहारी विक्रम ने, जो हमारे विश्वविद्यालय के ही स्नातक हैं, एक बहुमूल्य मुक्ताहार भेंट में दिया है।"

"किस कविता पर।"

"किस विधि पार करूँ······यह और इसका गायन करने पर तथा इसके साथ नृत्य करने पर। सभा-संचालक साहित्याचार्य कहते थे कि दस

सहस्र स्वर्ण मुद्रा से कम दाम की वस्तु नहीं है।"

भानुमित्र चुप रहा। वह विचार कर रहा था कि मल्लिका मिलती तो वह उस हार को देखता। उसका मन कहता था कि उसे उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। शायद उपहार की खुशी में उसे भूल गई हो। इस विचार के आते ही उसका हृदय बैठने लगा। उसे चुप देख उसके साथी ने हार मिलने का दृश्य, सविस्तार वर्णन कर दिया।

इस कथा को सुन भानुमित्र की चिन्ता और बढ़ गई। वह देख रहा था कि मल्लिका द्रुत गति से ख्याति में उससे आगे निकल रही है। इससे उसे मल्लिका की माँ का यह कथन पुनः स्मरण हो आया कि मूल्यवान रत्न के लिये सुदृढ़ तिजोरी चाहिये।

इन्हीं विचारों में वह भोजन करता रहा। भोजन समाप्त हुआ और वह हाथ धो, कुल्ला कर अपने निवास गृह में आ गया और अपने शयनपट्ट पर लेट विश्राम करने लगा। वह सोच रहा था कि अगले दिन प्रातःकाल ही वह मल्लिका से मिलकर विवाह के विषय में बातचीत करेगा।

वह अभी इन विचारों में लीन ही था कि बाहर शंख, भेरी, दुंदुभि इत्यादि के बजने का स्वर सुनाई दिया। सब विद्यार्थी इससे सावधान होकर सुनने लगे। एक विद्यार्थी बाहर से आया। वह अपने सम्बन्धियों को, जो महोत्सव देखने आये हुए थे, अतिथि-गृह में छोड़ने गया हुआ था। वह आया और इन शंखादि के बजने का कारण बताने लगा, "मल्लिका ने अवध-नरेश को वरने का वचन दे दिया है और कल विवाह होगा।"

भानुमित्र, जो अपने शयन-पट्ट पर लेटा हुआ था, इस समाचार को सुन उठ खड़ा हुआ, मानो उसे बिच्छू ने काट खाया हो। उसने नवागन्तुक से पूछा, "क्या हुआ है?"

"गान्धार-निवासिनी मल्लिका ने परम पूजनीय कुलपति जी के सम्मुख अवध-नरेश से विवाह करना स्वीकार कर लिया है। बात पूर्ण विश्वविद्यालय में फैल गई है और लोग शंख, भेरी, झाँझर इत्यादि बजाकर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। कल प्रातःकाल मन्दिर में हवनोपरान्त उनका विवाह होगा

और कुलपति स्वयं विवाह कराएँगे। अवध-नरेश ने इस उपलक्ष में एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रा विश्वविद्यालय को दान में दी हैं।"

"तो इस धन के लोभ में गुरुदेव ने यह विवाह निश्चय करवाया है ?" भानुमित्र ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा।

"मल्लिका ने तो स्वयंवर किया है। उसने कितनी देर तक नरेश से बातें कीं और फिर उसे अपना पति बनाना स्वीकार किया है।"

"सब कुछ धन के लोभ में हुआ है।"

"तो धन का लोभ करना कोई बुरी बात है ?" एक ने पूछ लिया।

विद्यार्थी-निवास में भी शंख बजने लगे। इससे उल्लास और आल्हाद उत्पन्न हो गया। भानुमित्र के मन में क्रोध, निराशा और घृणा की बाढ़ उठ आई। उसको यह सब तुमुल-नाद पागल बनाने लगा और वह चुपचाप निवास-गृह से बाहर निकल, पागलों की भाँति दूर जंगल की ओर भाग निकला। वह इस प्रसन्नता और आनन्द-ध्वनि की पहुँच से निकल जाना चाहता था।

घड़ी-डेढ़ घड़ी के हर्ष-प्रदर्शन के पश्चात् शंख इत्यादि बन्द हो गये और सब लोग विश्राम करने के लिये अपने-अपने निवास-स्थान पर चले गये।

भानुमित्र दूर कल-कल करती हुई नदी के तट पर जा बैठा। सुनसान और प्रशान्त रात्रि के अन्धियारे में, केवल तारों के प्रकाश में एक काली-सी हिलती हुई चादर की भाँति बहती हुई नदी को देख वह असार संसार के निष्प्रयोजन बहने पर विचार करने लगा।

इन्हीं विचारों में वह कितने ही काल तक वहाँ बैठा रहा। इस ऋतु में रातें वहाँ ठंडी होती है और फिर उत्तर-पश्चिम की वायु चलने लगी थी। इस ठंडक ने उसके मस्तिष्क का उन्माद ठंडा कर दिया था। वह सोचने लगा था कि अवध-नरेश से वह बहुत छोटा है। यदि मल्लिका ने नरेश को उस पर उपमा दी है तो अचम्भा करने की बात नहीं। इस प्रकार क्रोधावस्था से निराशा में हो, उसे वस्तु-स्थिति का भान हुआ। इससे उसे अपने

पर शोक तथा वैराग्य उत्पन्न हो गया।

इस समय उसे सर्दी लगने लगी और वह अपने स्थान से उठ, निवास-गृह को वापस लौट आया।

: ७ :

भानुमित्र को रात नींद नहीं आई। वह प्रातः होते ही मल्लिका को बधाई देने के लिये उतावला हो उठा। शौचादि से निवृत्त हो, वस्त्र पहन मल्लिका को मिलने के लिये चल पड़ा। वह विवाह से पूर्व ही उसे, मिल-कर बधाई देना चाहता था। वह मन्दिर में जा पहुँचा, जहाँ विवाह-संस्कार होना था। वहाँ अवध-नरेश तथा अन्य राजागण और प्रतिष्ठित दर्शक पहले ही उपस्थित हो गये थे। भानुमित्र ने एक साधारण से व्यक्ति से, जो किसी का सेवक प्रतीत होता था, पूछा, "वर कौन है?"

उसने, सिर से पाँव तक स्वर्णजड़ित रेशमी कपड़े पहने एक अति सुन्दर युवक को खड़े दिखा दिया। उसके सिर पर पहनने का पहरावा न तो मुकुट था और न ही टोपी। एक विचित्र प्रकार का पहरावा था, जिस पर रत्न जड़े हुए थे। भानुमित्र को समझ आ गई कि मल्लिका का उसे छोड़, इस विशिष्ट व्यक्ति को वरना स्वाभाविक ही है।

उसे अपने माता-पिता पर क्रोध आ रहा था। वह सोचता था कि उस जैसे कुरूप तथा निर्धन को इतनी उच्च शिक्षा क्यों दी गई। माता-पिता से अधिक वह भगवान् को कोस रहा था। उसे इतनी तीव्र बुद्धि दी तो उसके अनुकूल रूप और धन क्यों नहीं दिया। इस समय उसे स्मरण हो आया कि वह मल्लिका से मिलने आया है। उसने फिर उसी सेवक पूछा, "वधू आ गई है क्या?"

सेवक ने इस विद्यार्थी की ओर, कुछ अचम्भे में देख उत्तर दिया, "गुरु-गृह में है। वहाँ से अभी लाई जावेगी।"

यह सुन भनुामित्र गुरुगृह की ओर चल पड़ा। मन्दिर से गुरुगृह तक मार्ग के दोनों ओर विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियाँ खड़ी थीं। प्रत्येक वधू की

सज-धज और उसकी सवारी की शोभा देखने के लिये उत्सुक प्रतीत होता था। भानुमित्र समझ गया कि मार्ग में मल्लिका को एकान्त में देखना असम्भव है। इसी आशा में वह गुरुगृह तक पहुँच गया था। वहाँ पर भी दर्शकों की भीड़ लग रही थी। जब वह वहाँ पहुँचा, मल्लिका अति सुन्दर भूषण और वसन पहने अपनी माँ के साथ गुरु-गृह से निकल रही थी। उसके साथ वयोवृद्ध कुलपति मुनि वैवस्वत, रेशमी वस्त्र पहने, अपनी श्वेत दाढ़ी को प्रसन्नता से खुजलाते हुए बाहर आये और मल्लिका के साथ चल पड़े। उनके साथ ही महिला विद्यालय की अध्यापिकाएँ, छात्राएँ, और पीछे मल्लिका की सखियाँ थीं। इस प्रकार वधू की सवारी मन्दिर की ओर चल पड़ी। मार्ग के दोनों ओर दर्शकों की भीड़ थी। भानुमित्र के लिये मल्लिका से बातचीत करने का अवसर नहीं था। मल्लिका चलती हुई भूमि की ओर देख रही थी। वह नहीं जानती थी कि कौन-कौन उसे देखने वहाँ पहुँचे हैं।

जब मल्लिका की सवारी मन्दिर की ओर जा रही थी तो मार्ग के दोनों ओर खड़े हुए लोग भी उसके पीछे-पीछे मन्दिर की ओर चल पड़े। एक भारी जनसमूह मल्लिका के पीछे-पीछे जा रहा था। भानुमित्र भी चुम्बक की ओर लोहकण की भाँति खिंचा हुआ, उस भीड़ में उसके पीछे जाने लगा। कुछ दूर तक तो वह उसी ओर खिंचता हुआ चला गया, परन्तु तुरन्त ही उसके मन में आत्मग्लानि उत्पन्न हो गई और वह अपने को इस भीड़ से पृथक करने का यत्न करने लगा। वह हिम्मत कर एक ओर हो भीड़ से बाहर खड़ा हो गया। मल्लिका तथा भीड़ आगे निकल गई और वह अकेला खड़ा रह गया। उसने मन में विचार किया कि वह क्यों उसके पीछे जा रहा था? ये लोग उसके पीछे क्यों भागे जा रहे हैं? यह बचपना है, ऐसा समझ उसने मन्दिर की ओर जाने के स्थान, अपने निवास-गृह का मार्ग ले लिया।

उसने निश्चय कर लिया कि अब उसके लिये विश्वविद्यालय में रहने का कोई अर्थ नहीं है। इससे निवास-गृह में पहुँच उसने अपना सामान बाँध लिया। सामान बहुत ही संक्षिप्त था। पहनने के कपड़ों की एक गठरी बन गई। फिर उपाधि-पत्रक तथा विशेष योग्यता के उपलक्ष में मिली सन्दूकची

इत्यादि की दूसरी गठरी बंध गई। दोनों को एक चादर में बाँध, कन्धे पर लटका लिया—एक को आगे और एक को पीछे। अपना नया जूता निकाल पहनकर घर को प्रस्थान करने के लिये तैयार हो गया।

उस समय निवास-गृह के सब विद्यार्थी मल्लिका का विवाह देखने गये हुए थे। भानुमित्र तैयार हो अपने सामान को कन्धे पर डाल, एक क्षण के लिये अपने गृह को देखता रहा और आठ वर्ष के अपने उस गृह से सम्बन्ध को स्मरण कर, अब उसे छोड़ने पर दुःख अनुभव करता रहा।

गृह से बाहर निकल उसके मन में अपने राजनीति के गुरु जयदेव से आशीर्वाद लेने का विचार आया। वह उनके गृह पर पहुँच गया। आचार्य जयदेव मल्लिका का विवाह देखने गये हुए थे। गुरुपत्नी गृह पर थी। भानुमित्र के द्वार खटखटाने पर वह आई और भानुमित्र को यात्रा के लिये तैयार देख सब समझ गई। वह और प्रायः विश्वविद्यालय के अन्य लोग जानते थे कि भानुमित्र से मल्लिका का विवाह होना था। इससे उसने भानुमित्र से पूछा, "जा रहे हो, वत्स?"

"हाँ माताजी! गुरु जी कहाँ हैं?"

"वह तो, बेटा! विवाह देखने गये हैं। मुनि वैवस्वत जी विवाह पढ़ा रहे हैं न। ये उनकी सहायता करने गये हैं।"

"जाने से पूर्व गुरुदेव से आशीर्वाद लेने आया हूँ। सबसे अधिक आप से ही सम्बन्ध रहा है। इससे आपका ही आशीर्वाद फलेगा।"

"तो बेटा! आओ, बैठ जाओ। अभी आते ही होंगे।" इतना कह गुरुपत्नी ने उसे गृह के भीतर बुलाकर बैठने के आगार में भूमि पर बिछे आसन पर बैठा दिया। स्वयं एक ऊँची चौकी पर बैठ गई। भानुमित्र चुप-चाप बैठा था। गुरुपत्नी ने कुछ बात करने के लिये मल्लिका की बात ही चला दी। कहने लगीं, "बेटा भानुमित्र! मल्लिका का तो तुम्हारे संग विवाह होना था?"

"हाँ, माता जी!"

"फिर यह कैसे हुआ?"

"जब मेरी निर्धनता की तुलना अवध-नरेश से की गई तो मैं हार गया।"

"इस हार का तुम्हें दुःख है, बेटा?"

"मुझे कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है कि मेरे पाँव तले से भूमि ही खिसक गई है। मुझे संसार धोखा, माया प्रतीत होने लगा है। इस में जीने का कुछ अर्थ भी है या नहीं, कह नहीं सकता।"

"ठीक है, बेटा! इस सारहीन संसार में अपना कुछ है या नहीं समझ नहीं आता। आप सब विद्यार्थी कितना स्नेह करते हैं आचार्य जी से। पर वे तो बिना पुत्र के अपनी गति ही नहीं मानते। पुत्र न दे सकने से मैं भी तो अप्रिय हो गई हूँ। सर्वत्र बात एक ही है। किसी को पुत्र प्रिय है और किसी को धन। वास्तव में मोह ही संसार में दुःख का कारण है।"

"यही तो मेरा कहना है। मुझे तो सब कुछ नीरस प्रतीत होने लगा है।"

"अब यहाँ से किधर जाना चाहते हो?"

"अभी श्रीनगर में पिताजी के पास जाऊँगा। उनसे राय कर भविष्य के विषय में विचार करूँगा।"

"सुना है श्रीनगर बहुत सुन्दर स्थान है।"

"श्रीनगर तो सुन्दर है; ही परन्तु काश्मीर के अन्य स्थान तो इससे भी अधिक सुन्दर हैं। पहाड़, झरने, नदियाँ और जलाशय एक-से-एक अधिक दर्शनीय स्थान हैं। इस पर भी वहाँ अधिक लोग नहीं रहते और जो कोई वहाँ रहते भी हैं, निर्धन हैं। वहाँ के व्यापारी भी कुछ अधिक धनी नहीं।"

"हम कई वर्षों से उधर भ्रमणार्थ जाने का विचार कर रहे हैं। इस वर्ष आशा करते हैं कि यहाँ से निकलेंगे और कैलाश और गंगोत्री तक जायेंगे।"

इस प्रकार निष्प्रयोजन बातें चल रही थीं, जब आचार्य जयदेव आये। भानुमित्र को वहाँ बैठा देख समझ गये कि वह विदा माँगने आया है। जयदेव का भानुमित्र से विशेष स्नेह था। वह उसके-पाठ्य विषय का योग्य-

तम विद्यार्थी था। इससे बहुत स्नेह से उसे सम्बोधन कर बोले, "वत्स! जा रहे हो?"

"गुरुदेव, हाँ। मेरा कार्य आपकी कृपा से समाप्त हो गया है।"

"देखो वत्स! मेरा तुमसे एक कहना है। विवाह उस स्त्री से करना, जिसका पेट भरने के लिये तुम्हारे पास धन हो। वैश्य अर्थात् व्यापारी श्रेणी की लड़कियों की तृष्णायें बहुत लम्बी-चौड़ी होती हैं। एक सत्यवादी, धर्मनिष्ठ ब्राह्मण उनकी तृष्णाओं की पूर्ति कदापि नहीं कर सकता। इससे मेरी सम्मति है कि किसी ब्राह्मण-कन्या से विवाह करना। उसके लिये तुम्हें न तो अपनी न्याय-दृष्टि और न ही धर्मनिष्ठा छोड़नी पड़ेगी। समय पड़ने पर सूखे सत्तू और नमक खाकर भी निर्वाह करने की क्षमता उसमें होगी। फिर धन-वैभव, अतुल सुख-सम्पदा भी उसे सतीत्व से गिराने में सबल नहीं होंगी। अब तुम जा सकते हो। कभी-कभी अन्य विद्यार्थियों की भाँति विश्व-विद्यालय को स्मरण रखना। कभी पत्र भेजने का अवसर मिले तो अवश्य लिखना।"

इतना कह आचार्य ने भानुमित्र के सिर पर हाथ रखा और आशीर्वाद दे विदा कर दिया। भानुमित्र ने गुरु तथा गुरुपत्नी दोनों के चरण-स्पर्श किये और वहाँ से चल कुलपति से भेंट करने चल पड़ा।

: ८ :

कुलपति मुनि वैवस्वत के गृह के सम्मुख अब भी भीड़ लगी हुई थी। अवध-नरेश और मल्लिका, जो अवध की महारानी बन चुकी थी, गुरुदेव से विदा लेने आये हुए थे। अवध-नरेश के सब कर्मचारी और उनकी सवारी के लिये रथ, घोड़े, ऊँट इत्यादि खड़े थे। रक्षकों का दल भी था। सब तक्षशिला से विदा होने को तैयार थे। मार्ग में अगले ठहरने के स्थान पर प्रबन्ध करने के लिये लोग बहुत प्रातःकाल ही भेजे जा चुके थे।

इस भीड़ को देख भानुमित्र एक ओर हटकर खड़ा हो गया। उसने यही उचित समझा कि इनको जा लेने दे और पीछे कुलपति से विदा माँगने

भीतर जावेगा।

कुछ समय पश्चात् मल्लिका और अवध-नरेश गुरुगृह से निकले और सवार होने के लिये रथ के पास पहुँचे। इस समय मल्लिका की दृष्टि दूर खड़े भानुमित्र पर गई। वह रथ पर चढ़ते-चढ़ते रुक गई। मल्लिका ने इधर-उधर किसी सेवक को बुलाने के लिये देखा। केवल चमुचूड़ ही समीप खड़ा था। उसने हाथ के संकेत से उसे बुलाया और फिर भानुमित्र को दिखाकर कहा, "उस विद्यार्थी को इधर बुला लाओ।"

चमुचूड़ ने नाक चढ़ाकर भानुमित्र की ओर देखा, परन्तु महारानी की आज्ञा-पालन के लिए चल पड़ा। भानुमित्र मल्लिका को गुरुगृह से निकलते देख उनकी ओर पीठ कर खड़ा हो गया था और वह देख नहीं रहा था कि महारानी के आदेश से चमुचूड़ उसकी ओर आ रहा है। इसका उसे तब ज्ञान हुआ, जब चमुचूड़ ने कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "चलो, महारानी जी बुलाती हैं।"

भानुमित्र ने चमुचूड़ के मुंख पर देखा और फिर गर्दन सीधी कर बोला, "मैं महारानी जी का सेवक नहीं हूँ।"

चमुचूड़ ने उसका मुख देखा तो पहचान गया कि यह वही बालक है, जिसके साथ उसने मल्लिका को हँसते और बातें करते देखा था। इससे उसे अपनी भूल अनुभव हुई। अतएव कुछ नम्रता से बोला, "मित्र! मेरा आशय ऐसा नहीं था। महारानी जी विदा होने से पूर्व आप से मिलना चाहती हैं।"

"परन्तु मैं मिलना नहीं चाहता।"

समीप खड़े लोग भानुमित्र की धृष्टता देख चकित हो रहे थे। चमुचूड़ ने कहा, "बहुत ही असभ्य हो, तुम? अयोध्या में होते तो जिह्वा निकलवा देता। विश्वविद्यालय की पवित्रता की संरक्षकता में होने से बच गए हो।"

इतना कह चमुचूड़ लौटने ही वाला था कि महारानी स्वयं वहाँ आ पहुँचीं। उसे आया देख भानुमित्र ने कुछ नम्र हो पूछा, "देवी! मुझसे क्या चाहती हैं?"

मल्लिका ने भानुमित्र के, विषाद से हुए काले मुख को देखा और उसके भावों का अनुमान लगाकर कहा, "मित्र ! मैं अब जा रही हूँ। क्या तुम मेरे लिए शुभ कामना नहीं करोगे ?"

"देवी ! मेरे जैसे निर्धन की शुभ कामना की आवश्यकता है क्या ? उसके मिलने अथवा न मिलने से कुछ अन्तर नहीं पड़ेगा।"

"फिर भी बचपन के साथी मित्र ! तुम्हारी शुभ कामना को मैं मूल्य-वान समझती हूँ।"

"सत्य ? मुझे सन्देह है, देवी ! इस पर भी एक निर्धन प्रजा के लिए अपने राजा तथा रानी के लिए शुभ कामना करने के अतिरिक्त और कुछ उपाय भी तो नहीं।"

महाराज भी इस समय वहाँ आ गये। मल्लिका ने उन्हें आया देख हाथ जोड़, भानुमित्र को नमस्कार करते हुए कहा, "कभी अयोध्या में आओ, मित्र ! तो अवश्य मिलना।"

इतना कह वह महाराज के साथ रथ के समीप आ गई और ज्यों ही रथ पर बैठी, रथ चल पड़ा। उसके पीछे सब सेवक-मण्डल रथों, घोड़ों, ऊँटों पर सवार हो और पैदल चल पड़े। इनके चलने से उड़ती धूलि में खड़ा भानुमित्र विचारों में लीन अपने को भूल गया था।

तीन

अवधपुरी

: १ :

मल्लिका और अवध-नरेश मुरहारि विक्रम तक्षशिला में विवाह करने के उपरान्त घूमते-घामते दो मास में अयोध्या पहुँचने वाले थे। उनके अयोध्या पहुँचने की सूचना कई दिन पहले पहुँच चुकी थी। घुड़सवार दूत सूचना लाये थे कि महाराज एक अति सुन्दर गान्धार-कन्या को विवाह कर साथ ला रहे हैं।

इस सूचना के मिलने पर महाराज और महारानी के स्वागत का प्रबन्ध होने लगा। नगर-भर की सफाई की गई। नगर से बाहर पश्चिम से आने वाले मार्ग को दो कोस तक पुष्प, आम्र-पत्र और रंगारंग के कपड़ों के तोरण, मालाओं और पताकाओं से सजाया गया। नगर का पश्चिमी द्वार और फिर मार्ग पर दो कोस नगर से दूर एक फूल-पत्तों से निर्मित द्वार निर्माण किया गया और दोनों स्थानों पर स्वागत का प्रबन्ध किया गया।

नगर से दो कोस की दूरी पर जो द्वार था, वहाँ महाराज तथा उनकी नव-विवाहिता के आगमन के दिन, नगर के प्रतिष्ठित जन और मन्त्री-गण प्रातःकाल से ही पहुँच चुके थे। ये लोग हाथों में मालाएँ लिये द्वार के पास उपस्थित थे। यहाँ पर स्वागत के लिये आने वालों की संख्या कई सहस्र तक हो गई थी। वहाँ से लेकर नगर-द्वार तक लोग पंक्तियाँ बाँध मार्ग के दोनों ओर खड़े हो गये। लोग पुष्पों के बड़े-बड़े टोकरे भर-भर कर लाये थे, जिससे महाराज और महारानी पर पुष्प-वर्षा कर सकें।

सब लोग नवीन, रंग-बिरंगे वस्त्र पहने थे। स्त्रियाँ भूषण और फूलों के गजरे वेणियों में बाँधे हुए अपने पतियों तथा माता-पिताओं के साथ भारी संख्या में उपस्थित थीं। फाल्गुन का मास था और मन्द-मन्द सुरभित सुखद् समीर लोगों के मन में उत्साह और उल्लास भर रही थी। ऐसे वातावरण में कामदेव निश्चल नहीं बैठा था।

एक ब्राह्मण देवता, पाँव में लकड़ी की पादुका पहने, पीतवर्ण धोती और अंगरखा धारण किये, गले में रेशमी दुपट्टा डाले, सिंहद्वार की ओर अपने रथ में आ रहा था। उसके समीप एक पंचदश वर्षीय कन्या बैठी थी। उसके हाथों में, पूजा की सामग्री से सजी हुई सोने की थाली थी। रथ वेग से चला आ रहा था। जब रथ सिंहद्वार पर पहुँचा तो खड़ा हो गया। इसके खड़े होते ही लड़की कूदकर रथ से नीचे उतर पड़ी। लड़की ने लाल रंग की रेशमी चोली और पीले रंग का रेशमी लहंगा पहना था। लहंगे पर नीचे तिलेई किनारा लगा था, सिर से नंगी थी और वेणी पर मोतियों का गजरा बँधा था। गले में स्वर्णमाला थी, जिसमें हीरा-माणिक इत्यादि रत्न जड़े थे।

ब्राह्मण राज-कुल पुरोहित पं० मैलन्द था और लड़की उसकी माता-विहीन पुत्री राका। राका की चञ्चलता और सौन्दर्य वहाँ पर उपस्थित स्त्रियों और लड़कियों को पछाड़ रहे थे। उसे फुर्ती से कूदकर रथ से उतरते देख एक युवक के मन में उल्लास उत्पन्न होने लगा। वह इस सुन्दर अधखिली कली को देख जहाँ खड़ा था, स्तब्ध खड़ा रह गया।

युवक अवध के महामात्य रिपुदमन का पुत्र प्रद्युम्नकुमार था। वह पिता का इकलौता पुत्र था और माँ की ममता के कारण शिक्षा ग्रहण करने कहीं बाहर नहीं जा सका था। जो कुछ शिक्षा उसे मिली थी, वह घर पर ही दी गई थी।

राका रथ से उतर थाल में आरती का सामान सँवारने लगी, और प्रद्युम्नकुमार राका की चञ्चल उँगलियों को वह सामान ठीक करते देखने लगा। प्रद्युम्नकुमार पं० मैलन्द को तो जानता था, परन्तु राका को

उसने पहली ही बार देखा था। इतनी सुन्दर लड़की को अयोध्या में देख उसे अचम्भा हुआ। उसने मन में निश्चय कर लिया कि इस लड़की से विवाह करेगा।

इतने में एक दुर्घटना हो गई। एक रथ घूमकर मार्ग से नीचे उतरने में उलट गया। चाहिये तो यह था कि मार्ग पर रथ खड़ा कर दिया जाता, परन्तु सारथि ने रथ को एकदम मार्ग से नीचे उतार कर खड़ा करने का निश्चय किया और भागता हुआ रथ नीचे उतरने में उलट गया। रथ में नगरसेठ भद्रसेन और उनकी स्त्री सुभद्रा बैठी थी। रथ उलटने पर दोनों बहुत बुरी भाँति गिरे। माथे पर और हाथों पर चोट आई। इससे अधिक हानि नहीं हुई। वे शीघ्र उठकर खड़े हो गए और अपने नवीन रेशमी और तिल्ले-गोटे से जड़ित वस्त्रों से धूलि झाड़ने लगे। कई अन्य लोग उनसे सहानुभूति प्रकट करने उनके चारों ओर एकत्रित हो गये। पं० मैलन्द भी उनमें जा पहुँचा।

राका मार्ग के एक ओर अकेली खड़ी रह गई। प्रद्युम्नकुमार ने अवसर जान उसके समीप आ कहा, "देवी! स्वर्णथाल के भार से कोमल कलाई मुड़ी जा रही है। क्या मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ?"

"नहीं! मैं इतनी दुर्बल नहीं हूँ।" राका का उत्तर था।

"फिर भी तो लड़कियों की सहायता की ही जाती है।"

राका ने कहने वाले के मुख पर देखा। एक भद्दी आकृति के युवक को देखकर बोली, "यह थाली स्वर्ण की है। भला आपका विश्वास कैसे कर सकती हूँ?"

"तो मैं तुम्हें चोर दिखाई देता हूँ?"

"मैं नहीं जानती कि तुम कौन हो।"

"महामात्य श्री रिपुदमन जी का सुपुत्र हूँ।"

"तो महामात्य के सुपुत्र जी! क्षमा करिये। आपकी सहायता की आवश्यकता नहीं।"

इस समय पण्डित मैलन्द राका के पास लौट आया। प्रद्युम्न को राका

से बातें करते देख, माथे पर त्योरी चढ़ा, उसने कहा, "चलो राका ! सिंह-द्वार में खड़ी हो जाओ। वह देखो दूर आकाश धूल से भर गया है। महाराज आ रहे हैं।"

राका सिंहद्वार में एक ओर खड़ी हो गई। उसके समीप पं० मैलन्द और अन्य प्रतिष्ठित नागरिक, उनकी पत्नियाँ तथा लड़कियाँ खड़ी हो गई। मार्ग के दूसरी ओर सिंहद्वार में मन्त्रीगण खड़े हो गए।

अवधनरेश महारानी के साथ सर्वप्रथम रथ में बैठे थे। उसके पीछे तीन रथ और थे, जिन पर चमुचूड़ इत्यादि उच्च पदाधिकारी और महाराज के सखा थे। उनके पीछे दो सौ घुड़सवार थे।

जब महाराज का रथ सिंहद्वार पर पहुँचा तो महामात्य के हाथ उठाने पर रथ खड़ाकर दिया गया। पीछे आने वाले रथ और घुड़सवार पीछे खड़े हो गए। रथ खड़ा होते ही महामात्य ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और दूसरी ओर कुल-पुरोहित ने पूजा की थाली में रखे घी के दीपक को जला दिया। राका रथ पर चढ़ गई और थाल को हाथ में पकड़ महाराज तथा महारानी की आरती उतारने लगी। पं० मैलन्द मंगलाचरण गान करने लगा।

इस में चौथाई घड़ी लग गई। राका आरती का थाल महारानी के सम्मुख रख रथ के नीचे उतर आई। पश्चात् स्वागत के लिये आये लोग रत्नमुक्तादि जड़ित मालायें अथवा पुष्प और कनारी की मालायें महाराज और महारानी को पहनाने लगे। और फिर महाराज सुरहारि विक्रम की जयजयकार में पुष्पवर्षा होने लगी। इस पुष्पवर्षा और जयजयकार की गगन-भेदी ध्वनि के भीतर रथ नगर की ओर चला। सबसे आगे महाराज और महारानी का रथ था। उनके पीछे पं० मैलन्द और राका रथ में थीं। पश्चात् महामात्यादि मन्त्रीगण। फिर राजा के सखा चमुचूड़ इत्यादि रथों में थे। इन सब के पीछे महाराज के शरीर-रक्षक घोड़ों पर सवार थे।

: २ :

मल्लिका के लिए अवध का वातावरण सर्वथा नवीन था। विश्व-विद्यालय में तो सब लोग उससे बराबरी का व्यवहार करते थे। लड़कों के साथ सम्पर्क बहुत कम था और लड़कियाँ उससे हँसी ठट्ठा करती थीं। यहाँ अयोध्या में वह महारानी थी। सब लोग उसके दास-दासियाँ थीं। सब उसको देखते ही झुककर वन्दना करते और कोई भी उसके मुख की ओर देखने का साहस नहीं करता था।

महाराज की माता थीं और महल में पहुँचते ही सबसे पहला कर्तव्य उसने माताजी के चरण छू उनका आशीर्वाद प्राप्त करना समझा। महाराज के साथ उनके भवन में पहुँची। राजमाता को बहू के आने का समाचार मिल चुका था, इससे वह उसके सत्कार और भेंट देने का प्रबन्ध कर चुकी थी। वहाँ पहुँच महाराज और मल्लिका ने माता के चरण-स्पर्श किए। उसने उठकर दोनों को गले से लगा आशीर्वाद दिया और अपने सामने बैठा उनको तिलक लगाया। उनके गले में रत्नजड़ित मालाएँ पहनाईं और फिर फल-पुष्प उनकी झोली में डाले।

"माँ! बहू पसन्द है?" महाराज ने पूछा।

"बेटा! जब तुम पसन्द कर लाये हो तो मुझे नापसन्द कैसे हो सकती है। हाँ इतना तो कहूँगी कि तुम्हारा पसन्द अच्छी है।"

"धन्यवाद माँ! मुझे तुम्हारा ही डर था।"

अवध की प्रथा के अनुसार महाराज और महारानी दोनों सम्मिलित राज्य के भागी होते थे। इस कारण मन्त्री-मण्डल में विचार-विनिमय के समय महारानी भी इसमें भाग लेती थीं। मन्त्री-मण्डल की प्रथम बैठक में ही महाराज को अपने दो वर्ष तक राज्य से अनुपस्थित रहने का प्रभाव स्पष्ट हो गया। एक बात तो यह थी कि राज्यकोष प्रायः खाली हो रहा था। इस प्रकार के व्यय हुए थे, जो न होने चाहिएँ थे। दूसरे-बौद्ध, सम्प्रदाय का प्रचार अधिक हो गया था और बहुत से सेठी लोग अपना धन-दौलत सब कुछ बौद्ध-विहारों को दे भिक्षुक हो गए थे, जिससे राज्य

में व्यापार तथा कला-कौशल धीमा पड़ गया था और राज्य की कर से आय कम हो गई थी। इसके अतिरिक्त दो वर्षों में अयोध्या में गणिकाओं और मधु-शालाओं की संख्या अधिक हो गई थी। इन दोनों प्रकार के कार्यों पर राज्य-कर लगा दिया गया था। यद्यपि इससे राज्य को कुछ आय हुई थी, तो भी व्यापार के कम होने से जो हानि हुई थी, वह पूरी नहीं हो सकी थी।

महाराज की इच्छा थी कि अयोध्या में तक्षशिला के ढंग का एक विश्वविद्यालय चालू किया जाए जिसमें वेद, शास्त्र, राजनीति इत्यादि विषयों में उच्च कोटि की शिक्षा दी जाए। इस प्रस्ताव पर यह बताया गया कि कोष में धन नहीं रहा।

महाराज की इच्छा थी कि चिकित्सा के लिये मनुष्य चिकित्सालय और पशु चिकित्सालय खोले जावें। महामात्य का उत्तर था कि धन नहीं है।

इस प्रकार धन-सम्पद् से सम्पन्न राज्य दो वर्ष की अनुपस्थिति में एक निर्धन राज्य बन गया। मल्लिका मंत्री-मंडल में चुपचाप बैठी बातें सुनती रहती। एक बार सायं जब वह महाराज के साथ एकान्त में थी तो बोली, "महाराज का गुप्तचर विभाग शिथिल प्रतीत होता है।"

"कैसे कहती हो यह, रानी?"

"इस प्रकार कि राज्य का कोष समाप्त हो गया है। अर्थ-मन्त्री ने कोष का हिसाब तो लिखा ही होगा। इस पर भी यह सूचना तो आप को गुप्तचर विभाग से मिलनी चाहिये थी कि यह सब कैसे हुआ। क्यों गणिकाओं की नगर में भरमार हो गई? क्यों इतनी मधुशालाएँ खुल गई? क्यों लोग भिक्षुक भी अधिक बने और फिर विषय-गामी भी अधिक बने। यह जीवन का संतुलन क्यों टूटा? इस सब की सूचना तो आपको मिलनी चाहिये थी। केवल यह कह देने से कि ऐसा हो गया, काम नहीं चल सकता।

"भला आप जानते हैं कि राज्य के कोष में आपके जाने के समय कितना धन था?"

"कई लाख तो स्वर्णमुद्रायें थीं। कई सौ लाख स्वर्ण-मुद्रा के दाम के रत्नादि थे। फिर प्रतिवर्ष एक करोड़ रजतमुद्रा की कर से आय थी।"

"ये सब-कुछ कहां गया ?"

"मैं जानना चाहता हूँ, परन्तु जांच करने वाले भी तो यही मंत्री-गण होंगे।"

"मैं आपको एक सम्मति दूँ ?"

"हां।"

"तक्षशिला के राजनीति के आचार्य जयदेव से कोई कर्मचारी मांगिये। एक योग्य स्नातक का पता तो मुझे भी मालूम है, परन्तु शायद वह यहां आना स्वीकार नहीं करेगा।"

"कौन है वह ?"

"भानुमित्र ! उसे मेरे साथ ही विशेष पुरस्कार मिला था।"

"बात तो ठीक है। कोई बाहर का योग्य आदमी यहां बुला कर जांच करवाई जाए और फिर इस दुर्व्यवस्था की चिकित्सा करवाई जावे।"

"तो आप इस विषय में आचार्य जी को लिखिये। यदि वे भानु-मित्र को लिखेंगे तो वह अस्वीकार नहीं करेगा। अभी एक कार्य आप करिये कि एक गुप्तचर विभाग सीधा अपने अधीन बनाइये। मंत्री-गण का उसमें कोई हस्तक्षेप न हो। फिर मुख्य-मुख्य नागरिकों से सम्पर्क उत्पन्न करें, उनसे पूर्ण समाचार प्राप्त करने का यत्न करिये। आप प्रतिदिन एक समय नागरिकों से मिलने और उनकी कठिनाइयाँ जानने के लिये नियत करिये।"

महाराज को मल्लिका का विचार बहुत पसन्द आया। चमुचूड़ को निजी गुप्तचर विभाग का मुख्य प्रबन्धक नियत कर दिया। महाराज ने प्रतिदिन नगर के दो-दो तीन-तीन प्रसिद्ध प्रतिष्ठित नागरिकों को सपत्नीक बुलाने का प्रबन्ध कर दिया।

प्रतिदिन सायं के अल्पाहार के समय नगर के कुछ लोग महाराज और महारानी से मिलने आने लगे। मल्लिका इन सब अवसरों पर

उपस्थित होती थी और लोगों से नगर और राज्य-प्रबन्ध के विषय में प्रश्न पूछती थी।

यह बात और चमुचूड़ के प्रबन्ध में एक नये गुप्तचर विभाग की बात महामात्य से छुपी नहीं रही। वह महाराज में यह सतर्कता देख इस बात का अनुमान लगा बैठा कि महारानी ने मन्त्री-मण्डल के विरुद्ध महाराज के कान भरने आरम्भ कर दिये हैं।

एक दिन नगर के लोगों से वार्तालाप में महाराज को विदित हुआ कि महामात्य का लड़का प्रद्युम्नकुमार एक गणिका के मकान पर सुरा-भोज में नगर के चरित्रहीन लोगों को एकत्रित कर वैशाली के गणराज्य-प्रबन्ध की महिमा बता रहा था।

एक और दिन यह सूचना मिली कि बहुत-सा धन ऐसे लोगों को दिया जा रहा है जो महारानी को दुश्चरित्रा बता रहे हैं। यह धन कहां से आ रहा है पता नहीं चला।

इन समाचारों से उद्विग्न हो एक दिन मन्त्री-मण्डल में तू तू-मैं मैं हो गई। महाराज ने पूछा कि प्रद्युम्नकुमार लोगों को राज्य पलटने को कहता है, उस पर अभियोग क्यों नहीं चलाया जाता। इस पर महामात्य ने कहा, "प्रद्युम्न की यह सम्मति है और आज तक भारतवर्ष में किसी को सम्मति देने पर दंड नहीं दिया गया। एक राजा तो राजा ही है परन्तु चार्वाक-जैसे ईश्वर को भी न मानने वाले यहां ऋषि कहाए हैं।"

इस पर मल्लिका ने कहा, "राजनीति और परमात्मा को मानना-न मानना दो भिन्न भिन्न बातें हैं। परमात्मा की धारणा तो केवल मात्र मन से तथा आत्मा से सम्बन्ध रखती है और फिर परमात्मा के विरुद्ध चलन रखने वाले को ईश्वरीय नियम ही दंड देते हैं। परन्तु राज्य के विरुद्ध आचरण करने वालों को तो राज्य ही दंड देगा।"

"परन्तु महारानी जी को विदित होना चाहिये कि राज्य और राजा में अन्तर है।"

"राज्य, महाराज से लेकर नगरपालक के प्रतिहार तथा ग्राम के

पटवारी तक पूर्ण राज्य कर्मचारी मण्डल का नाम है। जो अधिकार इन में से एक के हैं, उन अधिकारों से उसको वंचित करने का यत्न करना राज्य का विरोध माना जाता है। राज्य का विरोध दंडनीय नहीं मानते महामात्य ?"

"परन्तु यदि कोई कर्मचारी अपना कर्तव्य पालन न करे तो ?"

"तो उस कर्मचारी को दंड दिया जा सकता है।"

"और यदि किसी कर्मचारी का स्थान ही व्यर्थ अथवा राष्ट्र के लिये अहितकर हो तो क्या किया जाये ?"

"इसका निर्णय करने के लिये धर्मशास्त्री अथवा न्यायशास्त्री उपयुक्त व्यक्ति हैं। एक मूर्ख, गंवार, कम शिक्षित व्यक्ति नहीं और फिर मधुशाला इस बात का प्रचार करने के लिये उपयुक्त स्थान नहीं है।"

इस पर महामात्य निरुत्तर हो गया, परन्तु अपने लड़के की रक्षा के लिये उसे कुछ-न-कुछ कहना अथवा करना आवश्यक था। इस कारण कहने लगा, "श्रीमती महारानी जी आजकल की राजनीति का आधार नहीं जानतीं। इसी कारण ऐसा कहती हैं। जनता वर्तमान काल में राज्य का आधार है। जनता को शिक्षित करना ध्येय है और यदि जनता मधुशालाओं में जाती है तो वहां पर जाकर ही तो प्रचार किया जा सकता है।"

इस पर महाराज ने माथे पर भृकुटि चढ़ाकर कहा, "महामात्य कब से अनार्य पथ के पथिक बने हैं ? जनता के सुख और संतोष के लिये तो राज्य है परन्तु यह बात अनार्य है कि जनता की सम्मति से राज्य चलेगा। राज्य का आधार तो पढ़े-लिखे विद्वान् और चरित्रवान लोग हैं।"

"महाराज ! कौन जानेगा कि अमुक व्यक्ति विद्वान् और चरित्रवान है ?"

"यह क्या वितंडावाद है ? विद्वान् की परीक्षा तो विद्वान् ही कर सकता है। साधारण जनता तो परीक्षक नहीं बन सकती। जो साधारण जनता को राजकीय कार्यों का परीक्षक बनने के लिए उकसाता है, वह अनर्थ करता है।

इसका परिणाम राज्य के लिए और राष्ट्र के लिए अनर्थकारी होगा।"

"मैं महाराज के मत से सहमत नहीं हूँ।"

"तो महामात्य को त्यागपत्र दे देना चाहिये," महारानी मल्लिका का कहना था।

"मैं त्यागपत्र देने को तैयार हूँ।"

महाराज ने कहा, "यह वादविवाद बहुत गम्भीर हो गया है। मैं आज्ञा देता हूँ कि इस विषय पर विचार कुछ काल के लिये स्थगित कर दिया जाये।"

बात को दबा दिया गया।

: ३ :

इस कृत्रिम शान्ति के दिनों में ही महामात्य का गुप्त-दूत वैशाली गया था। उस दूत ने महामात्य रिपुदमन की आज्ञा से ही वैशाली के मन्त्री-गणों को अवध में भारी जागीरें मिलने की आशा दी थी। इसका रहस्य और प्रमाण ढूँढते-ढूँढते ही वैशाली के कुछ मन्त्रियों से भानुमित्र विरोध में आ गया था और एक रात तो मन्त्रियों के सुभट्ट उसे मार ही डालने लगे थे। तब उसने एक खिड़की से कूदकर जान बचाई थी और विनोद-भवन में आश्रय लिया था। उन सुभट्टों में से एक भानुमित्र के घर का पता जानता था। इससे वह अपने साथियों को ले उसके घर पर जा पहुँचा। जब उसके सेवकों से उन्होंने भानुमित्र का पता पूछा तो एक ने दाल में कुछ काला समझ कह दिया कि पण्डित जी ऊपर की छत पर सो रहे हैं। इस सूचना के मिलते ही उन्होंने उस घर को आग लगा दी। सेवक जानते थे कि घर में अश्वों के अतिरिक्त और कुछ भी मूल्यवान वस्तु नहीं। इससे दो सेवक दो-दो अश्व लेकर घर से बाहर निकल आये और जलते मकान को निश्चिन्त हो देखने लगे। लोगों के पूछने पर उन्होंने बता दिया कि पण्डित जी मकान में सो रहे थे।

इस समय कञ्चन, नगरवधू का विश्वस्त सेवक, भानुमित्र का पत्र लेकर

वहाँ पहुँचा। उसने भानुमित्र के सेवकों को जलते मकान के बाहर खड़े लोगों को पण्डित जी के विषय में उत्तर देते देख जान लिया कि ये सेवक हैं। इससे एक को संकेत द्वारा लोगों से पृथक् कर भानुमित्र का पत्र दे दिया। इस पर वे दोनों घोड़े ले नगर के उत्तरी द्वार से बाहर निकल अपने स्वामी की प्रतीक्षा करने लगे।

भानुमित्र को कञ्चन ने मकान को आग लगने का समाचार बता दिया था। इससे वह सूर्योदय के समय जब द्वार के बाहर पहुँचा तो उसने एक सेवक को तो साथ ले जाना उचित समझा। दूसरे को आज्ञा दी कि दो शेष अश्व नगरवधू के घुड़साल में बाँध आवे। साथ ही उसे यह कह दिया कि उसके मकान में जल जाने के समाचार की पुष्टि वह रोकर और माथा धुनकर लोगों को दे, जिससे उनको विश्वास आ जावे।

इससे एक बात यह हुई कि भानुमित्र के शत्रु यह समझ गये कि वह मर गया है और उनका रहस्य सुरक्षित है। दूसरा यह कि अयोध्या में उसकी खोज और मारने की योजना बनाने की आवश्यकता न रही और वह वहाँ शान्ति से कार्य कर सका।

भानुमित्र जब अयोध्या पहुँचा तो वहाँ राज्य के पंथागार में तीर्थ-यात्रा के लिये देश में भ्रमण कर रहे यात्री के रूप में ठहर गया।

जिस दिन वह वहाँ पहुँचा, उसी दिन धोती अँगोछा ले सरयू स्नान को गया। वहाँ ब्राह्मणों को बुला अपने पितरों के लिए पिण्डदान कराने लगा। पश्चात् सरयू के किनारे ही दान-दक्षिणा ब्राह्मणों को बाँट पंथागार में लौट आया।

मध्याह्न के भोजनोपरान्त कुछ विश्राम कर बाजार की टोह लेने निकल पड़ा। वह टोह लेता हुआ नगर-सेठ भद्रसेन की कोठी में जा पहुँचा। भद्रसेन रत्नों का व्यापार करता था। भानुमित्र ने अपना परिचय दिया कि वह काश्मीर का रहने वाला है, तीर्थ-यात्रा के लिये भ्रमण कर रहा है, प्रत्येक तीर्थ-स्थान से वह कोई वस्तु स्मृति योग्य मोल ले रहा है, सो यहाँ से वह एक पुखराज खरीदना चाहता है।

भानुमित्र का सेवक कमर में खड्ग लटकाये साथ था। जब भानुमित्र बातें कर रहा था, तो वह कुछ दूर, अपने स्वामी के अंगरक्षक के रूप में, खड़ा रहा।

भद्रसेन ने भानुमित्र का नाम पूछा। उसने झूठा नाम कमलापति बता दिया। भद्रसेन ने एक-दो टुकड़े पुखराज के निकाल कर दिखाये। भानुमित्र को पसन्द नहीं आये। इस पर भद्रसेन ने कहा, "आपको अयोध्या में और बढ़िया रत्न नहीं मिलेंगे।"

"क्यों? मैंने तो सुना था कि यह भारी धनाढ्य नगर है।"

"हाँ था। परन्तु जब महाराज तीर्थ-यात्रा को गए तो महामात्य ने मन-मानी की, जिसका परिणाम यह हुआ है कि यहाँ का व्यापार समाप्त हो गया है। बाहर से आने वाली वस्तुओं पर भी कर लगा दिया गया है और यहाँ से बाहर जाने वाली वस्तुओं पर भी कर लगाया गया है। हमने तो यहाँ से दुकान उठा लेने का निश्चय कर लिया है।"

भानुमित्र इतना समाचार पा उठ खड़ा हुआ और बोला, "मुझे शोक है कि आपको व्यर्थ कष्ट दिया है। आशा है आप क्षमा करेंगे।"

वह दुकान से बाहर निकलता-निकलता रुक गया। पुनः लौट आया और कहने लगा, "यदि मैं आपसे एक बात पूछूँ तो आप बताएँगे?"

"हाँ! हाँ! पूछिये।"

भानुमित्र पुनः बैठ गया और पूछने लगा, "यहाँ की कौन सी विशेष वस्तु है जो मैं एक स्मृति के रूप में ले जा सकता हूँ?"

भद्रसेन हँस पड़ा। कहने लगा, "आजकल यहाँ गणिकाएँ हैं जो बिकाऊ हैं। साकेत की इस पवित्र भूमि में यह अनर्थ भी सम्भव हो गया है।"

भानुमित्र ने अपने को ऐसा विस्मित हुआ प्रकट किया कि सत्य ही वह अयोध्या को पवित्र-भूमि समझता था और इस दुराचार पर उसे विश्वास नहीं हो रहा। अन्त में उसने मुख खोला और पूछा, "तो क्या ये सब गणिकाएँ महारानी जी गांधार से लाई हैं?"

भद्रसेन ने सिर हिलाकर कहा, "न ! न !! वे तो बेचारी सती-साध्वी हैं। यह हमारे महामात्य के सुपुत्र प्रद्युम्नकुमार की करनी है। वैशाली, मगधदेश और वंग प्रदेश की गाने और नाचने वालियों को निमन्त्रण दे-देकर बुलाया है और यहाँ के युवकों को उनके नृत्य और संगीत दिखाने के लिए एकत्र किया जाता है और महाराज और महारानी के विरुद्ध विष-वमन किया जाता है।"

"परन्तु क्यों ?"

"महाराज के एक कुल-पुरोहित हैं। उनकी एक कन्या है। प्रद्युम्नकुमार की कहीं उस पर नजर पड़ गई और उससे विवाह करने की इच्छा कर बैठा। लड़की ने स्वीकार नहीं किया। यह बलपूर्वक विवाह की इच्छा करने लगा। पुरोहित की लड़की महारानी से रक्षा की प्रार्थना करने गई तो उन्होंने आज्ञा दे वहाँ दो दर्जन सुभट्ट बैठा दिए। इससे वह महारानी को बदनाम कर रहा है।"

भानुमित्र बिना उत्तर दिए, लम्बा मुख किये वहाँ से निकल और दुकानों में माल देखने के बहाने से घूमने लगा। अंग देश का रेशमी माल एक दुकान में भरा पड़ा था। भानुमित्र ने एक धोती का दाम पूछा। दुकानदार ने दो स्वर्ण-मुद्रा बताई। भानुमित्र ने मुख लम्बा कर कहा, "क्यों जी ! परदेसी जान ठगना चाहते हो ?"

दुकानदार ने तुरन्त उत्तर दिया, "नहीं भगवन् ! यहाँ हमें एक धोती पर आधी स्वर्ण-मुद्रा तो कर देना पड़ा है।"

"इतना क्यों ?"

"राजा का कम से पेट नहीं भरता।"

"क्या राज्य में सेना अधिक कर दी गई है ?"

दुकानदार हंस पड़ा और बोला, "हां ब्राह्मण देवता ! परन्तु यह सेना योधाओं की नहीं है। यह तो नाचने-गाने वाली गणिकाओं की है।"

"इस से क्या होगा ?"

"अवध के युवकों को चार्वाक मिश्र की शिक्षा का क्रियात्मक पाठ

पढ़ाया जा रहा है।"

"तो अवध के महाराज, भगवान राम के वंशज नास्तिक हो गये हैं ?"

"क्या जाने महाराज ! समझ में नहीं आता। कुछ लोग कहते हैं कि महामात्य की नीति से ऐसा हो रहा है। कुछ का यह कहना है कि महाराज ही भारी व्यसनी हैं। हम लोग क्या जानें। हमें तो यह मालूम है कि हमारा व्यापार नष्ट हो गया है।"

भानुमित्र बिना इस पर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी किये दुकान से बाहर आ गया। पश्चात् स्थान-स्थान पर उसने लोगों से पूछा और परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करता रहा। एक दिन उसने अपने सेवक को बाजार से देहातियों के से वस्त्र मोल लाने को भेज दिया और स्वयं आगे की योजना पर विचार करने लगा।

: ४ :

रिपुदमन ने प्रद्युम्न को अपने पास एकान्त में बुलाया और पूछा, "क्यों जी राजकुमार ! वैशाली से कुछ सूचना मिली ?"

"हां पिता जी ! सूचना मिली है कि वहां भारी गड़बड़ हो चली थी। एक भानुमित्र नामक काश्मीर का रहने वाला उनके कार्य में कूद पड़ा था। उसने चतुराई से यह जान लिया कि किस-किस को, कितना रुपया और कब मिलेगा। कहीं भूधर लक्ष्मी देवी पंथागार का प्रबन्धक वहां आ गया। वह अपना व्यक्ति है। आजकल बौद्ध उपासक बन गया है। उसने भानुमित्र को पहिचान लिया और हमारे एक सुभट्ट को बता दिया कि वह देवधर्मा का सम्बन्धी है। हमारे सुभट्ट अपनी खड्ग ले उस पर टूट पड़े। एक क्षण का अन्तर रह गया और वह ऊपर की छत से नीचे कूद गया और भाग खड़ा हुआ। सुभट्टों ने उसका पीछा किया और जब वह अपने मकान में सो रहा था, मकान को आग लगा दी। वह उसमें जलकर राख हो गया है। देवधर्मा को

जब उसके जला दिये जाने की सूचना मिली तो बहुत रोया और नगर पालक को बुला कर आज्ञा दी है कि आग लगाने वालों का पता करे। परन्तु प्रतिहारों के नायक को हम पहले ही अपने सोने का रंग दिखा चुके हैं।"

रिपुदमन इस से चिन्ता अनुभव करने लगा। उसने कहा, "प्रद्युम्न! देवधर्मा सहज में रोने वाला व्यक्ति नहीं है। कहीं उसका रोना एक बहाना-मात्र ही न हो?"

"पिता जी! यह मालूम हुआ है कि भानुमित्र देवधर्मा की स्त्री सुनीता का चचेरा भाई था। यदि देवधर्मा झूटमूट रोया है तो अपनी स्त्री को दिखाने के लिये रोया होगा। सुना है वह अपने पति पर भारी दबाव रखती है।"

"अच्छा तो अब यहां क्या हो रहा है?"

"युवकों की एक सेना तैयार हो जावेगी। फिर जब आप आज्ञा देंगे उसी दिन राजमहल पर आक्रमण कर राजा और रानी को कैद कर आपके चरणों में ला खड़ा करेंगे।"

"कितने युवक जमा हो गये हैं?"

"पांच सहस्र तो एक चुटकी भर में एकत्रित कर सकता हूं और यदि इनको सेठियों को लूटने की स्वीकृति दे दें तो यही पांच सहस्र पचास सहस्र हो जावेंगे।"

"अभी ठहरो बेटा! वैशाली से शुभ समाचार आ जाने दो। तुम तो जानते ही हो कि राजमाता लिच्छवी वंश की लड़की है और यदि उसने अपने परिवार वालों से सहायता मांगी तो हमारी तो हड्डी-बोटी भी नहीं बचेगी। लिच्छवी लोग ही वैशाली में राज्य करते हैं। उनके एक लाख भट्ट सदैव शस्त्र लिये लड़ने-मरने को तैयार बैठे रहते हैं। और इस पर देवधर्मा ने मगध, मल्ल गणराज्य और अंगबंग देशों से सन्धियाँ की हुई हैं कि इनमें से कोई भी युद्ध में जावेगा तो इन सन्धियों में हस्ताक्षर करने वाले सब देश एक दूसरे की सहायता करेंगे।

इन सब का विरोध करने की हम में शक्ति नहीं है। इतनी सौभाग्य की बात है कि अवध नरेश की इनसे किसी से भी परस्पर सहायता देने की संधि नहीं। इस पर भी वैशाली की सहायता में सब इस मामले में कूद पड़ेंगे।"

प्रद्युम्न इस पेंच की बात को नहीं जानता था। आज उसे पता लगा कि राज्य पलटना कितनी कठिन बात है। वह तो अवध की राजगद्दी पर बैठने का स्वप्न देख रहा था। आज इन सब बातों को सुन वह निराश हो गया। उसने अपने मन की एक आकांक्षा अपने पिता से कही, "पिता जी! यह राका की बातें अब मैं अधिक सहन नहीं कर सकता। मैं आपको बता देता हूँ कि एक दिन आप सुनेंगे कि राका अयोध्या में कहीं नहीं मिल रही।"

"देखो बेटा! धैर्य करो। सहज पके सो मीठा होय।"

प्रद्युम्न ने यह सुना तो, परन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया और चुपचाप घर से निकल, चौमुखे पर एक गृह में घुस गया। यह 'पारख' गणिका का गृह था।

जब प्रद्युम्न इस गणिका के भेंट करने के आगार में पहुँचा तो उसने बहुत से युवकों को हंसते और किसी को तंग करते देखा। एक देहाती ढंग के कपड़े पहने युवक, सुरा पीकर अर्धचेतनावस्था में बैठा, गणिका को अपने समीप बैठने के लिये कह रहा था। एक युवा उसके समीप बैठा हुआ उसके गले में बांह डालकर कह रहा था, "देखो भाई! मैं पारख ही तो हूं। बताओ, तुम्हारे पास कुछ दाम भी हैं या ऐसे ही पारख की संगत का फल उठाने चले आये हो?"

"हां··· हां···· क्यों नहीं? दाम दूंगा···· क्या पहिले लोगे··· बताओ क्या लोगे···· एक रजत····दो···अच्छा···अच्छा यह लो···।" उसने अपनी धोती की आंटी में चार रजत मुद्राएँ छिपा रखी थीं। वे मुद्राएँ उसने दाहिने हाथ पर रखकर बाएं हाथ से उठाकर गिननी आरम्भ कर दीं, "एक···यह लो···।"

समीप बैठे युवक ने कहा, "लाओ" और अपना हाथ बढ़ा दिया। देहाती ने रजत उसके हाथ पर रखकर कहा, "बस'''और'''अच्छा यह लो '''दो '''यह और लो ''' तीन ''' यह और लो ''' चार '''बस ? बस और मेरे पास नहीं हैं''''''।"

इतना कह उस देहाती ने समीप बैठे युवक को स्त्री समझ उसका मुख चूमने का यत्न किया। उसने उसे धक्का दे दूर कर दिया। देहाती लुढ़क कर औंधे मुख भूमि पर लेट गया और वहीं पड़ा रहा। सब युवक उस देहाती की दुर्दशा देख हंसने लगे। इस समय प्रद्युम्न ने कहा, "छोड़ो जी! इस ग़रीब को पड़ा रहने दो। प्रातः ठीक होने पर स्वयं चला जावेगा। आज मैं एक भारी काम आप लोगों के करने के लिये लायक लाया हूं।"

सब चुपचाप सुनने लगे। प्रद्युम्न ने कहा, "पुरोहित की लड़की आज उड़ाकर काशी पहुंचा दी जाएगी। मध्य रात्रि के समय हम दो सौ युवक अपने शस्त्रों सहित पुरोहित का गृह घेर लेंगे। सुभट्टों को मृत्यु के घाट उतार राका को ले, वहां खड़े रथ पर बैठा, पारख के साथ बनारस भेजना है। बताओ पारख! तैयार हो?"

"बिलकुल। परन्तु क्या मिलेगा इसके लिये?"

"पांच सौ स्वर्णमुद्रा काशी पहुँचाने पर।"

"स्वीकार है।"

इस पर एक युवक बोला, "तो समय होने तक नाच, गाना और माधवी का प्रबन्ध होना चाहिए।"

"हां हां, अवश्य होगा। जमाओ रंग, पारख! मैं शेष प्रबन्ध करके लौटता हूँ।"

इतना कह प्रद्युम्न गृह से नीचे उतर गया।

पारख ने दासी को गृह के नीचे की मधुशाला में भेज एक घड़ा माधवी का मंगवा लिया। साथ ही तबला और वीणा बजाने वाले बुलाये।

युवक आज, राज्य के सुभट्टों से पहली मुठभेड़ की सम्भावना से अति उत्साहित और उल्लासित हो उठे थे। फिर माधवी पीने से उत्तेजित हो

परस्पर वाद-विवाद करने लगे। एक ने कहा, "हम आज ही राजमहल पर आक्रमण करेंगे।" दूसरे ने मुख पर उँगली रख उसे चुप रहने का संकेत किया। पहले ने पूछा, "क्या है?"

दूसरे ने उंगली से औंधे मुख पड़े देहाती की ओर संकेत कर दिया। पहले ने पांव से धक्का दे देखा कि वह सचेत है अथवा अचेत। देहाती पांव की ठोकर से ऐसे लुढ़क गया, मानो मृत शव है। इस प्रकार निश्चिन्त हो पहले ने एक घूंट माधवी पी कहा, "मुझे अपने ग्राम से आये आज दो मास से ऊपर हो गये हैं। यहां पारख के घर में पड़े-पड़े मेरे अंगों को जंगाल लग रहा है। इससे मैं कहता हूँ कि आज ही सब काम समाप्त हो जाना चाहिये।"

इस पर एक तीसरा बोल उठा, "भाई! सत्य बात तो यह है कि प्रद्युम्न जी को मिली राका और उसके पिता को मिला राज्य। परन्तु मुझे क्या मिला, आपको क्या मिला और हम सबको क्या मिला? जवानी इसी प्रकार प्रतीक्षा में व्यतीत हो जाये, यह मुझे पसन्द नहीं।"

इस पर एक और उठकर बोला, "इस प्रकार स्वार्थ की बातें करते तुम्हें लज्जा नहीं लगती? इस समय देश में विप्लव हो रहा है। ब्राह्मणों ने यज्ञ, धर्म, दान-दक्षिणा, स्वर्ग-पुण्य, वेद-शास्त्र, परमात्मा-आत्मा इत्यादि के शाब्दिक जाल बना जनता को दास बना रखा है। हमें सर्वसाधारण को इनके वाग्जाल से मुक्त करना है। इसके लिये ब्राह्मणों के प्रबल सहायक राजा-महाराजाओं को जड़ से उखाड़ कर फेंक देना है। इतने महान् कार्य के लिये दो महीने घर से आये हो गये तो कौन बड़ी बात हो गई?

"तथागत भगवान का स्मरण करो। देखो! उन्होंने पूर्ण जीवन भर लोक-सेवा में लगा कितना यश प्राप्त किया है। प्रजातंत्र होने से बौद्ध मत का प्रचार होगा। इसके प्रचार से ब्राह्मणों के पाखण्ड का भंडा फूटेगा और फिर सर्वसाधारण की शृंखलाएं टूटेंगी और संसार में वास्तविक स्वतंत्रता विराजमान होगी।"

जब यह कथन समाप्त हुआ तो सब ने, 'धन्य हो! धन्य हो!' के शुभ

शब्द कहे और माधवी के घूंट भर-भर पीने लगे।

इस समय तबला और वीणा स्वर हो गई और पारख स्वर भरने लगी। एक संगीत के प्रेमी ने ऊंचे स्वर से कहा, "बंद करो इस राजनीतिक बकवास को। अब तनिक स्वर्ग का आनन्द ले लेने दो।"

पारख केरल देश की रहने वाली थी। स्वर बहुत मीठा था और संगीत कला में वह बहुत निपुण थी। स्वरालाप के पश्चात् उसने गाना आरम्भ किया। उसने लोकगीत गाया, "गगरी भरन कैसे जाऊँ। पनघट पे खड़े सखी सैयां हमारे।"

संगीत में सब युवक लीन थे, जब देहाती ने सरकना आरम्भ किया। एक-आध की दृष्टि उधर गई परन्तु दूसरी ओर संगीत तारतम लय में चल रहा था।

"मेरी कोमल बैंया, पकड़ मरोड़ी, अंगिया फाड़ डारी मोसों करत बड़जोरी। कैसे जाऊं......।"

देहाती की ओर किसी का ध्यान नहीं था। वह लड़खड़ाते कदमों से उठा और घूमता हुआ सिर पर गगरी सम्हालने का अभिनय करने लगा। फिर धीरे-धीरे दो पग आगे, एक पग पीछे रखता हुआ आगार के द्वार की ओर जाने लगा। किसी ने कहा, "कहां जाते हो रसिक ?"

उसने ठहर कर ध्यान से पूछने वाले की ओर देखा। फिर सोचने का भाव बनाया। फिर कहा, "कहां जा रहा हूँ ? ओ—हो—लघु... शंका... हां ...हां ठीक है न ? बहुत बढ़िया गाती हो...गगरी भरन..." वह द्वार के पास गिर पड़ा। सब का ध्यान भंग हुआ। परन्तु पूर्व इसके कि कोई उसे उठाए वह स्वयं उठा और लुढ़कता हुआ सीढ़ियां उतर चौमुखे में जा खड़ा हुआ। पश्चात् उसी प्रकार झूमता हुआ एक ओर को चल पड़ा। कुछ दूर जाकर वह वेग से चलने लगा और फिर एक स्थान पर पहुंच खड़ा हो गया।

यह देहाती के भेष में भानुमित्र ही था। यहाँ उसका सेवक खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। सेवक मार्ग के एक ओर मकानों के साये में

अँधेरे में खड़ा था। भानुमित्र को आया देख अँधेरे से निकल उसके सामने आ खड़ा हुआ। भानुमित्र ने उसे कहा, "आओ किसी मधुशाला में चलें।"

वहाँ से थोड़ी दूर एक नीची छत की दुकान में कोई दस-बारह लोग बैठे शराब पी रहे थे। भानुमित्र अपने सेवक सहित वहाँ पहुँच दुकानदार के समीप हो बोला, "मैं एकान्त में बैठ दो-चार घूँट पीना चाहता हूँ। है कोई स्थान ?"

"हाँ, आइये ! वह उसे सब के बीच में से निकाल कर दुकान के पिछले भाग में ले गया। वहाँ दरी, श्वेत चादर और फूलदान रखे थे। दीवार पर नग्न स्त्रियों के चित्र बने थे। वहाँ पर भानुमित्र को बिठा दुकानदार ने पूछा, "क्या कोई प्रेयसी भी चाहिए ?"

भानुमित्र ने मुस्कराकर कहा, "प्रेमिका को पत्र लिखना चाहता हूँ। मसिपात्र, लेखनी और पत्र ला दीजिये। एक पात्र-भर सुरा भी ले आइये।"

जब दुकानदार इन वस्तुओं को लेने चला गया तो भानुमित्र ने सेवक को कहा, "मैं तुम्हें एक पत्र दे रहा हूँ। सीधे राजमहल के द्वार पर चले जाना। वहाँ कहना कि महारानी जी के नाम का पत्र है। यदि कोई पूछे, किसने दिया है तो कहना भानुमित्र ने। फिर यह भी कहना कि अत्यावश्यक है। अभी मिलना चाहिये।"

दुकानदार एक मट्टी के कुल्हड़ में सुरा भर लाया। साथ ही एक पत्र, मसिपात्र और लेखनी ले आया। भानुमित्र ने एक स्वर्ण-मुद्रा दुकानदार की ओर फेंकते हुए कहा, "दाम ले लो और शेष ले आओ।"

दुकानदार स्वर्ण-मुद्रा हाथ में अँगूठे से मलकर देखते हुए कि सोना खरा है या नहीं, बाहर चला गया। भानुमित्र ने लिखा :

श्रीमती अवधमहिषी,

मुझे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि आज रात को पुरोहित की लड़की राका को चुराने के लिए छापा डाला जावेगा। पाँच सौ से ऊपर सशस्त्र युवक इसकी तैयारी कर रहे हैं। मुझे यह भी बताया गया है कि महारानी उस लड़की की रक्षा में रुचि रखती हैं। इस कारण

यह सूचना भेज रहा हूँ।

"मेरी सम्मति यह है कि लड़की को वहाँ से निकाल राजमहल में लाया जावे। अभी इन उपद्रवकारी लोगों से झगड़ा नहीं करना चाहिए।

"आवश्यकता हुई तो फिर लिखूँगा।"

भानुमित्र।

चिट्ठी लिख एक कागज में लपेट उस पर मोहर कर दी। चिट्ठी सेवक के हाथ में देकर कहा, "चिट्ठी देकर सीधे पंथागार में चले आना। मैं वहाँ प्रतीक्षा करूँगा।"

सेवक चला गया। भानुमित्र ने सुरा का कुल्हड़ उठाया और आगार की खिड़की में से सुरा को बाहर फेंक कुल्हड़ खाली कर सामने रख बैठ गया। दुकानदार स्वर्ण-मुद्रा की शेष लाया और कुल्हड़ को खाली देख बोला, "और भर लाऊँ?"

"पहले देखें तुमने कितना दाम लिया है?"

"एक रजतमुद्रा आगार का भाड़ा, चौथाई रजतमुद्रा सुरा का दाम, चौथाई रजतमुद्रा मसि-पत्रादि का दाम और शेष साढ़े अट्ठारह रजतमुद्रा यह हैं।" भानुमित्र ने अट्ठारह रजतमुद्रा उठा कर कहा, "यह शेष अर्ध रजतमुद्रा तुम्हें उपहार। जाओ, मैं अभी अर्ध घड़ी-भर प्रतीक्षा कर अपनी प्रेमिका के पास जाऊँगा।"

दुकानदार ने मुस्करा कर अर्ध रजत उठाई और हाथ जोड़ धन्यवाद कह बाहर चला गया।

: ५ :

भानुमित्र का सेवक राजद्वार पर गया तो बीसियों सुभट्टों को खड्ग धारे खड़े देख अति प्रभावित हुआ। वह एक सुभट्ट के सम्मुख जाकर बोला, "भन्ते! महारानी के नाम की चिट्ठी है। किस को दूँ?"

सुभट्ट ने कहने वाले को सिर से पाँव तक देखा और फिर पूछा, "कहाँ से आये हो?"

"राज्य पंथागार से।"

"तो आओ।" वह भट्ट उसे साथ ले फाटक के भीतर चला गया। वहाँ एक ओर कुछ प्रतिहारी खड़े थे। भट्ट ने एक से कहा, "यह महारानी के नाम का पत्र लाया है।"

एक प्रतिहार ने कहा, "दिखाओ।"

पत्र मुहरबन्द था। उसे हाथ में ले वह प्रतिहार उस सेवक को ले महल के भीतर चला गया। वहाँ एक आगार में चमुचूड़ के सम्मुख सेवक को उपस्थित कर दिया। चमुचूड़ ने पत्र लाने वाले को सिर से पाँव तक देखकर पूछा, "कहाँ से आये हो?"

"पंथागार से।"

"यह चिट्ठी भेजने वाला कहाँ से आया है?"

"मैं नहीं जानता।" सेवक समझ नहीं सका कि बतावे अथवा न।

"अच्छा ठहरो। शायद कोई उत्तर देना हो।"

विवश सेवक को ठहरना पड़ा। चमुचूड़ वहाँ से निकल महल के भीतरी भाग में जा पहुँचा। वहाँ एक दासी को पत्र देकर बोला, "कहना चमुचूड़ बाहर प्रतीक्षा कर रहा है और पत्र लाने वाले को रोका है। यदि कुछ आज्ञा हो तो कहें।"

शीघ्र ही दासी आई और बोली, "महारानी जी बुलाती हैं।" चमुचूड़ दासी के पीछे-पीछे महारानी और महाराज के सम्मुख जा खड़ा हुआ। महाराज ने पूछा, "यह पत्र कौन लाया है?"

"एक देहाती प्रतीत होता है। कहता है उसके स्वामी पंथागार में ठहरे हैं।"

"उसके साथ रथ लेकर स्वयं जाओ और पत्र लिखने वाले को ले आओ। देखो! पिछले द्वार से आना और उस व्यक्ति को छिपा कर लाना है। और यह देखो।" महाराज ने पत्र चमुचूड़ को दिखाया। चमुचूड़ ने पत्र पढ़ा और चकित रह गया।

महाराज ने कहा, "अभी हम एक रथ में दो दासियों को कुछ सुभट्टों

के साथ भेज रहे हैं और राका को यहाँ बुला रहे हैं। तुम महल पर प्रहरी दुगने कर दो।"

चमुचूड़ झुककर नमस्कार कर बाहर चला आया। वह विस्मय कर रहा था कि यह भानुमित्र कौन है जो अयोध्या की गुप्त बातों की सूचना रखता है। भानुमित्र के सेवक को ले रथ पर सवार हो पंथागार में जा पहुँचा। वहाँ उसी विद्यार्थी को देख, जिसको उसने तक्षशिला में कहा था, 'अयोध्या में होते तो जिह्वा निकलवा देता' चकित रह गया। भानुमित्र को प्रकाश में देख बोला, "तुम ? विचित्र है। तुम यहाँ के रहने वाले नहीं, तो भी तुम हम से अधिक जानने का दावा करते हो ?

"अच्छी बात ! चलिये महाराज बुलाते हैं।"

"आप मुझे कैद कर ले जा रहे हैं ?"

"नहीं ! महाराज ने कहा है कि आपको आदर से रथ पर बैठाकर ले आऊँ।"

"मेरी जाने की इच्छा नहीं है। मैं पत्र भी न लिखता यदि एक ब्राह्मण कन्या पर बलात्कार किये जाने की बात न होती।"

"देखो भद्र ! एक बार तुमने तक्षशिला में महारानी का तिरस्कार किया था। इस पर भी वे स्वयं चल कर तुम्हारे पास आई थीं। आज पुनः उन्होंने मुझे भेजा है कि आप को ले आऊँ। क्या तुम चाहते हो कि आज भी वे स्वयं तुम तक चल कर आवें ? इसमें महाराज की प्रतिष्ठा कम होगी और उनके शत्रुओं का पक्ष बल पकड़ेगा।

"फिर यह तो साधारण शिष्टाचार है कि यदि कोई स्त्री किसी प्रकार की याचना करे तो पुरुष होने के नाते हम उसे स्वीकार करें।"

भानुमित्र इच्छा न रहते भी उठा और साथ चल पड़ा। मार्ग में चमुचूड़ कुछ भी पूछने से डरता रहा। वह समझ गया कि यह कोई झिझकी स्वभाव का व्यक्ति है, कहीं व्यर्थ में ही रुष्ट न हो जावे।

महल के पिछले द्वार से भीतर जाने के लिये भानुमित्र को कुछ पैदल चलना पड़ा। सरयू के तीर पहुँच वहाँ से एक पगडण्डी पकड़ महल की

पिछली दीवार के साथ-साथ चलते हुए एक छोटी-सी खिड़की के समीप पहुँच, चमुचूड़ ने हाथ से संकेत किया। खिड़की खुली तो दोनों भीतर घुस गए। वे सीधे महल के एक आगार में थे। फिर सीढ़ियों से चढ़ वह महाराज और महारानी के सम्मुख जा पहुँचे।

भानुमित्र को देखते ही महारानी ने कहा, "मित्र! तुमने बहुत कृपा की है जो इस समय यहाँ आये हो। आचार्य जयदेव जी का पत्र मिला है तुम्हें?"

भानुमित्र इस प्रश्न का अर्थ नहीं समझ सका। इससे केवल मात्र हाथ जोड़ नमस्कार कर खड़ा रहा। महाराज ने कहा, "प्रिय मित्र! बैठो।"

उसे अपने समीप बैठने को स्थान देकर कहा, "हम पिछले छः मास से आचार्य जयदेव से लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। उनको हमने लिखा था कि जहाँ कहीं भी आप हों, यहाँ भेज दिये जावें। तो सत्य ही हम तुम्हारे कृतज्ञ हैं कि तुम आ गये हो।"

भानुमित्र को अब समझ में आया कि महारानी के कहने का क्या अर्थ है। उसने कहा, "महाराज! आचार्य जी का मुझे कोई पत्र नहीं मिला। मैं तो किसी निजी कार्य से अयोध्या आया था और एक स्थान पर मुझे वह सूचना मिली थी, जो मैंने पत्र में निवेदन कर दी थी।"

"उस सूचना के अनुसार कार्यवाही हो रही है। अभी-अभी राका यहाँ आ जावेगी। परन्तु हम तो चाहते हैं कि तुम हमारे यहाँ कार्य करो। हमारी अनुपस्थिति में यहाँ कुछ लोगों ने अनर्थ कर दिया है। हम इसको सुधारने में तुम्हारी सहायता की इच्छा रखते हैं।"

"हाँ, हाँ, मित्र! तुम न नहीं कर सकते। इसमें तो तुम्हें मेरी सहायता करनी ही होगी!" महारानी बोलीं।

भानुमित्र के मन में एक बात सूझी। यह विचार कर उसने कहा, "मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं किसी दूसरे के कार्य से यहाँ आया हूँ। इस पर भी यदि आप बतावें कि आपकी क्या कठिनाई है और मैं उसमें क्या सहायता

कर सकता हूँ तो मैं अपने स्वामी से पूछूँगा और यदि उन्होंने कुछ दिन के लिए स्वतन्त्र कर दिया तो आपका कार्य कर दूँगा।"

"कौन है वह जिसके काम से तुम यहाँ आये हो?"

"यह बताने की आज्ञा नहीं है।"

इससे महारानी और महाराज तथा ऋमुचूड़ तीनों विस्मय में भानुमित्र का मुख देखते रह गए। अन्त में महारानी ने पूछा, "तुम हमारे शत्रु-पक्ष से सम्बन्ध रखते हो क्या?"

भानुमित्र मुस्कराया और बोला, "यदि मैं कहूँ नहीं तो मेरा विश्वास करेंगी आप?"

"मैंने तो तुम पर कभी अविश्वास नहीं किया, मित्र!"

"मन में विचार करो देवी! आपको विश्वास नहीं था कि मैं कभी धन-सम्पदा का अधिकारी बन सकूँगा। छोड़ो इस बात को। देवी! मैं सत्य कहता हूँ कि मेरा स्वामी अवध का शत्रु नहीं है। शायद वह आप के शत्रु का शत्रु है। इससे अधिक बताने का मैं अधिकार नहीं रखता।"

"कुछ हानि नहीं।" महाराज ने कहा, "हम एक ब्राह्मणकुमार से बातें कर रहे हैं। भरतखण्ड में ब्राह्मण अभी भी अपमानजनक व्यवहार नहीं करते। देखो भाई! मेरे पिता, बड़े महाराज, का देहान्त हुआ तो अवध सब प्रकार से शक्तिमान और समृद्ध था। राज्य के कोप में अपार धन था। महाराज की मृत्यु से मुझे भारी शोक हुआ और कुछ काल-पर्यन्त यहाँ रह मैं राज्य की बागडोर एक मन्त्री-मण्डल के हाथ देकर तीर्थ-यात्रा को चला गया। दो वर्ष के तीर्थाटन के पश्चात् मैं यहाँ आ देखता हूँ कि यहाँ का व्यापार नष्ट हो गया है। दो वर्ष से वर्षा न होने से देहातों में अकाल पड़ रहा है। कोष में धन समाप्त हो गया है। हमारे अर्थ-मन्त्री ने हिसाब बनाकर दिखा दिया है और उसकी गणना में दोष नहीं प्रतीत होता। कोष में धन न होने से और वृष्टि न होने से, सेना को छः मास से वेतन नहीं मिल रहा। करों की प्राप्ति नहीं हो रही और जब कठोरता से कर लेने का प्रबन्ध होता है तो लोग नगर छोड़-छोड़ जाने लगे हैं।

इसके अतिरिक्त देहातों से लोग भूखे-नंगे धड़ाधड़ नगर में आ रहे हैं। कुछ युवकों ने विद्रोह करने की ठान ली है। मेरी और महारानी की निन्दा करते हैं।

"मैं बल से कुछ कर सकता, यदि सेना को वेतन मिला होता और वह मेरी आज्ञा में होती। बताओ इसमें तुम हमारी सहायता कर सकते हो ? हमें किसी चतुर महामात्य की आवश्यकता है।"

भानुमित्र यह कथा सुन बहुत देर तक चुप बैठा सोचता रहा। महारानी याचना के भाव से उसकी ओर देखती रही। भानुमित्र मन-ही-मन योजना बना रहा था और विचार कर रहा था कि यदि देवधर्मा इनकी सहायता करने पर उद्यत हो जावे तो विप्लव होता-होता बच जावेगा। अपने मन में योजना बना उसने कहा, "महाराज ! मैं समझता हूँ कि अवस्था इतनी कठिन नहीं, जितनी आप समझते हैं। इस पर भी आप मुझे एक सप्ताह का समय दीजिए, जिससे मैं अपने स्वामी से राय कर लूँ। यदि उन्होंने मेरी बात मान ली तो दो मास में अवध में पुनः रामराज्य स्थापित हो जावेगा। इस समय मैं समझता हूँ कि अब मेरा पंथागार में रहना ठीक नहीं। मुझे आप किसी ऐसे स्थान पर रखिये, जहाँ से मेरा सेवक बिना किसी के देखे आ-जा सके।"

महाराज ने पूछा, "राजमहल में रहना चाहोगे, मित्र ?"

"मुझे इसमें आपत्ति नहीं है। जो बात आवश्यक है वह किसी को भी मेरे यहाँ होने का सन्देह तक भी न होना है।"

"यह हो सकता है। चमुचूड़ ! इनको पीछे की खिड़की के साथ वाला आगार दे दो। दो दास इनकी सेवा में रख दो और इनके सेवक को पंथागार से यहाँ ले आओ।"

इस समय राका को लाकर उपस्थित किया गया। राका के पिता पुरोहित पं० मैलन्द भी साथ थे। भानुमित्र ने देखा कि वास्तव में यह लड़की राज्य के मोल खरीदने योग्य है। महारानी ने राका को समीप बैठाकर कहा, "राका ! आज तुम बाल-बाल बच गई हो। इसमें यह

युवक तुम्हारे रक्षक सिद्ध हुए हैं। तुमको और पण्डित जी को रहने के लिए हम महल में एक आगार दे रहे हैं।"

इतना कह महारानी ने एक दासी को बुलाकर इनको ठहरने के लिए स्थान बता विदा कर दिया।

: ६ :

भानुमित्र ने देवधर्मा को पत्र लिखा। उसमें उसने अवध की अवस्था लिखी और बताया कि रिपुदमन ने अवध का राज्य हस्तगत करने का षड्यन्त्र किया है। वैशाली से वह सहायता की आशा नहीं करता, न ही उसने यहाँ गणराज्य स्थापित करना है। वैशाली की तो वह केवल विप्लव खड़ा करने में स्वीकृति माँगता है और इसी कारण वह आपकी संसद में यह प्रस्ताव करवाना चाहता है कि अवध में रिपुदमन को स्वतन्त्रता से विप्लव करने दिया जाए।

"राज्य में विप्लव करने के लिए उसने झूठझूठ की बातों में राज्य का कोष खाली कर दिया। वस्तुओं पर कर इतने लगाए हैं कि व्यापार बन्द हो गया है। वर्षा कुछ खराब होने से गाँवों में लोग लगान नहीं दे सकते और उसे वह बलपूर्वक वसूल कर रहा है, जिससे राजा की बदनामी होती है। सेना को छः मास से वेतन नहीं दिया। ऐसी अवस्था में विप्लव होने ही वाला है और यहाँ के महाराज, महारानी और उनसे सहानुभूति रखने वाले और अनेकों शान्तिप्रिय प्रजागर इसमें मारे जावेंगे।

"वैशाली का सीधा तो इस राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु यहाँ अराजकता फैलने पर वैशाली में भी उपद्रव होंगे। वहाँ के व्यापार को भी हानि होगी। एक समय वैशाली में बौद्ध-मत का प्रचार बहुत हो गया था। यहाँ तक कि उस समय के गणपति से लेकर नगरवधू तक भिक्षु हो गये थे। उसका परिणाम वैशाली वालों ने भोग लिया। नगर में भिक्षु रह गये थे अथवा चोर। यदि उस अवसर पर आप गण-पति न बनते और फिर बाईस वर्ष तक इस उपाधि पर न रह सकते तो

वैशाली की अवस्था भी कपिलवस्तु-सी हो जाती।

"कपिलवस्तु आज एक गाँव भी नहीं है। उसके अन्तिम समय में वहाँ भिक्षुक और भिक्षुकाएँ ही रह गई थीं और उनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं रहा था।

"यही अवस्था अवध और अयोध्या की होने वाली है। रिपुदमन वाममार्गी है। वह अनीश्वरवादी है। सांसारिक वैभव को ही सब कुछ मानता है और उसको प्राप्त करने के लिए प्रत्येक प्रकार के साधन प्रयोग में ला रहा है। पाप-पुण्य में भेद नहीं मानता। सफलता को पुण्य और विफलता को पाप समझता है। सत्य, उसके विचार में धन-सम्पदा का नाम है।

"ऐसे व्यक्ति का वैशाली के पड़ोस में राजा हो जाना वैशाली की सुख-शान्ति को मिटा देगा। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि विषबीज का नाश करना सुगम है। विषवृक्ष से विष-वन बनना सुगम है।

"अतएव मेरी योजना यह है कि अवध के महाराज को पाँच लाख स्वर्ण-मुद्रा ऋण में देने का प्रबन्ध कर दिया जाये, जिससे वह सेना को वेतन दे सकें। व्यापार पर से कर हटा कर उसको प्रोत्साहन दे सकें। गाँव के लोगों से भूमिकर बन्द कर दें, जिससे वे अपनी बिगड़ी अवस्था सुधार सकें। इन बातों के साथ और योजनाएँ भी हैं। उदाहरण के रूप में बौद्ध मत और वाममार्गीय मत-विरोधी संस्थाओं का निर्माण करना है। परन्तु ये तब ही हो सकती हैं, जब सेना और व्यापार पर अधिकार बन जाये।

"उत्तर शीघ्र दें। परिस्थिति विस्फोटक की भाँति कभी भी फट सकती है। उससे पूर्व ही प्रबन्ध हो जाय तो ठीक है।"

पत्र गया और तुरन्त उत्तर आया।

: ७ :

प्रद्युम्न ने अपनी योजनानुसार मैलन्द पण्डित के घर छापा मारा परन्तु चिड़िया उड़ चुकी थी। अगले दिन नगर में विख्यात् हो गया कि मैलन्द पण्डित का घर लूट लिया गया है। उसकी लड़की का हरण हो गया है।

इस समाचार को लेकर चमुचूड़ भानुमित्र के पास आया, तो भानुमित्र ने पूछा, "आपने इस समाचार का संशोधन करवाया है या नहीं ?"

"इसकी आवश्यकता नहीं समझी गई।"

"मैं समझता हूँ कि यदि आपने इसका नगर में संशोधन न करवाया तो राज्य-सत्ता का प्रभाव कम हो जावेगा।"

"तो क्या करवाया जावे ?"

"डुग्गी पीटने वाले से नगर-भर में घोषणा करवा दी जावे कि यह किंवदन्ती मिथ्या है। राका और मैलन्द पण्डित राजमहल में सुरक्षित हैं और डाका डालने वालों का पता किया जा रहा है। उनको घोर दण्ड दिया जावेगा।"

ऐसा ही किया गया और भानुमित्र की सम्मति के अनुकूल यह भी घोषणा करवा दी गई कि नगर-संरक्षक डाका डालने वालों का पीछा कर रहे हैं। पूर्ण आशा है कि एक-दो दिन में अपराधी पकड़ लिये जावेंगे।

चमुचूड़ के गुप्तचरों ने समाचार दिया कि इन घोषणाओं से लोगों का साहस बँध गया है।

अगले दिन फिर एक घोषणा की गई कि दो वर्ष से वर्षा न होने से अनाज की उपज कम हो गई है। इससे महाराज भूमि-कर में कमी करने का विचार कर रहे हैं। भूमिपतियों को चाहिये कि जितनी कमी वे चाहते हैं, वे अपने-अपने पटेल के पास लिखवा दें।

यह घोषणा पूर्ण राज्य-भर में और गाँव-गाँव में करवा दी गई। तीसरे दिन फिर एक घोषणा करवाई गई, "व्यापारिक कर में कमी पर विचार किया जा रहा है। व्यापारियों से बातचीत करने के लिए महाराजाधिराज एक उच्च पदाधिकारी नियुक्त करने वाले हैं।"

इन घोषणाओं का प्रभाव यह हुआ कि मन्त्री-मण्डल के अधिवेशन में महामात्य ने कहा, "महाराज ! आजकल राज्य-कार्य महारानी जी चला रही प्रतीत होती हैं। यदि हम लोगों की आवश्यकता नहीं रही तो हमें छुट्टी कर दी जाये।"

उत्तर महारानी ने दिया, "क्या अनियमित बात हो गई है महामात्य ?"

"आजकल घोषणाओं पर घोषणाएँ हो रही हैं। ये हम से पूछकर नहीं की जा रहीं।"

"तो इसमें राज्य की हानि ही क्या हुई है ?"

"जब इन करों में छूट कर दी गई तो राज्य का कार्य कैसे चलेगा ?"

"हमें कम में निर्वाह करना पड़ेगा।"

"मैं तो पहले ही कम वेतन लेता हूँ। इसमें और कमी के लिए स्थान ही नहीं।"

"हमारे निजी व्यय में तो कमी हो सकती है। सो हम कर रहे हैं।" महारानी ने कहा।

"यह तो पीछे देखा जायगा। परन्तु महाराज की ओर से जो भी घोषणा हो, उस पर पहले मन्त्री-मण्डल की स्वीकृति आवश्यक है। बड़े महाराज का जब देहान्त हुआ था तो उनके अन्तिम संस्कार तक का खर्चा मन्त्री-मण्डल की स्वीकृति से हुआ था।"

"सो तो ठीक है, महामात्य! परन्तु यहाँ तो एक पाई भी व्यय नहीं की जा रही। यहाँ तो आशामात्र दिलवाई गई है। उसमें से क्या आशा हम पूर्ण कर सकेंगे यह मन्त्री-मण्डल ही निश्चय करेगा।"

बात यहीं समाप्त हो गई। परन्तु महामात्य क्रोध से उबलता हुआ घर पहुँचा।

रिपुदमन भोजन कर उतावलों की भाँति प्रद्युम्नकुमार की प्रतीक्षा करने लगा। मैलन्द पंडित के घर डाका डालने के अगले दिन ही वह एक तीव्र घोड़ा ले वैशाली की ओर रवाना हो गया था। आज उसके लौट आने की आशा थी।

तीसरे पहर वह सिर से पाँव तक धूरि से लथपथ महामात्य-भवन में पहुँचा। घोड़ा सेवक को दे स्वयं वैसे ही पिता के सम्मुख जा खड़ा हुआ। महामात्य ने प्रश्न-भरी दृष्टि से पुत्र की ओर देखा। उसने मुस्कराकर कहा,

"वैशाली के मन्त्रियों को रुपया दे दिया है। उनको यह वचन भी दे दिया गया है कि उनको अवध देश में गाँव दिये जायँगे। भानुमित्र का मारा जाना निश्चित हो गया है। उसकी खोपड़ी जले मकान में से प्राप्त हुई है। हमारा मन्त्रियों को घूस देना तभी सफल हो सका है। उस गुप्तचर के जीवन-काल में हमारे युद्ध में वैशाली निष्पक्ष न रह सकती थी।"

इतना कह प्रद्युम्नकुमार चुप कर गया। पिता ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "बस या कुछ और भी ?"

"अगले मंगल के दिन संसद् की बैठक हो रही है। उसमें पहला प्रस्ताव अवध के विषय में होगा।"

"और ?"

"मैं बौद्ध-विहार में भी गया था। महाप्रभु कल्याण मिले थे। उन्होंने वचन दिया है कि एक-दो दिन में अयोध्या आ जावेंगे और सब बौद्धों से आपकी सहायता करवाई जावेगी।"

इस पर रिपुदमन ने कहा, "देखो प्रद्युम्न ! यहाँ जल गर्म होता जा रहा है। कुछ दिनों में ही हाथ जलने लगेगा। मेरा कहना यह है कि अब तैयार हो जाओ। मंगल को वैशाली की संसद् में यह बात निश्चय होते ही यहाँ विप्लव उत्पन्न कर देना चाहिए। बाहर नगरों और गाँवों से अपने पक्ष के लोगों को यहाँ आने का आदेश भेज दो। मैं समझता हूँ कि वर्षा आरम्भ होते ही हमारा प्रहार प्रारम्भ हो जाना चाहिए था। वर्षा से नदियों में बाढ़ आ गई है और सेना का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना कठिन हो गया है।

"अर्थ-मन्त्री उदयेश्वर को मैं वैशाली भेज रहा हूँ। उसके मन्त्रियों से बातचीत करने से बात अधिक विश्वसनीय हो जायगी। देवधर्मा को तो यही बताना पड़ेगा कि हम यहाँ गणराज्य स्थापित कर रहे हैं। वास्तव में हमें यहाँ अब रिपुदमन का राज्य स्थापित करना है। तब ही हम उन सब वचनों को पूरा कर सकेंगे, जो हम अब अपने सहायकों को दे रहे हैं।"

इतना कह उसने वैशाली भेजने के लिए अर्थ-मन्त्री उदयेश्वर को बुला-

भेजा। वह आया तो उसे बताया कि वैशाली, मल्ल राज्य और मगध परस्पर संधि से सम्बद्ध हैं। एक की लड़ाई दूसरे की लड़ाई है। और वैशाली राजमाता का जन्म स्थान है। यहाँ पर यदि कुछ भी गड़बड़ हुई तो लोग राजमाता की सहायता करने आवेंगे। इस पर हम अपने चारों ओर के राज्यों से युद्ध में लिपट जायँगे। ऐसी अवस्था में हमें वैशाली के मन्त्रियों में यह बात प्रचारित करनी है कि अवध के महाराज मूर्ख और अनुभवहीन हैं, महारानी दुराचारिणी हैं, प्रजा भूखी है, कोष खाली है, सेना महाराज को नहीं चाहती इत्यादि जिससे यदि यहाँ कुछ गड़बड़ मचे तो उसका दोष महाराज और महारानी के कुप्रबन्ध पर ही माना जावे।

"सो आप वहाँ भ्रमणार्थ जावें। अपने निजी रूप में वहाँ के मन्त्रियों से मिलें और अपने लाभ का ध्यान रख उनका मत-परिवर्तन करने का यत्न करें।"

अर्थ-मन्त्री वैशाली जाने को तैयार हो गया। उसी सायंकाल महाराज के पास अर्थ-मन्त्री का पत्र मिला, जिसमें उसने अपने उदर रोग की चिकित्सा के लिए वैशाली जाने की इच्छा प्रकट की। उसका कहना था कि वह अगले दिन प्रातःकाल ही वैशाली के लिए जाना चाहता है।

इस पत्र के पहुँचते ही चमुचूड़ को बुलाया गया और राय की गई। चमुचूड़ भानुमित्र की सूझ-बूझ की श्रेष्ठता को मान चुका था। इससे उसने भानुमित्र से जाकर राय की। भानुमित्र समझ गया कि वैशाली में कोई नया षड्यन्त्र रचा जा रहा है। वह नहीं चाहता था कि उसकी देवधर्मा को भेजी योजना पर कोई और प्रभाव डाल सके। इससे उसने चमुचूड़ को कहा, "महाराज से इस पत्र का उत्तर लिखा दो कि महाराज को उनके रोग की बात सुन बहुत चिन्ता लग गई है। वे इस संकट के समय उन जैसे योग्य अर्थ-मन्त्री को खो नहीं सकते। इससे वे चाहते हैं कि उदयेश्वर जी शीघ्र चिकित्सा करवाकर लौट आवें। हाँ, राजमाता अपने भाई को सन्देशा भेजना चाहती हैं। इससे महाराज चाहते हैं कि जाने से पूर्व उदयेश्वर जी माता जी से सन्देशा लेते जावें। वे प्रातःकाल मिलकर जावें।

"चमुचूड़ जी ! इसका अभिप्राय यह है कि उदयेश्वर समय पर ही यहाँ से विदा होगा और हमें उसके जाने के समय का ज्ञान रहेगा। मैं चाहता हूँ कि वैशाली की सड़क पर, यहाँ से दो कोस दूरी पर जो जंगल पड़ता है, वहाँ हमारे सैनिक भेज दिये जायँ, जो उदयेश्वर को पकड़ कैद कर लें। उसकी तलाशी लेकर जो कुछ उसके पास निकले, वह हमारे पास यहाँ भेज दें और उदयेश्वर को उसके साथियों सहित अमितपुर के दुर्ग में बंदी बना रखा जावे। यह सब आयोजन ऐसे ढंग से और ऐसे लोगों से करवाया जाय कि इसकी गन्ध तक भी अयोध्या में न पहुँच सके।"

चमुचूड़ ने सब बात महाराज को बता दी। भानुमित्र की योजनानुसार सब कार्य किया गया और अगले दिन सायंकाल तक उदयेश्वर उसके दो सेवकों सहित अमितपुर दुर्ग में बन्दी बना रख दिया गया।

देवधर्मा का पत्र आया जिसमें उसने वैशाली के सेठों से ऋण दिलवाने की योजना उपस्थित की थी। देवधर्मा ने लिखा था कि, "गणराज्य में बिना संसद् की स्वीकृति के इतना बड़ा ऋण किसी को दिया नहीं जा सकता। हाँ, यहाँ के पाँच धनी सेठों को भेज रहा हूँ और यदि महाराज उनको गंगा के किनारे के पचास गाँव गिरवी कर दें, तो वे आपस में मिलकर पाँच लाख स्वर्ण-मुद्रा अवध के महाराज को देने को तैयार हैं। वे सेठी लोग धन सहित एक-दो दिन में अयोध्या पहुँच जावेंगे। वचन-पत्र, जो महाराज की ओर से लिखा जावेगा, उस पर राज्य की मुहर लगी होनी चाहिए और उस पर वैशाली राज्य के प्रतिनिधि के रूप में मेरी साक्षी होनी चाहिए। इस अर्थ, मैं भी एक-दो दिन में वहाँ आऊँगा। इसका अभिप्राय यह होगा कि यदि अवध-राज्य ने उस धन का सूद और धन देने से इन्कार किया तो वैशाली राज्य अपने बल से उन गाँवों को उन सेठों को दिलवा देगा।"

जब भानुमित्र ने यह योजना महाराज और महारानी के सम्मुख रखी तो वे चकित रह गए। उन्हें आशा नहीं थी कि इतना धन उनको इस प्रकार मिल सकेगा। इसके अतिरिक्त उनको भानुमित्र के वैशाली की सेवा

में होने से अचम्भा हुआ। इस समय भानुमित्र ने रिपुदमन के, अवध के विरुद्ध वैशाली में, षड्यन्त्र का समाचार बताया और साथ ही यह बताया कि राज्य की ओर से इस षड्यन्त्र का पता करने के लिए वह अयोध्या में आया हुआ है।

महारानी ने देवधर्मा का पत्र सुन पूछा, "परन्तु तुम्हारे विषय में कुछ नहीं लिखा। हम चाहते हैं कि तुम अब अवध में महामात्य की पदवी पर कार्य करो।"

"पर देवी! मैं किसी का क्रीतदास नहीं, जो मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध किसी को दे दे। मैंने स्वयं अभी अवध की सेवा स्वीकार नहीं की।"

"इस पर भी तुमने बहुत कुछ किया है, मित्र!"

"यह सब वैशाली के भले के लिए किया है। अवध का भला तो अनायास ही हो चला है।"

"यह कैसे?" महाराज ने अचम्भे में पूछा।

"यह गूढ़ नीति की बात मैं बता नहीं सकता।"

महारानी ने कहा, "अच्छी बात! वैशाली के गणपति तो आते ही हैं। हम उनके द्वारा आपसे प्रार्थना करेंगे।"

भानुमित्र चुप रहा। मन-ही-मन वह समझता था कि मल्लिका से प्रार्थना की बात कहलाकर उसने अपने अपमान का, जो उसने उससे विवाह न कर किया था, बदला ले लिया है। इससे वह प्रसन्न था।

इसके दो दिन पश्चात् वैशाली के सेठ ऊँटों पर स्वर्ण-मुद्रा लादे हुए पाँच सौ सुभट्टों की रक्षा में अयोध्या पहुँचे और राज्य के पंथागार में उनका आदर सहित सत्कार किया गया तथा उनको निवास दिया गया। बातचीत और लिखा-पढ़ी में एक दिन से अधिक नहीं लगा। अगले दिन वैशाली के गणपति आये और वचन-पत्र लिखकर हस्ताक्षर हो गये। धन गिनकर राजा के निजी कोष में डलवा दिया गया।

विदा होने के पूर्व गणपति का अवध-राज्य की ओर से महल में सत्कार किया गया। महाराज, महारानी, महामात्य रिपुदमन, नगर-सेठ भद्रसेन,

चमुचूड़ और भानुमित्र इस सत्कार में सम्मिलित थे। महामात्य भानुमित्र को वहाँ देख मन में विचार कर रहा था कि यह कोई देवधर्मा के साथ वैशाली से आया है। अभी तक उसे उदयेश्वर के बन्दी हो जाने का समाचार नहीं मिला था। न ही उसके पास वैशाली के संसद में अवध के विषय पर प्रस्ताव के परिणाम का पता चला था। इससे वह जो कुछ देख रहा था, उस पर विस्मय कर रहा था। देवधर्मा और वैशाली के सेठों के अवध में आने के प्रयोजन को गुप्त रखा गया था और महामात्य समझ नहीं सका था कि क्या हो रहा है। उसके गुप्तचर पंथागार को घेरे बैठे थे, परन्तु पंथागार के कर्मचारी और अन्य सब वहाँ से हटा दिये गए थे और कोई नहीं जानता था कि क्या हो रहा है।

देवधर्मा के आने से तो महामात्य की आशा बँध गई थी। वह समझता था कि देवधर्मा स्वयं यहाँ की अवस्था देखने आया है। देवधर्मा दो दिन अवध में रहा, परन्तु उसने महामात्य से पृथक् में मिलने की इच्छा प्रकट नहीं की। महाराज और महारानी वचनपत्र पर हस्ताक्षर करने पंथागार में गये तो उसने समझा कि महाराज गणपति का स्वागत करने गए हैं। अब गणपति महल में भोज पर आया तो उसने समझा कि उसका आना केवल-मात्र आदर के लिये है। गणपति का अयोध्या में आना तीर्थ-स्थान के अर्थ समझा गया।

इस समय महामात्य भोज में भानुमित्र को वहाँ देख, उसके पास बैठ पूछने लगा, "गणपति अयोध्या में बिना परिवार के आये हैं इससे तीर्थ-यात्रा का लाभ क्या होगा?"

भानुमित्र मुस्कराया और बोला, "प्रतीत होता है कि गणपति होने से इनके पापों का बोझा माताजी के पापों से अधिक हो गया था।"

"भद्र! आप इस देश के प्रतीत नहीं होते?"

"आपने ठीक ही समझा है।"

"तो कहाँ के रहने वाले हैं आप?"

"बाहुक देश का।"

बात आगे नहीं चल सकी। चमुचूड़ भानुमित्र को बुलाकर दूसरे आगार में ले गया। वहाँ जा आगे की योजना पर विचार करने लगा। वास्तव में भानुमित्र को वहाँ से ले जाने का अभिप्राय यह था कि महारानी और महाराज देवधर्मा से भानुमित्र की सेवाएँ माँगने वाले थे।

महाराज ने गणपति से कहा, "यह ब्राह्मण बालक यदि आप अवध को दे दें तो हम आपके अत्यन्त आभारी होंगे।"

रिपुदमन के कान खड़े हो गये। देवधर्मा ने कहा, "इसकी सूझबूझ से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं समझता हूँ कि वैशाली को इससे भारी हानि होगी। इस पर भी यदि वह स्वयं अवध में रहना चाहेगा तो मैं आपत्ति नहीं उठाऊँगा।"

"वह अपनी इच्छा से तो यहाँ नहीं रहेगा।"

"क्यों?"

मल्लिका का मुख इस प्रश्न से लाल हो उठा। रिपुदमन इसका अर्थ समझने में मन-ही-मन भाग-दौड़ करने लगा। देवधर्मा भी इसका कारण नहीं समझ सका। फिर एकाएक उसे स्मरण हो आया कि मल्लिका भी तक्षशिला की स्नातिका है। उसे इसमें कोई प्रेम-गाथा छिपी प्रतीत हुई। इतना अनुमान कर उसने कहा, "मैं उससे पूछूँगा। यदि तो कुछ विशेष कारण न हुआ तो कुछ काल के लिये तो अवश्य ही उसे यहाँ का काम सुधारने के लिए छोड़ जाऊँगा।"

दूसरे आगार में भानुमित्र ने बताया, "धन तो आपके पास आ गया है। कल सेना में वेतन वितरण करवा दो और साथ ही महामात्य के विरुद्ध कोष की चोरी करने का अभियोग चलाने की घोषणा कर दो। महामात्य को आज महल से बाहर जाने न दिया जाए। उसे बहाने से एक आगार में ले जाकर कुछ विश्वस्त सैनिकों द्वारा महल में बन्दी करवा दें। आज रात वैशाली के लोगों के विदा हो जाने के पश्चात्, नगर-भर की मधुशालाओं में एकत्रित युवकों को, सेना भेज कैद कर लो।

"महाराज की ओर से परसों प्रजा-परिषद् की घोषणा कर दी जावे।

उस परिषद् में जो घोषणा होनी चाहिये, वह मैं बना दूँगा।"

चमुचूड़ बोला, "यदि महामात्य आज घर न गया तो रात ही उपद्रव हो जावेगा।"

"यह ठीक है, परन्तु आज यदि महामात्य को बाहर जाने दिया गया तो वह अयोध्या से बाहर जाकर विद्रोह की पताका खड़ी कर देगा। यह समय साहस से काम लेने का है। ऐसा करो कि नगर में अपने गुप्तचरों द्वारा यह समाचार विख्यात कर दो कि महामात्य रिपुदमन किसी आवश्यक कार्य से काशी गये हैं।"

चमुचूड़ और महाराज मुरहारी विक्रम दोनों सखा थे। दोनों को साहस से कार्य करने के स्थान अपने को बचाकर कार्य करने का अभ्यास था। अवध राज्य के मन्त्रीगण महाराज की इस दुर्बलता को समझ गये थे इससे लाभ उठा राज्य पलट देना चाहते थे।

भानुमित्र राजनीति में द्रुत गति से निर्णय करने और फिर निर्णय को कार्यान्वित करने का पाठ पढ़ा हुआ था। एक बात जो वह भली-भाँति समझ गया था, वह यह थी कि धर्म-युद्ध का समय चला गया है। वह समय, जब लोग दिन को युद्ध करते थे और रात को इकट्ठे बैठ धर्मोपदेश सुनते थे, नहीं रहा था। अब तो शत्रु रात को भी आक्रमण कर देगा, ऐसा मान अपना कर्तव्य निश्चय करने की बात थी।

साथ ही वह यह बात भी जानता था कि यदि शत्रु से डरो तब भी वह निन्दा करेगा और यदि न डरो तब भी निन्दा करेगा। शत्रु से चाहे सत्य बोलो और चाहे झूठ बोलो वह विश्वास नहीं करेगा। इससे अपने व्यवहार का निर्णय करने के लिए शत्रु क्या कहेगा और क्या नहीं कहेगा, का विचार नहीं करना चाहिये। लक्ष्य की सिद्धि के लिए बिना शत्रु की सम्मति का ध्यान किये अपनी नीति का निश्चय करना चाहिए।

चमुचूड़ ने महामात्य को बंदी करने की योजना बना ली। भानुमित्र पुनः बाहर गणपति के भोज में सम्मिलित हो गया। वहाँ गणपति और अवध-सम्राट् में दोनों राज्यों में मैत्री स्थिर रखने की बातचीत हो रही थी।

गणपति का कहना था, "वैशाली और अवध में एक बार पहले युद्ध हुआ था। उस समय मगध राज्य की कूटनीति ही इसमें कारण थी। महाराज उदयन को वृद्धावस्था में यह ज्ञान हुआ कि मगध राज्य के कारण ही परस्पर युद्ध हुआ था। उसके पश्चात् आपके पिताजी ने पचास वर्ष तक राज्य किया और इस काल में आपके राज्य और वैशाली में कोई वैमनस्य की बात उत्पन्न नहीं हुई। अब आप हैं, मैं समझता हूँ कि दोनों राज्य युद्ध करते-करते ही बचे हैं। यदि एक-दो सप्ताह और निकल जाते तो शायद हम युद्धभूमि में एक-दूसरे का रक्त बहा रहे होते।

"भगवान् की अपार कृपा है कि हम समय पर समझ गये हैं और युद्ध की सम्भावना दूर हट गई है।"

महामात्य रिपुदमन यह वार्तालाप सुन मन में विचार कर रहा था कि दोनों राज्यों में सन्धि हो गई है। वह मन-ही-मन अपने भविष्य के कार्य-क्रम पर विचार कर रहा था। एक बात वह समझ रहा था कि अवध की सेना विद्रोह किये बिना नहीं रहेगी और तब समय होगा राज्य पलटने का।

भोज समाप्त हुआ। महाराज और गणपति तो बातें करते हुए महल के एक दूसरे आगार में चले गये। इस समय भानुमित्र महामात्य के समीप आकर बैठ गया और बातें करने लगा, "मैं वैशाली से आया हूँ।"

महामात्य के कान खड़े हो गये और सचेत होकर पूछने लगा, "वहाँ आप किस कार्य पर नियुक्त हैं?"

"मैं गुप्तचरों का मुखिया हूँ।"

महामात्य को अब समझ आई कि क्यों महाराज इस युवक को अवध में लेने को तैयार हैं। वह मन में सोच रहा था कि यदि यह अयोध्या में रह गया तो भानुमित्र की भाँति इसे भी जलाकर भस्म कर दिया जायेगा। महामात्य ने प्रकट में कहा, "मुझे आपसे मिलकर भारी प्रसन्नता हुई है।"

"पर मुझे यहाँ की घटनाएँ देखकर अचम्भा और दुःख हुआ है। यदि आप उचित समझें तो हम किसी जगह पृथक् बैठकर बात करें। मैं आपको कुछ गुप्त बातें बताना चाहता हूँ।"

"तो मेरे घर पर चलिए।"

"वहाँ जाने के लिए समय नहीं है। हम अभी तीसरे पहर में यहाँ से विदा होने वाले हैं।"

"तो फिर ?"

भानुमित्र ने चमुचूड़ की ओर देखकर कहा, "हम पृथक् में कुछ बात करना चाहते हैं। कोई स्थान···"

चमुचूड़ ने उत्तर दिया, "हाँ! हाँ! आइये। यह साथ का आगार सर्वथा खाली है।"

भानुमित्र ने महामात्य को कहा, "आइये।"

दोनों उठ बगल के कमरे में चले गए। इस कमरे में कोई खिड़की नहीं थी। प्रकाश छत में एक गवाक्ष में से आ रहा था। दीवारों पर भाँति-भाँति के देवताओं और इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न महापुरुषों के चित्र बने थे। आगार में भूमि पर दरी, कालीन और उन पर आसन लगे थे। दोनों आसनों पर बैठ गए। एक क्षण बैठकर भानुमित्र ने अपने चारों ओर देखा, मानो उसे भय था कि कोई उसकी बात सुन लेगा। फिर वह उठते हुए बोला, "मैं देखना चाहता हूँ कि कोई हमारी बात सुन तो नहीं सकेगा।"

उसने दीवारों के साथ कान लगाकर और उनको ठकोरकर देखा, फिर दरवाजे के बाहर झाँककर देखने लगा। इस समय वह यह देखने का बहाना कर कि आगार के बाहर तो कोई खड़ा नहीं, द्वार से बाहर चला गया। उसके बाहर जाने के एक क्षण पीछे ही आगार का द्वार बन्द हो गया। महामात्य को सन्देह हुआ तो वह लपककर द्वार को बलपूर्वक खोलने के लिये धकेलने लगा। वह नहीं खुला। उसने चिन्तित हो छत में गवाक्ष की ओर देखा। उसे छत पर हाथ में नंगे खड्ग लिए दो सुभट्ट खड़े दिखाई दिये। वह समझ गया कि वह बन्दी हो गया है।

चार

०

महामात्य

०

: १ :

जब से अवध के महामात्य पद को स्वीकार करने के लिए भानुमित्र से कहा गया था, तब से ही वह असमञ्जस में फँस गया अनुभव कर रहा था। सबसे प्रथम समस्या मल्लिका की थी। वह अनुभव कर रहा था कि मल्लिका उसके हृदय को आंदोलित करने में सबल है और उससे उसका दूर रहना ही ठीक है। यद्यपि वह मृदुला को देख चुका था और वह मल्लिका से अधिक सुन्दर, चतुर और बुद्धिमान थी तो भी उसके विवाह के लिए तैयार होने में चार वर्ष शेष थे। इधर अवध का महामात्य बन जाने पर मल्लिका दिन-रात उसके सम्मुख रहेगी और किसी समय भी वह पथ-भ्रष्ट हो सकता है। सबसे बड़ी बात यह थी कि अवध-नरेश, शरीर का सुन्दर और सुडौल होने पर भी, बुद्धि और कार्य-पटुता में एक साधारण जीव ही था। वह देख रहा था कि मल्लिका का उसके प्रति अनुराग शिथिल होता जाता है और उसे अवध-नरेश को अपना पति वरने पर शोक होने लगा है।

परन्तु इससे भी अधिक आवश्यक समस्या, राजा के राज्य और गण-राज्य में श्रेष्ठता के विषय पर उसके मन में द्विविधा थी। वह कभी एक को और कभी दूसरे को श्रेष्ठ मानता था। वह मन में यह सोचता था कि एक राजा के राज्य को सुदृढ़ करने से वह कहीं काल की प्रगति में बाधक तो नहीं बन जावेगा।

एक बार उसने गणराज्यों के दोषों पर तक्षशिला में अपना लेख पढ़ा था, परन्तु तब वह बालक था और उसे अनुभव कम था। अब वह गणपति देवधर्मा को बीस वर्ष से वैशाली को अधिक-से-अधिक समृद्धिवान और शक्तिशाली बनाने में सफल होता हुआ देख रहा था। इधर एक मूर्ख और दुर्बल राजा को अपना राज-पाट चौपट करते देख चुका था।

इससे उसके मन में यह आता था कि ऐसे राजा से तो गणपति का राज्य ही अच्छा है। फिर गणपति के दुर्बल होने पर वह बदला जा सकता है और राजा के दुर्बल और निर्बुद्धि होने से तो वह अपना पद बिना लड़ाई किये नहीं छोड़ेगा।

इसी प्रकार की समस्याओं की उलझनों में फँसा हुआ वह अवध-नरेश के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सका था। जब पंथागार में पहुँच देवधर्मा ने उससे कहा, "वत्स! अवध-नरेश तुम्हें यहाँ का महामात्य बनाना चाहते हैं।"

भानुमित्र का उत्तर था, "मुझे पिता जी ने आपके पास भेजा है। इससे जो आज्ञा आप देंगे, सो करूँगा।"

"परन्तु वत्स! तुम स्वयं भी तो सज्ञान हो। राजनीति के महापण्डित हो और तुम स्वयं समझ सकते हो कि कहाँ रहने में तुम्हें लाभ होगा।"

"लाभ-हानि की बात तो मैं नहीं जानता। हाँ मैं आपसे अपने मन की धारणा छुपाने की आवश्यकता नहीं समझता। मुझे महारानी मल्लिका से घृणा है। मैं उसके राज्य में रह नहीं सकता। साथ ही मैं राजा के राज्य से गणराज्य को अधिक उपकारी समझता हूँ।"

"कैसे?"

"मल्लिका मेरी सहपाठिन थी। उसकी मेरे साथ विवाह की बात निश्चित थी। इतने में सुरहारी विक्रम आ गये और मल्लिका ने एक क्षण में ही मुझे छोड़ उनसे विवाह करने का निश्चय कर लिया। मैं समझता हूँ कि संसार में राज्य-पद ही बुद्धि भ्रष्ट करने में कारण बन जाता है। गणराज्य में राज्य, प्रजा के हाथ में होने से बुद्धि भ्रष्ट करने में सबल नहीं होता।"

देवशर्मा गम्भीरता से भानुमित्र के मुख की ओर देख बोला, "देखो वत्स ! तुम शिक्षा में मुझसे कम नहीं हो। शायद अधिक हो, परन्तु अनुभव में तो कम हो ही। यही कारण है कि एक ही आचार्य से शिक्षा पाकर भी हम भिन्न परिणामों पर पहुँचे हैं। मेरा दृढ़ मत है कि स्त्रियों के विषय में तुम्हारे विचार मँजे हुए नहीं हैं। अच्छा यह बताओ कि तुम मल्लिका से अब भी प्रेम करते हो क्या ?"

"मैं प्रेम के अर्थ नहीं समझता आर्य ! मैं उससे विवाह करना चाहता था। वह नहीं कर सका। उसमें कारण है एक पुरुष का जन्म से एक पदवी पर होना, जिस पर जन्म से मैं नहीं हूँ। मैं इस जन्म-सिद्ध अधिकार की बात को मिटा देना चाहता हूँ।"

"देखो, फिर तुमने दो बातों को मिलाकर अपने मस्तिष्क में बौखलाहट उत्पन्न कर ली है। मल्लिका से तुम अब विवाह करने के लिए उत्सुक नहीं। ठीक है न ? इसलिए कि उसने तुम्हें छोड़ अवध-नरेश को स्वीकार किया है। यह क्यों किया है, यह एक पृथक् प्रश्न है। इसको हम पीछे विचार करेंगे।"

भानुमित्र ने अभी भी युक्ति में अपनी हार नहीं मानी। इस पर भी उसने कहा, "आप ठीक कहते हैं। यदि इस समय मल्लिका और मेरी दूसरी प्रेमिका में से मुझे अपनी विवाहिता निर्वाचित करनी पड़े तो मैं मल्लिका को शायद नहीं चुनूँगा।"

"तब तो यह ठीक ही हुआ है कि उसने तुमसे विवाह नहीं किया और तुम्हें उसके अवध-नरेश से विवाह करने पर शोक तथा रोष नहीं करना चाहिए। कोई कारण नहीं कि अब तुम उससे घृणा करो। क्या मैं झूठ कह रहा हूँ ?

"अच्छा, अब सुनो। मल्लिका के तुम्हें न पसन्द करने में कारण राजा में राज्य सत्ता होना नहीं, प्रत्युत् मल्लिका के एक व्यापारी की लड़की होना है। यदि तुम्हारी विक्रम के स्थान वैसी ही युवा अवस्था में मैं वहाँ पहुँच जाता तो वह मुझे वर लेती। तुम जानते हो मैं ब्राह्मण हूँ, परन्तु एक समय था

कि एक देश के राजा की लड़की ने मुझे वरा था। केवल इस कारण कि मैं एक विख्यात राज्य का गणपति था।

"एक लोभी लड़की को धन का लालच अपने निर्णय से फुसलाने में सफल हो जाता है। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि धनवानों का समूल नाश कर दिया जाए। जैसे बुद्धिमानों को कोई शक्ति संसार से मिटा नहीं सकती, वैसे ही धनवानों को संसार से निःशेष नहीं किया जा सकता। हाँ उनकी प्रभुता नष्ट की जा सकती है और उस प्रभुता को मिटाने के लिए उनको श्रेष्ठ मानने वालों की मनोवृत्ति बदलना है। मल्लिका गान्धार कुमारी होने से और फिर एक व्यापारी-परिवार में उत्पन्न होने से धनियों को श्रेष्ठ मानने की मनोवृत्ति रखती थी। इसमें मुरहारी विक्रम का राजा होना दोष नहीं, प्रत्युत् उसके राजा होने से उसे श्रेष्ठ मानने वाले का दोष है।

"अब रहा गणराज्य का राजा के राज्य से अच्छा होना। इसमें भी मैं समझता हूँ कि तुम्हारा मत सर्वथा सत्य नहीं है। दोनों ढंग के राज्यों में अपने-अपने दोष हैं और अपने-अपने गुण। यदि इन गुण-दोषों को तराजू में रखकर तोलें तो शायद गणराज्य में दोष अधिक सिद्ध होंगे और गुण कम।

"तुम शायद भूल गए हो, परन्तु मुझे स्मरण है कि तक्षशिला में तुमने एक बार गणराज्यों के दोष वर्णन किये थे और मैंने तुम्हें उस छोटी आयु में इतने अनुभव की बात करते सुन प्रसन्न हो तुम्हें अपना मुक्ताहार उपहार में दिया था। मुझे उस समय की तुम्हारी एक बात विस्मृत नहीं हो सकती। तुमने कहा था, 'जनता के मनोद्गारों को उभार कर गणराज्य की नींव रखी जाती है। जनता के मनोद्गार बहुत ही निम्न कोटि के होते हैं। इनको उभारने से जनता में पतन बढ़ जाता है और निम्न प्रकार के मनोद्गारों से उभरी हुई जनता पूर्ण राज्य को ही पतन की ओर ले जाने में सफल होगी।' तुमने यह भी कहा था कि, 'बुद्धिमत्ता बहुत ही कम लोगों के भाग्य में होती है। जनता प्रायः भावुकता से प्रेरित हो बातें करने में आनन्द अनुभव करती है। भावुकता और बुद्धि का समन्वय राजा के राज्य में ही हो सकता है।'

"अब तुम्हारे विचार-परिवर्तन में मल्लिका के अवध-नरेश से विवाह के अतिरिक्त और कौन युक्ति है ?"

भानुमित्र निरुत्तर हो गया था। वह समझ गया था कि मल्लिका के व्यवहार से उसने अपनी मान-हानि समझी थी। इसी कारण वह उससे घृणा करता था और राजा के राज्य के विरुद्ध हो गया था। परन्तु जब उसे ज्ञान हुआ कि उसको मल्लिका से घृणा करने में कोई कारण नहीं तो शेष सब बातें निस्सार प्रतीत होने लगीं। वह गम्भीर विचार में पड़ गया।

देवधर्मा ने उसे अपनी अन्तिम सम्मति दी—"देखो वत्स ! यदि मैं पच्चीस वर्ष तक निरन्तर गणपति न बन सकता तो वैशाली की दशा अवध से भी खराब होती। मेरा इतने लम्बे काल तक गणपति बन सकने का रहस्य है लोगों को धोखा देने में मेरी सफलता। मैं हृदय से अपनी योजनाएँ वैशाली के हित में समझता रहा हूँ। परन्तु सदैव यह रहा है कि लोग मेरी योजनाओं का विरोध करते रहे हैं। इस कारण मैं भली भाँति समझते हुए भी लोगों को कहता रहा हूँ कि मैं उनकी इच्छानुसार ही कार्य कर रहा हूँ। यह धोखा सब लोगों से सदैव नहीं चल सकता। इसका परिणाम, जानते हो क्या होगा ? एक दिन कोई अयोग्य गणपति होगा तो साधारण लोग जो वास्तविक परिस्थिति से अपरिचित होंगे, अनर्थ कर बैठेंगे।

"जानते हो, पिछले मंगल के दिन संसद् की बैठक थी और उसमें प्रस्ताव रखा गया था कि वैशाली अवध में गणराज्य की स्थापना का स्वागत करेगा। इस प्रस्ताव के पास हो जाने का अभिप्राय यह होता कि जब महामात्य यहाँ विद्रोह करता तो हम महाराज की सहायता न कर सकते। मैंने नीति से यह प्रस्ताव उपस्थित होने से रोक दिया है। मैं जानता था कि यदि संसद् के सदस्यों के सम्मुख यहाँ पर गणराज्य-स्थापना का प्रश्न आता तो बिना सोच-विचार किये सब लोग इसके पक्ष में सम्मति देते। उन लोगों को आन्तरिक बातों का तो ज्ञान होता नहीं और न ही ये भीतर की बातें उनको बताई जा सकती हैं।"

भानुमित्र ये अनुभव की बातें सुन चकित रह गया। इस पर भी वह

यह सोच रहा था कि अवध की सेवा स्वीकार करे अथवा न। जब किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका तो उसने कहा, "इस पर भी मेरा मन यह कहता है कि यदि आप उचित समझें तो कुछ काल के लिए मैं यहाँ काम करता हूँ। वास्तव में तो मुझे आपके चरणों में बैठकर बहुत-कुछ सीखना है।"

"देखो मित्र! मेरी राजनीति के आधार में एक विचार है। वह है भारत खण्ड की एक्यता। यह एक्यता राज्य-प्रबन्ध में तो नहीं है। यह सांस्कृतिक है। सांस्कृतिक एक्यता रखने से ही हम सब राज्यों को लाभ है। इससे परस्पर के द्वेष और झगड़े बहुत कम हो जाते हैं और समय पड़ने पर एक-दूसरे की सहायता करने में उत्साह भी आ जाता है। यही बात तुमने अपने पत्र में लिखी थी। तुमने लिखा था कि यदि अवध में वाम मार्ग फैल गया तो वैशाली उसके प्रभाव से बचा नहीं रहेगा।

"इससे मैं चाहता हूँ कि अवध की अवस्था सुधरने तक तो तुम अवश्य ही यहाँ रह जाओ।"

"यदि आपकी यही आज्ञा है तो पाँच वर्ष तक मैं अपनी सेवाएँ अवध के अर्पण करता हूँ। इस काल के उपरान्त मैं यहाँ रहने अथवा यहाँ से कहीं और चले जाने में स्वतन्त्र रहूँगा।"

"मैं तुम्हारे इस निर्णय से बहुत प्रसन्न हूँ, वत्स! तुम्हारे लिए वैशाली और मेरे घर का द्वार सदा खुला है। यह लो।" इतना कह गणपति ने अपने दाहिने हाथ की मध्यमा से अंगूठी उतार भानुमित्र की उँगली पर चढ़ा दी और कहा, "यह मेरे प्रेम का चिह्न है और वैशाली में, जब तक मैं गणपति हूँ, मेरे स्थानापन्न तुम्हें कार्य करने का अधिकार है। जो कुछ तुम करोगे वह स्वीकार समझा जावेगा।"

: २ :

तीसरे प्रहर देवधर्मा तथा वैशाली के सेठी और उनके साथ आये सुभट वैशाली लौट गए। भानुमित्र देवधर्मा का पत्र ले राजमहल में, जहाँ उसकी उत्सुकता से प्रतीक्षा की जा रही थी, पहुँच गया। उसने देवधर्मा का पत्र

महाराज को दिया। उस पत्र में पाँच वर्ष के लिए भानुमित्र की सेवाएँ अवध-राज्य के लिए दी गई लिखी थीं। यह पढ़ महाराज मुरहारी विक्रम ने उठ भानुमित्र को गले लगाया और अपने समीप बैठने को आसन दिया। महाराज ने कहा, "मित्र! मैं तुम्हें आज से अवध के महामात्य की पदवी पर नियुक्त करता हूँ। इस क्षण से तुम राज्य-संचालन करो।"

वसुचूड़ को कहकर नियुक्ति-पत्र तैयार कर, हस्ताक्षर और मुहर लगा भानुमित्र को दे दिया गया। जब तक उपयुक्त निवास-स्थान का प्रबन्ध हो, भानुमित्र के रहने के लिए महल में कुछ आगार दे दिये गए।

भानुमित्र ने महामात्य-पद का नियुक्ति-पत्र पा पहला कार्य जो किया, वह सेनापति को बुलाया और अपना नियुक्ति-पत्र दिखाकर उसे पद-त्याग करने के लिए कहा। सेनापति यह नई बात सुन चकित रह गया। कुछ देर तक परिस्थिति पर विचार कर बोला, "बालक! यह तुम क्या कर रहे हो? अवध में विप्लव हो जावेगा।"

भानुमित्र इस बात के लिए तैयार था। उसने कहा, "वीर भद्र! तुम्हारी शूरवीरता की प्रशंसा मैं सुन चुका हूँ। यही कारण है कि तुम्हारे साथ वैसा व्यवहार नहीं किया जैसा कि महामात्य रिपुदमन के साथ हुआ है। वह इस समय महाराज का बन्दी है। उस पर राज्य-कोष में चोरी करने और महाराज को मार स्वयं राजा बनने का अभियोग लगाया गया है।"

वीरभद्र ने क्रोध में आ कटार निकाल ली। परन्तु उस समय तक महल के दस सुभट्टों ने नंगे खड्ग ले सेनापति को घेर लिया। विवश सेनापति ने कटार हाथ से भूमि पर फेंक दी और अपने को कैद हो जाने दिया।

भानुमित्र ने पुनः कहा, "यदि तुम अपनी इच्छा से अपने पद से उन शब्दों में त्यागपत्र दे दो, जो मैं कहता हूँ तो तुम पर अभियोग नहीं चलाया जावेगा। जब तक व्यवस्था स्थिर नहीं हो जाती तब तक तुम्हें महाराज का प्रतिष्ठित बन्दी बना रखा जावेगा और पश्चात् अवध-राज्य में उपयुक्त कार्य पा सकोगे। बताओ, क्या इच्छा है?"

सेनापति जानता था कि रिपुदमन ने बहुत-कुछ गड़बड़ की हुई है,

इससे अपने को उससे पृथक् रखने के लिए भानुमित्र की आज्ञा-पालन करने को तैयार हो गया। उसने उस त्याग-पत्र पर, जो तैयार किया हुआ पहले से ही रखा था, हस्ताक्षर कर दिये।

भानुमित्र ने सेनापति को अभी महल के एक आगार में बन्दी कर दिया और उस पर प्रहरी बैठा दिये।

उसी दिन सायंकाल होने से पूर्व अयोध्या में उपस्थित सेना में वेतन-वितरण का कार्य किया गया और अगले दिन सेना को राज्य-सभा में उपस्थित होने का आदेश भेज दिया।

रात एक प्रहर गई थी कि पचास-पचास सैनिकों की मंडलियाँ नगर की सब मधुशालाओं में तथा गणिकाओं के मकानों पर पहुँच गईं और सब युवकों को पकड़-पकड़कर बन्दीगृहों में बन्द कर दिया। लगभग दो सहस्र युवक पकड़े गए थे।

अगले दिन राज्य-सभा में नगर की पूर्ण प्रजा को निमन्त्रण था। महल के भीतर मैदान में राजकीय शामियाना लगाया गया था, जिसमें दस सहस्र के लगभग लोगों के बैठने का प्रबन्ध किया गया था।

ठीक समय पर महाराज तथा महारानी पधारे और राज-सिंहासन पर, जो सोने-चाँदी का बना था, बैठ गये। सिंहासन के नीचे, परन्तु मंच पर एक ओर भानुमित्र और दूसरी ओर भद्रसेन, जो अर्थ-मन्त्री नियुक्त किया गया था, बैठे थे। कुछ प्रतिष्ठित-जन, जिनमें चमुचूड़ भी था सिंहासन के पीछे हटकर मंच पर बैठे थे।

राज्य सभा का आरम्भ सामवेद गान और इक्ष्वाकु महाराज की वंशावली तथा वंश के गुणगान के साथ हुआ। इसके पश्चात् महाराज मुरहारी विक्रम ने इस राज्य-सभा का उद्देश्य वर्णन किया। उसने कहा, "प्रिय प्रजागण! स्वर्गीय महाराज, अपने पूज्य पिताजी के देहान्त से मुझे भारी शोक हुआ था और मेरा मन अति क्षुब्ध हो उठा था। सो अपने अभिषेक के तुरन्त ही पीछे मैं तीर्थाटन के लिए घर से निकल गया था। दो वर्ष पर्यन्त मैं बाहर रहा। इस काल में मैं राज्य का भार अपने पूज्य

पिताजी के काल के महामात्य और मन्त्रियों पर छोड़ गया था। दो वर्ष में ही इन लोगों ने राज्य-कार्य को इतना बिगाड़ा कि राज्य-कोष खाली हो गया, कर बढ़ गए, व्यापार नष्ट हो गया और ईश्वर के कोप के कारण वृष्टि में कमी हुई। सेनाओं को वेतन नहीं दिया गया परन्तु नगर में गणिकाओं और मधुशालाओं की संख्या बढ़ गई।

"जब मैं अवधपुरी में लौटा तो मैंने अपने चारों ओर विनाश-ही-विनाश देखा। पहले तो मैं अपने मन्त्रीगणों से ही अवस्था सुधारने के लिए कहता रहा। उन्होंने जो कुछ करना चाहिए था नहीं किया। फिर मैंने मन्त्रीगणों के कामों पर जाँच करानी आरम्भ की। उसके परिणाम में मुझे यह पता चला है कि महामात्य और कुछ दूसरे मन्त्री राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे थे। इससे मैंने उन मन्त्रियों को, जिनके विरुद्ध दोषारोपण स्पष्ट है बन्दी बना लिया है। उनको न्यायालय में उपस्थित किया जायगा। शेष मन्त्रियों को मैंने पद से पृथक् कर दिया है और उनके स्थान पर नये मन्त्री नियुक्त किये हैं।

"एक बड़ा भारी षड्यन्त्र जो राज्य के विरुद्ध चल रहा था, पकड़ा गया है। उसमें दो सहस्र से ऊपर लोग सम्मिलित थे। उनके विरुद्ध भी एक न्यायालय में अभियोग चलाया जायगा।

"हम प्रसन्न हैं कि हमारी प्रजा ने, इन षड्यन्त्रकारियों के कारण जो भी कष्ट उन्हें हुए हैं, धैर्य से सहन किये हैं। हम चाहते हैं कि शीघ्र ही उनके कष्टों का निवारण किया जाय। इस निमित्त हम निम्न घोषणाएँ करते हैं—

(१) सेना को वेतन तुरन्त दे दिया जावे।

(२) भूमि-कर दो वर्ष के लिये क्षमा कर दिया जावे।

(३) बाहर जाने वाले माल पर कर कुछ न लिया जावे। साथ ही यदि कोई राज्य से बाहर के लोग हमारे राज्य में बना माल खरीद राज्य से बाहर ले जावें तो राज्य की ओर से उस माल पर दो पैसा रुपया छूट दी जावे।

(४) बाहर से आने वाले माल पर कर उतना ही लिया जावे जितना स्वर्गीय महाराज के काल में था।

(५) वर्षा होने के लिए एक बृहत् यज्ञ अयोध्या में और छोटे-छोटे यज्ञ राज्य के दस भिन्न-भिन्न भागों में किये जावें।

(६) अयोध्या में लोगों की निःशुल्क चिकित्सा के लिए एक बृहत् रुग्णालय स्थापित किया जावे।

(७) जो ब्राह्मण शिक्षावृत्ति करेंगे, उनको राज्य की ओर से निर्वाह के लिए बिना कर के भूमि दी जावेगी।

(८) हमारे राज्य में कुछ लोग विदेशों से आकर दास-दासियों का क्रय-विक्रय करने लगे हैं। यह प्रथा अनार्य होने के कारण बन्द कर दी जाती है। यदि राज्य में कोई दास अथवा सेवक हो और उसकी इच्छा स्वामी बदलने की हो तो वह अपनी इच्छा के अनुकूल, जब चाहे स्वामी बदल सकता है अथवा स्वामी छोड़ सकता है।

(९) हमारी प्रजा में से किसी को किसी भी प्रकार का कष्ट हो और वह कष्ट उस अधिकारी से, जिसको हमने उस कार्य के लिए नियुक्त किया हुआ है, दूर न हुआ हो तो हमारे पास आ सकता है। हम एक मुहूर्त-भर नित्य अपनी प्रजा से मिलने के लिए पंथागार में बैठा करेंगे।

(१०) हमारे राज्य में किसी भी मतावलम्बी को उसके मत के कारण किसी भी प्रकार की सुविधा अथवा बाधा नहीं होगी। सब लोग स्वतन्त्रता से विचर सकते हैं और स्वतन्त्रता से विश्वास और विचार रख सकते हैं। देश के नियम मतमतान्तर का विचार छोड़ कर लागू होंगे।"

इस प्रकार की घोषणाओं पर लोगों ने अत्यन्त हर्ष प्रकट किया। कुछ दिनों से उपद्रव करने के लिए बाहर से बुलाये हुए युवकों के कारण नागरिकों का नाक में दम हो रहा था। यह समाचार सुनकर कि दो सहस्र से अधिक युवक पकड़े गए हैं, लोगों ने सुख का सांस लिया।

महाराज की जय जयकार के पश्चात् राज्य-सभा समाप्त हुई।

: ३ :

भानुमित्र की योजना का परिणाम तुरन्त हुआ। सेना में यह बात

विख्यात हो गई कि रिपुदमन ने ही उनका वेतन रोक छोड़ा था। उदयेश्वर के मकान की तथा उसके कार्यालय की जाँच करने पर पता चला कि धन और रत्नादि राज्य-कोष से लेकर लोगों को भड़काने के कार्य में लगाये गए थे।

उदयेश्वर और रिपुदमन पर अभियोग खुले न्यायालय में चलाया गया। सैकड़ों लोग इस अभियोग की कार्यवाही देखने नित्य आते और दिन-प्रतिदिन इन लोगों के लिए घृणा के भाव एकत्रित करके जाते थे। जब वैशाली के साक्षी आये और उन्होंने वहाँ पर रिपुदमन का अवध के विरुद्ध षड्यन्त्र बताया तो खड़े लोगों ने बन्दियों के मुख पर थूका।

एक दिन रिपुदमन ने बन्दीगृह में आत्मघात कर लिया। उदयेश्वर को मृत्यु-दण्ड दिया गया।

दो सहस्र नवयुवकों में से प्रायः सबने अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा-प्रार्थना कर ली। इनमें रिपुदमन का पुत्र भी था। उसे तो देश-निर्वासन दण्ड दिया गया और शेष युवकों को छोड़ दिया गया।

राज्य-कोष का लगभग आधा धन रिपुदमन, उदयेश्वर और वैशाली के भूधर के गृह में पड़ा मिल गया। कर कम हो जाने से पुनः अयोध्या के व्यापार में उन्नति होने लगी।

भानुमित्र को अवध का महामात्य हुए अभी छः मास भी नहीं हुए थे कि उसके सुप्रबन्ध की चर्चा अवध से बाहर तक भी पहुँचने लगी। मगध, वैशाली, मल्ल, अङ्ग, वंग, पुण्ड्र, विदेह, कलिंग आदि देशों से अवध के व्यापारिक और राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो गये। पुनः अवध में धन प्रवाहित होने लगा।

जब अयोध्या में शान्ति स्थापित हो गई तो पं० मैलन्द और उसकी लड़की राका, दोनों पुनः अपने घर में जाकर रहने लगे। राका प्रायः महारानी से मिलने आया करती थी। कई बार अन्य स्त्रियों से महारानी भानुमित्र की योग्यता की प्रशंसा किया करती थी, जिसे राका सुना करती थी। उसने उसे केवल एक ही बार देखा था। रात के समय जब राज्य के सुभट्ट उसे

अपने पिता सहित महल में रक्षार्थ लाये थे और वह महारानी से मिलने आई थी तो भानुमित्र को उसने वहाँ खड़े देखा था। इसके पश्चात् उसकी प्रशंसा के अतिरिक्त उसे और कुछ सुनने को नहीं मिला था। उसके मन में भानुमित्र को देखने की इच्छा तो कई बार उठी थी, परन्तु इसमें कुछ विशेष प्रयोजन अथवा मनोकामना नहीं थी।

एक दिन वर्षा के लिए यज्ञ के प्रबन्ध की योजना बनाने में मैलन्द पंडित महाराज से मिलने आया हुआ था। वहाँ महारानी भी उपस्थित थीं। बातों-ही-बातों में यह बात उठ खड़ी हुई कि राका का विवाह हुआ है या नहीं।

पं० मैलन्द ने कहा, "महारानी जी! लड़की की आयु अभी सोलह वर्ष की ही है।"

"जब लड़की के विवाह के लिये झगड़ा हो चुका हो तो वह हो ही जाना चाहिये।"

"पर कोई सुयोग्य वर भी तो हो।"

इस पर महाराज ने कह दिया, "पण्डित जी! वर तो है। पण्डित भानुमित्र, हमारे महामात्य अभी अविवाहित हैं। सब प्रकार से सुयोग्य हैं।"

यह प्रस्ताव सुन मैलन्द पण्डित की आँखें खुल गईं। उसका इस ओर कभी ध्यान ही नहीं गया था। इस पर भी वह बहुत भारी सोच में पड़ गया। उसे गम्भीर विचार में पड़ा देख महारानी ने कहा, "यदि वह पसन्द नहीं तो उससे श्रेष्ठ वर तो राज्यभर में मिलना कठिन है, पण्डितजी!"

"महारानी जी! मेरे नापसन्द की बात नहीं। यह महामात्य जी की पसन्द की बात है। इतने ऊँचे पद पर होकर भला वह मुझ निर्धन ब्राह्मण की कन्या को स्वीकार करेंगे?"

"अच्छी बात, तो हम इस विषय में बातचीत करेंगे।"

इसके कुछ दिन पश्चात् महाराज और महारानी ने पण्डित मैलन्द और उसकी लड़की को महल में भोज दिया। इस भोज पर भानुमित्र, सेठ भद्रसेन और चमुचूड़ सपरिवार तथा कुछ अन्य परिवार निमन्त्रित थे। भोज के

समय स्त्री-पुरुष एक ही स्थान पर बैठे थे। इसके पश्चात् महाराज के आग्रह पर महारानी ने वीणा बजाकर सुनाई। भद्रसेन की लड़की ने नृत्य किया और पश्चात् राका से गाने के लिये कहा गया। राका इस कला में अभ्यस्त थी। उसने बागेश्री गाकर सुनाई। भानुमित्र मल्लिका का गाना सुन चुका था, परन्तु उस समय वह विद्यार्थी था। अब उसका अनुभव कहीं अधिक हो चुका था। उसने वैशाली की नगर-वधू मृदुला का संगीत भी सुना था। राका उसके सम्मुख अभी नवशिक्षिता ही प्रतीत होती थी। इस पर भी उसके स्वर में, उसके तानालाप में और उसकी भावभंगी में अधिक स्वाभाविकता थी। फिर राका अभी खिलने वाली कली थी। उसका सौन्दर्य एक विशेषता रखता था, जो मल्लिका और मृदुला से सर्वथा भिन्न था। वह उसकी ओर आकर्षित हुआ, परन्तु उसके मन पर मृदुला का चित्र अंकित था। इससे मन में यह कहकर ही रह गया कि राका भी सुन्दर लड़की है।

रात तो उग्र रूपमें भोज के पश्चात्, जब स्त्रियाँ उठकर पृथक् आगार में चली गईं, भानुमित्र के सम्मुख आई। महारानी ने भानुमित्र से कहा, "मित्र! अब तुम्हें विवाह कर लेना चाहिये।" दोनों महल के भीतरी उद्यान में पौष मास की धूप में भ्रमण कर रहे थे।

भानुमित्र ने मुस्कराकर कहा, "महारानी जी का, मेरे विषय में चिन्ता करने के लिए, मैं आभारी हूँ।"

"मैं समझती हूँ कि जब तुम्हारा किसी, मुझसे भी अधिक सुन्दर लड़की से विवाह हो जावेगा तो तुम मेरा अपराध क्षमा कर दोगे।"

"तो महारानी जी ने कोई अपराध किया है?"

"तुम ही तो एक दिन कहते थे कि मुझे तुम्हारे धनी होने का विश्वास नहीं था। अब मुझे विश्वास हो गया है और पहले अविश्वास करने का अपराध मिटा देना चाहती हूँ।"

भानुमित्र की हँसी निकल गई। मल्लिका उसके हँसने का अर्थ नहीं समझ सकी। इससे उसके मुख पर देखती रही। भानुमित्र ने कुछ गम्भीर

हो कहा, "तो महारानी जी किसी को बलि का बकरा बनाना चाहती हैं? अपने पाप, किसी को बलि चढ़ा मिटाना चाहती हैं।"

"परन्तु मैं तो अब तुम्हारे साथ किसी भी लड़की के विवाह को सौभाग्य की बात मानती हूँ।"

"यज्ञ में बलि दिये जाने वाले पशु के विषय में पुरोहित ऐसा ही कहता है।"

मल्लिका इस तुलना से लज्जित हुई। उसने समझा कि भानुमित्र के मन में अभी भी दुःख बना है। इससे उसने कहा, "तुमने राका को देखा है?"

"पुरोहित जी की लड़की को? हाँ। वह किसी राजा-रईस की पत्नी बनने योग्य है।"

"और वह तुम बन गए हो।"

"परन्तु महारानी जी! मैंने एक बार ठोकर खाई है और उससे इतनी शिक्षा प्राप्त कर ली है कि अब अपना मन किसी लड़की पर आसक्त नहीं होने दूँगा। क्या जाने सप्तपदि होते-होते उसकी दृष्टि किसी अन्य पुरुष पर पड़ जावे और वह वेदी पर ही मुझे छोड़ चली जावे।"

"तो इसका उपाय तो है।"

"मैं वह जानता हूँ, परन्तु मैं वह भी नहीं करूँगा। मेरा तो यह विचार है कि किसी लड़की से प्रेम करना अपने को धोखा देना है। अपने में धन, बुद्धि और बल की वृद्धि करनी चाहिए फिर स्त्रियाँ तो स्वयं आगे-पीछे चक्कर काटने लगती हैं।"

मल्लिका विवाह की यह मीमांसा सुन क्रोध से भर गई और उसने बात वहीं समाप्त कर दी। भानुमित्र ने भी बात बदल दी और कहा, "मैं कुछ दिन के लिए वैशाली जाना चाहता हूँ।"

"क्या है वहाँ?"

"कुछ है। मेरा निजी कार्य है।"

मल्लिका हँस पड़ी और बोली, "क्या वहाँ कोई आगे-पीछे चक्कर काटने वाली है।"

"महारानी जी!" भानुमित्र ने प्रसन्नता से देदीप्यमान होते हुए कहा, "एक नहीं दो हैं।"

इस समय महाराज मैलन्द के साथ वहाँ आ पहुँचे। "क्या बातें हो रही हैं, मित्र?"

"मैंने महारानी जी से कहा है कि मैं एक-दो दिन के लिए वैशाली जाने का विचार रखता हूँ।"

"और मैंने पूछा है" मल्लिका ने कहा, "कि वहाँ कोई प्रेम-सम्बन्ध है, जो खेंच रहा है तो हमारे महामात्य जी कहने लगे कि एक नहीं दो हैं।"

"और यहाँ मैं तुम्हारे लिए एक तीसरा सम्बन्ध निश्चय कर रहा हूँ, मित्र!"

"महाराज की बहुत कृपा है।"

"तुमने राका को देखा है?"

"हाँ महाराज! अच्छी सुन्दर लड़की है।"

"वह तुम्हें वरना चाहती है।"

"तो महाराज मैं न नहीं कर सकता; परन्तु महाराज! मुझे वरने के लिए और भी तैयार हैं।"

"यह तो बहुत विषम समस्या है।"

"हाँ महाराज! हमारी समाज में वरने का अधिकार स्त्री को है। पुरुष स्त्री को अपनी पत्नी निर्वाचित नहीं कर सकता। जब तो यह हो कि स्त्री हो एक और उससे विवाह के इच्छुक पुरुष हों बहुत, तब तो समस्या सुगम है। स्त्री स्वयंवर कर जिसको चाहे वर सकती है। अस्वीकृत पुरुषों को धैर्य से अपने भाग्य को कोसकर रह जाना चाहिए। परन्तु जब बात इससे उलट हो, अर्थात् पुरुष हो एक और उसे चाहने वाली स्त्रियाँ हों बहुत, तो केवल दो ही सुझाव हो सकते हैं। एक तो यह कि पुरुष स्वयंवर करे और जिस स्त्री को चाहे वरे और अन्यों को छोड़ दे। दूसरा सुझाव यह है कि कई स्त्रियाँ एक ही पुरुष की भार्या बनकर रहें।"

मल्लिका इस युक्ति को सुन चकित रह गई। उसे दोनों सुझाव पसन्द

नहीं थे, परन्तु इस अवस्था में उसे तीसरा सुझाव प्रतीत नहीं हो रहा था। पं० मैलन्द ने कहा, "मैं एक सुझाव इस विषय में रखता हूँ। वह यह कि उन बहुत स्त्रियों में से जो एक ही पुरुष को वरना चाहती हैं, पुरुष किसी एक को निर्वाचित कर ले और दूसरी स्त्रियाँ अपने भाग्य पर सन्तोष करें।"

"यह तो ठीक ही है, परन्तु इसमें जो बात समझने की है वह यह कि क्या अन्य लड़कियाँ दूसरा विवाह करना स्वीकार कर लेंगी। यदि तो कर लें तब तो ठीक है और यदि वे आजीवन अविवाहित रहना चाहें तब तो राष्ट्र को भारी हानि पहुँचेगी और समाज में दुराचार बढ़ जाने की सम्भावना हो जायेगी। परन्तु मैं तो इसके लिए भी तैयार हूँ। मैं उसको वरूँगा जो मुझे सबसे कम चाहती है। जो मुझे इतना चाहती हैं कि मेरी दूसरी और तीसरी पत्नी बनकर भी रहना चाहेंगी, वे भी मेरी पत्नी बन सकेंगी।"

महाराज इस बात पर हँस पड़े। मैलन्द युक्ति में परास्त हो चुप कर गया। मल्लिका देख रही थी कि भानुमित्र का पूर्ण व्यवहार उसके उसे न वरने से उत्पन्न हुआ है। इससे वह समझती थी कि किसी अति सुन्दर कन्या से विवाह कर देना ही इस मन की विकृत अवस्था को सुधार सकता है। इससे उसने पुनः प्रयत्न किया और भानुमित्र से पूछा, "मान लो मित्र! तुम्हें स्वयं वरने का अवसर दिया जावे तो तुम राका के विषय में क्या विचार रखते हो?"

"महारानी जी! यह मैं तब तक नहीं बताऊँगा जब तक मैं यह न जान लूँ कि राका का लगाव मुझसे कितना प्रबल है। यदि यह बहुत अधिक हुआ तो मैं अपनी दूसरी प्रेमिकाओं में से किसी को वरना उचित समझूँगा।"

महाराज ने बात बदल दी, "मित्र! तुम कब जा रहे हो वैशाली?"

"महाराज! जब अवकाश दें।"

"तुम यहाँ के महामात्य हो, मित्र! तुम्हारा उत्तरदायित्व मुझसे भी अधिक है। इससे अपने अवकाश के तुम स्वामी हो।"

"तो महाराज! मैं दो दिन में जाना चाहूँगा।"

"कब तक लौटोगे?"

"दो दिन जाने में, दो दिन आने में और एक सप्ताह वहाँ। इस एक सप्ताह में एक दिन अवध के काम में लगेगा। वैशाली के सेठों से गणपति देवधर्मा के सम्मुख ऋण चुकाने की बात करनी है। मैं समझता हूँ कि अब हम ऋण दे डालें तो अच्छा ही है।"

"तो जाने से पूर्व तुम राका से बातचीत करना पसन्द नहीं करोगे, मित्र ?" मल्लिका ने पूछा।

"यदि ऐसा हो सके तो मैं अपना सौभाग्य मानूँगा।"

मल्लिका ने प्रश्न-भरी दृष्टि से महाराज की ओर देखा। महाराज ने इस योजना को स्वीकार किया। इस पर मल्लिका उद्यान से महल की ओर लौट गई। इस अवसर में मैलन्द पंडित ने भानुमित्र की ओर भयभीत दृष्टि से देखा। भानुमित्र उसके भावों को समझ गया और कहने लगा, "पंडित जी! अभी आपकी लड़की छोटी आयु की है। आपकी इच्छा के विरुद्ध वह किसी को वर नहीं सकती। इससे आप भयभीत न हों। मैं वही करूँगा, जो आपके और राका देवी के हित की बात होगी। मैं सत्य और स्पष्ट बात उसके सम्मुख रख दूँगा। इसके उपरान्त आप स्वतन्त्र हैं। जैसा आपको हितकर सिद्ध हो करें।"

इस बात पर भी मैलन्द की चिन्ता मिटी नहीं। महाराज मन में सोच रहे थे यदि भानुमित्र विवाह-बन्धन से अवध के साथ सम्बद्ध हो जाये तो अवध का भला होगा। इस अर्थ वे भानुमित्र की राका से भेंट कराने पर तैयार हो गए थे।

मल्लिका राका की बाँह पकड़कर उद्यान में घसीट कर ले आई। राका का मुख लज्जा से लाल हो रहा था और वह आँखें नीची किये हुए मल्लिका के साथ-साथ चली आ रही थी। जब मल्लिका ने उसे भानुमित्र के सम्मुख लाकर खड़ा किया तो राका ने अपनी आँखें जोर से मींच ली थीं। उसे इस प्रकार खड़ा देख सब हँस पड़े। कुछ स्त्रियाँ दूर उद्यान के एक कोने में खड़ी पेड़ों के पीछे छिप यह नाटक देख रही थीं।

भानुमित्र ने कहा, "महारानी जी! यह तो बेचारी निरीह बालिका है।

इसको बलिदान का बकरा किस निमित्त बनाया जा रहा है ?"

"प्रश्न तो यह है कि यह बकरा देवता को स्वीकार है या नहीं ?"

भानुमित्र इस सुन्दर बालिका-मात्र को सामने खड़ा देख मन-ही-मन मृदुला से, जो इससे कई गुणा अधिक चतुर थी, तुलना कर रहा था। मृदुला इससे अधिक चतुर, शिक्षित, सुन्दर और पत्नी बनने के योग्य प्रतीत होती थी। इस पर भी मृदुला, जिस वातावरण में रहती थी, उससे वह एक अच्छा साथिन हो सकेगी, सन्देह हो रहा था। इस विचार के आते ही वह बोला, "महाराज! जहाँ तक रूप-लावण्य का सम्बन्ध है, राका-देवी गृह-लक्ष्मी बनने योग्य हैं। जहाँ तक इनके मानसिक विकास का सम्बन्ध है मैं इतनी जल्दी निर्णय नहीं कर सकता। यदि देवी मुझे अपने को जानने का अवसर दें, तो आशा करता हूँ कि शीघ्र ही मैं अपनी सम्मति इनके विषय में बना सकूँगा। जहाँ तक परिवार का सम्बन्ध है मैं मैलन्द जी के परिवार में सम्मिलित किए जाने से प्रतिष्ठित हुआ मानूँगा।"

"तब तो बात बन गई।" मल्लिका ने राका को गले से लगा मुख चूमकर कहा, "जाओ रानी! जाओ खेलो-कूदो। प्रारम्भिक जीत तुम्हारी हो गई है।"

राका मल्लिका की भुजाओं से छूटी तो उधर भागी, जहाँ उसकी सखियाँ छिपकर देख रही थीं।

: ४ :

अयोध्या में अवध के महामात्य पर चलाये गए अभियोग की प्रति-ध्वनि वैशाली में भी पहुँची। महाराज अवध का एक पत्र आया था, जिसमें वैशाली गणपति से निवेदन किया गया था कि अवध राज्य-कोष से चुराया धन लक्ष्मीदेवी पंथागार के प्रबन्धक भूधर के पास पहुँचा है। उसकी तलाशी लेकर यदि धन प्राप्त हो तो अवध को वापस दिया जावे।

यह एक अनोखी माँग थी। देवधर्मा अपने अधिकार से वैशाली के एक नागरिक को एक ऐसे अपराध के लिए, जो वैशाली से बाहर घटा हो, पकड़

अथवा दण्ड नहीं दे सकता था। इससे विवश हो उसने मन्त्री-मण्डल की बैठक बुलाई। उस समय तक भूधर के घर के चारों ओर मध्य रात्रि के समय सैनिकों से घेरा डलवा दिया। मन्त्रीमण्डल अवध-नरेश की इस माँग को स्वीकार न करता यदि देवधर्मा इस बात पर गणपति पद से त्याग-पत्र दे देने की धमकी न देता। देवधर्मा का कहना था, "यह ठीक है कि वैशाली और अवध का राज्य-प्रबन्ध एक-दूसरे से स्वतन्त्र है, परन्तु हम धर्म और संस्कृति के नाते एक हैं। हम पूर्ण भारत के लोग चोरी करने को पाप मानते हैं। इससे चोर ने कहीं भी चोरी की हो चोर है और पापी है। एक देश में पापी पाप के धन से फूले-फले तो उस देश का सत्यानाश हो जावेगा।" युक्ति से सब मानते थे कि इस बात को कोई भी वैशाली वाला पसन्द नहीं करता, परन्तु झूठी मान-मर्यादा अवध-नरेश की माँग स्वीकार करने में बाधा बन रही थी।

अन्त में गणपति ने कहा, "मैं इस बात का ध्यान कर काँप उठता हूँ कि हमारे पड़ोस के राज्य के लोग हमारे राज्य में कोई पाप-कर्म कर भागकर यहाँ से चले जावें और हम उनको दण्ड न दिलवा सकें। मान लो कल कोई अयोध्या का दुश्चरित्र व्यक्ति यहाँ से किसी लड़की का अपहरण कर ले जाता है, तो उस लड़की को छुड़ाने के दो ही उपाय हैं। एक तो हम अवध-नरेश को लिखें कि लड़की वापस दिलाई जावे और अपराधी को दंड दिया जावे, या हम एक लड़की के लिए अवध से युद्ध ठान लें। पहला मार्ग ठीक और दूसरे के अनुकरण करने से पूर्व करना आवश्यक नहीं क्या?

"मैं समझता हूँ कि भूधर को पकड़कर उसकी तलाशी लेनी चाहिए और अवध के अभियोग चलाने वालों को वैशाली के न्यायालय में आकर भूधर को दोषी सिद्ध करने का अवसर देना चाहिए।

"यदि मन्त्रि-मण्डल इस न्याय की प्रतिष्ठा स्थापित करने में मेरी सहायता नहीं करता तो मैं इसी समय गणपति के पद से त्याग-पत्र दे दूँगा और कल संसद में यह सब बात खोलकर रख दूँगा।"

इससे मंत्री-गण जो भूधर को बचाना चाहते थे डर गये। वे जानते

थे कि गणपति की बात संसद् मान जावेगी और तब उनको त्याग-पत्र देना पड़ेगा। इस पर भी एक ने पूछा, "यदि न्यायालय में भूधर के विरुद्ध अभियोग सिद्ध न हुआ तो ?"

"तो भूधर को मुक्त कर दिया जावेगा और जो मान-हानि भूधर की हुई है उसके लिए अवध-राज से दण्ड माँगा जावेगा। इस प्रकार सबसे बड़ी बात यह सिद्ध होगी कि हम भारतीय संस्कृति तथा ऐक्य की रक्षा करने के लिए निस्वार्थ प्रयत्न कर रहे हैं।"

"इस न्यायालय का न्यायाधीश कौन होगा ?"

"वैशाली का कोई विद्वान् धर्मशास्त्री होगा।"

इसके पश्चात् आपत्ति करने को स्थान नहीं रहा। मन्त्री-मण्डल में अर्थ-मन्त्री एक सेट्ठी था। उसने मन्त्री-मण्डल से निकलते ही अपने सेवक को भूधर के पास वैशाली छोड़ तुरन्त भाग जाने की सम्मति भेज दी। यह सम्मति उसने लिखकर भेजी थी।

जब अर्थ-मन्त्री का सेवक भूधर के गृह पर पहुँचा तो देवधर्मा द्वारा नियुक्त सैनिकों से पकड़ लिया गया। इसके कुछ ही पीछे भूधर को बन्दी करने का और घर की तलाशी लेने का आदेश ले नगर-पालक वहाँ जा पहुँचा। अर्थ-मन्त्री का सेवक उसके हवाले कर दिया गया।

नगर-पालक को जब यह पता चला कि वह अर्थ-मन्त्री का सेवक है और उसके पास अर्थ-मन्त्री की चिट्ठी निकली है, जिसमें लिखा था कि भूधर वैशाली छोड़ भाग जावे, तो गणपति से इस विषय पर आदेश माँगा गया। रात्रि के तीसरे प्रहर गणपति को जगाकर इस विषय की सूचना दी गई। गणपति ने निस्संकोच आज्ञा दे दी कि भूधर के विरुद्ध तो आज्ञा-पालन की ही जाए साथ ही इस सेवक को पृथक् बन्दी कर लिया जावे और अर्थ-मन्त्री को अपने महल में ही बन्दी कर लिया जावे।

भूधर के गृह से दस लाख स्वर्ण-मुद्रायें निकलीं, जिन पर अवध-राज्य की मुहर लगी थी। फिर कुछ ऐसे रत्नजड़ित भूषण निकले जिनके विषय में अवध-राज्य का दावा था कि उनके हैं।

गणपति ने अवध-राज्य को लिख दिया कि भूधर पर वैशाली में अभियोग चलाया जावेगा। अवध-राज्य को इस स्थान पर अपने प्रतिनिधि भेज अभियोग सिद्ध करना चाहिए अन्यथा भूधर का अधिकार होगा कि अपनी मान-हानि का प्रतिकार अवध से प्राप्त करे। वैशाली-राज्य अपने प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की रक्षा के लिए सब-कुछ करने को तैयार रहता है।

भूधर पर चलाने वाले अभियोग से अधिक गम्भीर बात अर्थ-मन्त्री की मन्त्री-मण्डल की गुप्त बात को प्रकट करना बन गई। नगर-भर में अर्थ-मन्त्री के बन्दी किये जाने की बात दिन चढ़ते तक फैल गई और स्थान-स्थान पर इस बात पर चर्चा होने लगी। कुछ लोग कहने लगे कि गणपति को यह अनधिकार चेष्टा है। दूसरे कहते थे कि यह प्रश्न संसद् में उठेगा तब तक धैर्य करना चाहिए। कुछ मनचले एकत्रित हो गणपति के महल के सम्मुख प्रदर्शन करने भी जा पहुँचे।

कई सहस्र सेठी-पुत्र गणपति-महल के सम्मुख जोर-जोर से पुकारने लगे। गणपति त्याग-पत्र दें। अर्थ-मन्त्री निर्दोष है।

जब यह प्रदर्शन हो रहा था तो गणपति अपने परिवार के साथ अल्पाहार कर रहा था। वह लोगों की गर्जना सुन समझ गया कि क्या है। उसकी स्त्री और अन्य लोग भयभीत हो उसका मुख देखने लगे। गणपति ने सबको कहा, "भीरु मत बनो। अवध में क्रान्ति होती-होती भानुमित्र की बुद्धि से बच गई है और यहाँ यदि दृढ़ता से काम न लिया गया तो क्रान्ति हो जावेगी।"

गणपति ने समीप लटके घड़ियाल को बजाया। एक प्रतिहार भीतर आ गया। उसे गणपति ने कहा, "महल के संरक्षक को बुलाओ।"

एक हृष्ट-पुष्ट, पाँच हाथ लम्बा, अकड़ी मूछों वाला सैनिक उपस्थित हो आज्ञा माँगने लगा।

गणपति ने कहा, "अपने सैनिकों को कहो कि भीड़ में घुस जावें और ध्यान रखें कि कोई किसी प्रकार से उच्छृङ्खलता न करे। तुम स्वयं महल

के चबूतरे पर खड़े होकर कहो, 'गणपति अभी यहाँ आवेंगे और आपकी बात सुनेंगे। तब तक आप शान्ति से खड़े रहें'।"

सैनिक आज्ञा-पालन करने चला गया। गणपति पुनः आहार करने लगा। वह अपनी स्त्री से कह रहा था, "अवध की महारानी मल्लिका तक्षशिला में भानुमित्र की सहपाठिन थी और दोनों का विवाह होना निश्चित था। मल्लिका ने अवध-नरेश से विवाह कर लिया तो भानुमित्र उससे घृणा करने लगा। बहुत कठिनाई से उनके राज्य में काम करने पर तैयार हुआ है। हाँ, एक बात उसने कही है कि अब उसकी कोई प्रेमिका है और वह उसको मल्लिका पर उपमा देता है।"

इस कथा से देवधर्मा की स्त्री सुनीला का ध्यान प्रभा की ओर चला गया और वह भानुमित्र के पुनः वैशाली आने की आशा करने लगी।

भोजन समाप्त कर देवधर्मा उठा और महल के बाहर ऊँचे चबूतरे पर जाकर खड़ा हो गया। वह अकेला था। केवल महल का एक संरक्षक उसके समीप कुछ पीछे हटकर खड़ा था।

गणपति को खड़ा देख लोगों ने घोषणा की, "अर्थ-मंत्री निर्दोष है।"

गणपति ने हाथ ऊँचा कर लोगों को चुप होने का संकेत किया। लोग चुप हो गए। गणपति ने कहा, "तुम लोग कहते हो, अर्थ-मन्त्री निर्दोष है। मैं पूछता हूँ तुम न्यायकर्ता हो? प्रजागण! वैशाली के न्याय-विधान में यह बात स्पष्ट लिखी है कि किसी भी व्यक्ति को बिना उसके विरुद्ध दोष सिद्ध किये दण्ड नहीं दिया जायगा। परन्तु मैं पूछता हूँ कि आप लोग, जिनको यह भी विदित नहीं कि अर्थ-मन्त्री पर क्या दोष लगाया गया है, कैसे कह सकते हैं कि वह निर्दोष है? मैं उसको अपराधी नहीं कहता। मैंने तो उसे न्यायकर्ता के अधीन कर दिया है। क्या आपको न्यायाधिकारी पर भी विश्वास नहीं रहा? देखो, नगर के सेठियों से मेरा निवेदन है कि अर्थ-मन्त्री को इस कारण बन्दी किया गया है कि मेरे विचार में उसने भारी अपराध किया है। इसलिए नहीं कि वह वैश्य वर्ण का है। इससे आप लोग भी यह विचार छोड़कर कि वह वैश्य है, उसके दोषों की न्यायालय में

जाँच होने दो...''

इस समय एक कटार सर्र करती हुई गणपति के कान के पास से निकल पीछे दीवार में जा लगी। दीवार पत्थर की थी। इससे कटार खन्न कर उससे टकराई और भूमि पर गिर गई। कटार फेंकने वाले को सैनिकों ने पकड़ लिया। गणपति अपने स्थान से विचलित नहीं हुआ। उसने वैसे ही गम्भीर भाव रखते हुए कहा, ''इस घातक को बन्दी कर न्यायालय में उपस्थित करो।'' इसके पश्चात् उसने लोगों को कहा, ''जो कुछ तुम लोगों ने अभी किया है, यह यहाँ दुर्व्यवस्था उत्पन्न करने वाला है। मैं आप लोगों को सचेत कर देना चाहता हूँ कि यदि वैशाली में न्याय करना जनता के हाथ में हो गया तो सबसे अधिक हानि धनी-मानी सेठों की होगी। नगर में न तो कोई महल खड़ा रह जाएगा और न ही किसी की बहू-बेटी सुरक्षित रहेगी।

''आप लोग अब शान्तिपूर्वक अपने-अपने घर लौट जावें। जो लोग जानते हैं कि अर्थ-मन्त्री ने वह अपराध नहीं किया, जो करने का उस पर सन्देह है, न्यायालय में जाकर प्रमाण दें। यहाँ उपद्रव करने से तो वे स्वयं अपराधी बन रहे हैं।''

इस भर्त्सना से लोग वापस होने लग गए। गणपति नित्य की भाँति अपने कार्य में लग गया।

भूधर पर चलाये अभियोग में नगर के बीसियों लोग इस अपराध में पकड़ लिये गए। वे अवध के रिपुदमन को अवध-नरेश बनाने में सहायता कर रहे थे। यह बात अपराध नहीं थी, क्योंकि यह वैशाली के, राज्य के विरुद्ध नहीं थी; परन्तु धन जो उनको मिल रहा था चोरी का था। न्याय-कर्ता ने स्पष्ट कह दिया कि यदि ये लोग अपने पास से धन लेकर अथवा एकत्रित कर राज्य पलटने का यत्न करते तो समझा जाता कि वे परोपकार का कार्य कर रहे हैं। परन्तु एक राज्य का चोरी किया धन लेकर उसी राज्य को पलटने का यत्न करना एक घृणित काम है। उनको दो-दो वर्ष के कारा-वास का दंड दिया गया।

परन्तु गणपति ने अपने अधिकार से उन लोगों का, जो चोरी का लिया धन वापस कर दें, दंड क्षमा कर दिया।

भूधर इस षड्यंत्र का नेता था, इस पर भी वह धन देकर छूट गया।

अर्थ-मंत्री की समस्या अधिक गम्भीर थी। उसने तो वैशाली का नियम भंग किया था। मंत्री-मंडल के निर्णय को क्रियान्वित होने से पूर्व प्रचारित कर देना, राज्य को हानि पहुँचाने के यत्न के समान था। अर्थ-मंत्री का उत्तर यह था कि भूधर का अपराध कुछ भारी नहीं था। इससे उसको बचाने का यत्न भी कुछ भारी अपराध नहीं। परन्तु न्यायाधीश ने इस उत्तर को व्यर्थ समझा। न्यायाधीश का यह कहना था कि किसी के अपराध का छोटा अथवा बड़ापन तो न्यायाधीश ही जान सकता है। न्यायाधीश के अतिरिक्त तो कोई नहीं कह सकता कि अपराधी को छोड़ना चाहिए अथवा फाँसी लगा देनी चाहिये। साथ ही अर्थ-मंत्री पर तो मंत्री-मंडल के रहस्य को खोलने का अभियोग है। इसका किसी दूसरे के छोटे-बड़े अपराध से कोई सम्बन्ध नहीं।

अर्थ-मंत्री को देश-निर्वासन का दंड दिया गया। उसकी सम्पत्ति राज्याधिकार में कर ली गई।

(५)

जब भानुमित्र वैशाली आया तो सब झगड़े शान्त हो चुके थे और नगर में कार्य शान्तिपूर्वक चल रहा था। उसके आने का प्रयोजन देवधर्मा से कितने ही आवश्यक विषयों में परामर्श लेना था। इनमें सबसे आवश्यक बात थी मगध तथा अन्य पड़ोसी राज्यों से सन्धि-चर्चा।

भानुमित्र और देवधर्मा नगर-वधू के महल के एक आगार में सर्वथा अकेले बैठे बातें कर रहे थे। भानुमित्र कह रहा था, "गांधार एक गण-राज्य था, वह पारस ने हड़प लिया है। परिणाम यह हुआ कि भारत का द्वार विदेशियों के हाथ में चला गया है। पाञ्चाल और वाहिक देश तो पारसियों के आक्रमणों से आक्रान्त हो उठे हैं। इस कारण देश की रक्षा

का भार अधिक हो गया है। मेरी योजना है कि देश में एक सुदृढ़ राज्य-संघ स्थापित कर दिया जावे, अन्यथा किसी समय कोई भी विदेशी देश में आकर हमारी धन-दौलत को लूट लेगा, हमारे स्त्री-धन को भ्रष्ट और व्यर्थ कर देगा और हमारी संस्कृति को बिगाड़ देगा।"

देवधर्मा भानुमित्र की बात को समझता था; परन्तु इसकी कठिनाई को भी जानता था। उसने कहा, "भारत की वर्तमान स्थिति में यह असम्भव है।"

"परन्तु यह अत्यावश्यक भी है।"

"यह मैं मानता हूँ वत्स! परन्तु कभी आवश्यक और हितकर बातें भी हो नहीं सकतीं। मैं वैशाली की बात ही बताता हूँ। यदि मेरे अकेले की बात होती तो अवध और वैशाली की सन्धि सुगम हो जाती। परन्तु ये सब बातें मैं संसद् में नहीं रख सकता। मंत्री-मंडल में भी यह बात मैं मनवा लूँगा परन्तु डरा-धमकाकर ही तो। वे अपनी इच्छा से यह नहीं करेंगे और यदि मैं कल गणपति न रहा तो यह सन्धि निरर्थक हो जावेगी। साथ ही यह भी समझ लो कि दूसरे गणराज्यों में मेरे-जैसा अनुकूल गणपति मिलना सुगम नहीं।"

"तो फिर इसका क्या उपाय है, आर्य?"

"मैं जब अपने पूर्ण प्रयत्नों को विफल जाता देखता हूँ तो भारत की समस्या का एक ही सुझाव पाता हूँ और वह है यहाँ एक साम्राज्य स्थापित करना। यदि सम्भव होता तो मैं मगध के महाराज से अश्वमेध यज्ञ करने को कहता और उसका गांधार से लेकर अँग देश तक एक साम्राज्य बना देता। परन्तु मैं बूढ़ा हो रहा हूँ और मगध सम्राट् भी न्याय का राज्य स्थापित करने में मेरी बात मानेगा या नहीं, कह नहीं सकता। कई वर्ष हुए यूनान, मिश्र और ईरान के सौदागरों ने पाटलीपुत्र में क्रीत-दासों का व्यापार खोल दिया था। मैंने मगध-राज्य को इसको वर्जित कर देने का आग्रह किया था। उन्होंने नहीं माना। यूनान और ईरान की सुन्दरियां राजगृही में बिकती महाराज को पसन्द आईं। कई सौ तो महाराज ने स्वयं खरीद लीं और उनको अपने परिवार के लोगों को भेंट कर दिया। परिणाम में दासों का

क्रय-विक्रय वैशाली में भी आरम्भ हो गया। मुझे संसद से इस विषय में भी नियम बनवाने के लिये भारी यत्न करना पड़ा। बहुत कठिनाई से इसे मना करवाने में सफल हुआ था।

"विदेशी लोग वहाँ से स्त्रियाँ लाते थे। उन्हें यहाँ बेचकर प्राप्त किये धन से यहाँ का बना माल क्रय कर ले जाते थे। जानते हो परिणाम क्या हुआ है? मगध-देश निर्धन हो रहा है। वहाँ व्यभिचार में वृद्धि हो रही है। इस पर भी मगध-नरेश इस व्यापार को बन्द नहीं कर सका। अब तो स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि कई मागधी भी यही व्यापार करने लगे हैं।"

भानुमित्र ने कहा, "हमारे यहाँ तो दासों के क्रिय-विक्रय का विचार भी नहीं उठ सकता।"

"वह तो है ही। आर्य देशों में मनुष्य बेचे और खरीदे नहीं जाते। परन्तु यह तो तुम जानते हो कि मगध में आर्य सभ्यता का नाम-मात्र भी नहीं रहा। बौद्ध मत का अर्थ है प्राचीन आर्य आचार-व्यवहार को दूषित मानना। जब मनुष्य प्राचीन प्रथा को एकदम छोड़ स्वयमेव नवीन प्रथा निर्माण करता है तो भूल कर जानी सुगम है। वह पहले किये परीक्षणों के लाभ उठाने से वंचित रह जाता है।"

भानुमित्र को देवधर्मा की उक्त विवेचना सुन बहुत निराशा हुई। उसके उदास मुख को देख देवधर्मा ने फिर कहा, "परन्तु मैं समझता हूँ कि निराश होने में कोई कारण नहीं है। हमें दो बातें करनी चाहियें। एक तो ब्राह्मण और क्षत्रिय कुमारों की उचित शिक्षा का प्रबन्ध करना है। उनको केवल धर्म का ज्ञान ही प्राप्त नहीं कराना परन्तु लोगों पर, जिन के मनों में बौद्ध तथा विदेशी विचारों ने दूषित संस्कार उत्पन्न कर दिये हैं, राज्य करने की योग्यता उत्पन्न करना है।

"दूसरी बात यह है कि भारत खण्ड में एक ही संस्कृति का प्रसार होना चाहिए, जिससे एक-दूसरे के सुख-दुख में सब सम्मिलित हो सकें। राज्यों की संख्या भी कम हो जानी चाहिए। छोटे राज्यों में परस्पर प्रति-

स्पर्धा देश की रक्षा में बाधक होगी। परस्पर रक्षा-संधि होने पर भी भिन्न देशों की सेनाएँ एक सूत्र में बँध कर युद्ध नहीं कर सकतीं। एक देश की सेना दूसरे देश के सेनापति के आधीन नहीं लड़ती।"

भानुमित्र ने अपना अनुभव वर्णन करते हुए कहा, "मैंने इस विषय पर विचार किया है। परन्तु बहुत से राज्यों का एकीकरण करना भी कठिन हो गया है। छोटे-छोटे गणराज्यों को बलपूर्वक विजय कर अपने में सम्मिलित करना इतना सुगम नहीं जितना यह कहना सुगम है। विदेह राज्य के लोगों में मैंने अपने गुप्तचर भेज, उनकी इच्छा जानने का यत्न किया था। वहाँ के लोग इतने आत्माभिमानी हैं कि वे अपने देश को अवध के साथ सम्मिलित करना तो दूर रहा, वहाँ अपना दूत भेजना भी पसन्द नहीं करते।"

"यह समस्या तो है ही। इसको सुलझाने में ही योग्यता का परिचय मिलेगा। तुम युवक हो। तुम्हारी बुद्धि अभी निर्मल और तीव्र है। तुम्हें इस बात में यत्न करना चाहिए। या तो सब राज्यों का एक संघ बन जाए और उस संघ का अधिपति गणेश निर्वाचित किया जाए। यह गणेश सब राज्यों की सेनाओं का महा सेनापति माना जाए।

"यदि यह सम्भव न हो तो तुम अवध-राज्य की सेना को ऐसा सुदृढ़ और शस्त्र-अस्त्र-युक्त बनाओ कि महाराज अवध भारत के सम्राट् बन सकें। अवध की सेनाओं की छावनियाँ एक ओर कामरूप में हों, दूसरी ओर गान्धार में। दक्षिण में कृष्णा और उत्तर में काश्मीर इस साम्राज्य की सीमाएँ बन सकें। तब ही उन्नत हो रहे ईरान और यूनान से भारत की रक्षा की जा सकेगी।"

बातों और योजनाओं में बहुत समय निकल गया। अर्धरात्रि का घण्टा बजा और देवधर्मा उठ बैठा। पूछने लगा, "घर पर चलोगे?"

"मैं पंथागार में गुप्त रूप से ठहरा हूँ। प्रातःकाल माताजी के दर्शन करूँगा।"

देवधर्मा उठकर नगर-वधू के महल से निकल गया। भानुमित्र की इच्छा थी कि मृदुला से भेंट करे। इससे वह अभी सोच ही रहा था कि

किस प्रकार अपने वैशाली आने की सूचना दे कि चम्पा एक सोने के थाल में एक पत्र लेकर आई और झुककर नमस्कार कर, थाल भानुमित्र के आगे कर खड़ी हो गई। भानुमित्र ने पत्र पढ़ा।

लिखा था, "दासी अपने भोजनागार में आपकी प्रतीक्षा कर रही है। मृदुला।"

भानुमित्र ने चम्पा के मुख की ओर देखा तो वह टेढ़ी दृष्टि से देखते हुए मुस्करा रही थी। भानुमित्र ने पूछा, "क्या बात है, चम्पा?"

"स्वामिन की अपार कृपा है।"

"किस पर?" भानुमित्र का मुख खिल उठा।

"कोई हैं, जिनके स्वप्न वे पिछले छः मास से नित्य देखती हैं।"

"कौन ऐसा भाग्यशाली है, प्रिये!"

"बताने की आज्ञा नहीं, आर्य!"

"तुम बहुत चञ्चल हो, चम्पा! मैं पहले दिन का, इस महल का, अनुभव भूल नहीं सकता। क्या अब भी वह खेल चलता है?"

"कौन खेल, आर्य?"

"तो भूल गई हो? शायद वह भी स्वप्न था। अच्छी बात चलो, मार्ग-प्रदर्शन करो।"

चम्पा आगार के बाहर निकल ऊपर छत पर जाने वाली सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। भानुमित्र उसके साथ था। एकाएक चम्पा ने खड़े हो पूछा, "तो आर्य भी स्वप्न देखा करते हैं?"

"हाँ, प्रिये!"

"किसके?"

"एक है, जो स्वर्ग-द्वार पर खड़ी भोले-भाले यात्रियों को उंगली के संकेत से बुलाकर द्वार में फँसाती है और दीप-शिखा पर भँवरे की भाँति उसके पंख झुलस जाने पर उठवा नाली के किनारे फेंकवा देती है।"

"बहुत दुष्ट है वह?"

"हाँ। इस पर भी स्वप्नों में आती है।"

"क्यों ?"

"बहुत सुन्दर है वह ।"

"तब तो और भी बुरी है, आर्य ! उसे दण्ड देना चाहिए ।"

"यह सम्भव नहीं ।" इस पर पुनः दोनों सीढ़ियाँ चढ़ने लगे थे। भानुमित्र चम्पा के पीछे-पीछे था और उसका मुख न देख सकने के कारण उसके मनोद्गारों को समझ नहीं सका था। सीढ़ियाँ चढ़ चम्पा खड़ी हो गई। भानुमित्र उसके साथ हो प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। चम्पा ने पूछा, "किसी दुष्ट स्त्री को दण्ड देना सम्भव क्यों नहीं ?"

भानुमित्र ने लम्बी साँस खींचकर कहा, "जानना चाहती हो, चम्पा ? तो सुनो। स्त्री संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूति है। इसके सब अवगुण उसके एक गुण कोमलता में छुप जाते हैं ।"

"आप बहुत दयालु हैं, भद्र !"

"मैं एक लड़की से बाल्यकाल से प्रेम करता था। जब वह बड़ी हुई तो किसी दूसरे से विवाह कर बैठी। एक समय उसे मेरी सहायता की आवश्यकता पड़ी तो उसने ऐसा विनीत भाव बनाया कि मैं न नहीं कर सका। वह मेरी कृतज्ञ है, परन्तु भार्या दूसरे की है ।"

चम्पा हँस पड़ी। इस समय वे पुनः चल पड़े। चलते हुए भानुमित्र ने पूछा, "क्यों हँसी हो ?"

चम्पा ने चलते-चलते पूछा, "क्या कृतज्ञ होने से भार्या होना आवश्यक है अथवा क्या भार्या होने से कृतज्ञ होना होता है ?"

भानुमित्र सोच रहा था कि यह स्त्री दार्शनिकों की भाँति बातें करने लगी है। यह कोई विदुषी स्त्री प्रतीत होती है। अतएव वह उसके जीवन की बात पूछना चाहता था, परन्तु इस समय वे भोजनालय के बाहर जा पहुँचे थे। दोनों भीतर चले गए।

: ६ :

मृदुला एक चौकी पर भोजन करने के लिए तैयार बैठी थी। एक

और चौकी और उसके सम्मुख थाल में लगा भोजन रखा था। मृदुला ने कहा, "आइए, शीघ्रता कीजिये।"

भानुमित्र ने तुरन्त बगल के आगार में जा हाथ-पाँव और मुख धोया और आकर चौकी पर बैठ गया। भोजन करते हुए उसने पूछा, "आपको कैसे मालूम हुआ है कि मैं आया हूँ?"

"आज प्रातः से मेरी बाईं आँख फड़क रही थी और प्रातःकाल ही मुंडेर पर बैठा कौआ काँय-काँय कर, मुझे किसी शुभ समाचार के आगमन की सूचना दे रहा था। इस कारण मैं सायंकाल से चम्पा को भेज-भेजकर आपके आने की खबर ले रही थी। जब आप आये तो मैं सेठी-जनों में बैठी संगीत कर रही थी। इस कारण मैं उसी समय आपके दर्शन नहीं कर सकी। पश्चात् गणपति जी के साथ आप बातचीत कर रहे थे। ज्यूँ ही आप अवकाश पाये कि मैंने आपको बुला भेजा। बताइये, इतने दिन तक आपने स्मरण भी नहीं किया। कोई चिट्ठी-पत्री ही भेज दी होती।"

"देवी! मैं क्षमा चाहता हूँ। वास्तव में मैं अयोध्या में ऐसे काम में फँस गया था कि मुझे इस ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला। तीन दिन हुए, एक ऐसी घटना हुई, जिससे आपका स्मरण हो जाना स्वाभाविक ही था। सो कल अयोध्या से चल आज सायंकाल यहाँ आ पहुँचा और वस्त्र बदल सीधा इधर चला आया हूँ। अभी द्वार के भीतर पग ही रखा था कि गणपति जी से भेंट हो गई और फिर उनसे बात अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि मध्यरात्रि का घण्टा बजा। गणपति जी गए तो आपकी आज्ञा मिली।"

भानुमित्र ने देखा कि मृदुला सर्वथा सादा भोजन कर रही है। दाल भाजी शाक चावल ही थे। इसके विपरीत उसके सम्मुख मांस-मछली और फिर जल के स्थान माधवी रखी थी। रोटी, पुलाव और भाँति-भाँति के शाक थे। भानुमित्र ने दोनों थालों की तुलना की तो पूछा, "इतना अल्पाहार करती हैं आप?"

"हाँ, मेरा इतने से निर्वाह हो जाता है।"

"परन्तु मैं तो आज जल पिऊँगा। एक बार की गई भूल से शिक्षा ग्रहण कर चुका हूँ।"

मृदुला हँस पड़ी। "मैं आपको अपने रथ में बैठाकर पंथागार में भिजवा दूँगी।"

"फिर भी मैं अपने जीवन से इतना दुःखी नहीं हुआ हूँ कि इसे भूलने की आवश्यकता अनुभव करूँ।"

"तो आप बड़े भाग्यशाली हैं।"

"तो क्या, मृदुला देवी! आप इस उत्तम भाग्य से वंचित हैं?"

"नहीं! जब से आपके दर्शन हुए हैं, मेरा जीवन इतना मधुर हो उठा है कि मैं उसके क्षण-क्षण का स्वाद लेती हूँ। इसी से मुझे सुरापान की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

भानुमित्र ने मृदुला को देखा। उसे उसके मुख पर अलौकिक सौन्दर्य की छटा दिखाई दी। इस समय उसे राका की याद आई। राका सुन्दर अवश्य थी परन्तु उसके व्यवहार में बचपना था। इधर मृदुला एक सुसंस्कृत लड़की प्रतीत होती थी। राका को देख कौतूहल उत्पन्न होता था और मृदुला को देखने से उन्माद।

भानुमित्र भोजन करते हुए मन-ही-मन विचार कर रहा था कि राका से विवाह करने पर भी वह मृदुला को न नहीं कर सकेगा।

मृदुला भी गम्भीर विचार में पड़ी हुई अपने भाग्य-चक्र को समझने का यत्न कर रही थी। एक अविवाहित राजकुमारी की लड़की, जिसे मृत्यु-दण्ड दिया जा चुका था, एक सेवक की अनुकम्पा से बचकर वैशाली की नगर-वधू बन गई। फिर अनेकों राजा, महाराजाओं, सेट्ठियों के प्रेम की भाजन हो एक अपरिचित युवक की हँसी उड़ाती हुई, उसके प्रेम में फँस गई। विचित्र समस्या था उसका जीवन।

इन्हीं विचारों में दोनों ने भोजन समाप्त किया। वहाँ से उठ, हाथ धो कुल्ला कर भोजनालय से बाहर आ गये। भानुमित्र छः मास से महामात्य के पद पर तथा प्रसन्न और सन्तुष्ट रहने से शरीर में भर गया था। उसका मुख

कुछ गोलाई पर आ गया था और कद में भी कुछ लम्बा हो गया था। इससे मृदुला अपने भावी पति को देख मन में उल्लास अनुभव कर रही थी।

भोजनालय से निकल उसने कहा, "आर्य! इधर आइयेगा!"

: ७ :

भानुमित्र मृदुला के पीछे-पीछे चल पड़ा। वह उसे एक बैठक-गृह में ले गई। वहाँ भूमि पर बिछे बहुत ही कोमल कालीन पर दोनों बैठ गये। एक दासी चाँदी की थाली में पान लगाकर ले आई। मृदुला ने थाली पकड़ भानुमित्र के सम्मुख कर कहा 'लीजिये'। भानुमित्र ने पान लेते हुए पूछा, "आप किस समय सोती हैं?"

"मध्यरात्रि के समय तो भोजन होता है। एक पहर रात रहने पर सोती हूँ। एक पहर दिन गए पर उठती हूँ। शौचादि से निवृत्त हो संगीत और नृत्य का अभ्यास होता है। पश्चात् मध्याह्न का भोजन होता है। इसके उपरान्त कुछ विश्राम करती हूँ और फिर सायंकाल के प्रबन्ध को देखने लगती हूँ। लोग खाते हैं, पीते हैं, दासियों से कल्लोल करते हैं और कभी-कभी लड़ते-झगड़ते भी हैं। कभी कोई मनचला मेरी ओर भी वक्र-दृष्टि करता है तो मुझे बहुत चतुराई से रहना पड़ता है। इस सब समय में मैं न खाती हूँ, न पीती हूँ। कभी-कभी संगीत और नाच करना होता है। यह जब भी होता है मुझे उपहार मिलते हैं। कभी-कभी तो दो-तीन सहस्र मुद्रा तक एकत्रित हो जाती हैं।"

"बहुत कठोर काम है। कभी किसी ने बलपूर्वक आपसे प्रेम नहीं किया?"

"क्यों नहीं। परन्तु यहाँ का नियम ही है कि मुझे अछूता रहना चाहिए। इसके लिए राज्य की ओर से मुझे दस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा प्रति-वर्ष मिलती हैं। पहले तो यह नियम था कि नगर-वधू जन्म-भर के लिए बनाई जाती थी। परन्तु उस प्रथा में दोष प्रतीत होने पर अब पाँच वर्ष के पश्चात् बदल दी जाती है। यदि नगर-वधू अपनी इच्छा से किसी की

भार्या बने तो वह दण्ड की भागी होती है और यदि कोई उसकी इच्छा के बिना उस पर बलात्कार करने का यत्न करे तो उसे यह रस्सी खींचने की आवश्यकता है और पचास सुभट्ट उसकी रक्षा के लिए एक क्षण में आ सकते हैं।"

"बहुत विचित्र प्रथा है यह ?"

"है तो, परन्तु राज्य-कार्य का यह एक अंग है। वैशाली की नगर-वधू राज्य के अन्दर के लोगों के लिए और बाहर के लोगों के लिए एक भारी आकर्षण है। राज्य के सब मुख्य कार्य इस महल के आगारों में सम्पन्न होते हैं।"

"पर मृदुला देवी !" भानुमित्र ने कहा, "ऐसे वातावरण में रहते हुए संयम से रहना क्या कठिन नहीं ?"

"है तो। कभी-कभी ही कोई नगर-वधू पूरे पाँच वर्ष तक इस महल में राज्य कर सकी है। प्रायः किसी धनी लड़के के साथ समय के भीतर ही भाग गई है। एक-दो बौद्ध भी हो चुकी हैं। एक ने आत्मघात किया था।

"मुझे इस पदवी के लिए तैयार करते समय ये सब बातें बता दी गई थीं। इस पर भी जब निर्वाचित हो मैं यहाँ आई तो गणपति ही मुझसे प्रेम करने लगे। मैं जानती थी कि वे मेरे पिता हैं, इसीसे मैं उनसे भागती थी और वे मुझे पाने के लिए और अधिक प्रयत्न करने लगे। अन्त में मुझे बताना ही पड़ा। जब मैंने प्रमाण दिये तो वे कहने लगे कि शायद मेरी आकृति मेरी माँ से मिलती है, इसी से मैं उनकी दृष्टि में चढ़ गई थी।

"पश्चात् उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि वे मेरे विवाह का अच्छे परिवार में प्रबन्ध कर देंगे और मेरी रक्षा के लिए प्रत्येक प्रकार का प्रबन्ध कर रहे हैं।"

"उन्होंने मेरे विषय में कभी पूछा है ?"

"जब आप यहाँ थे तो पूछा करते थे। जिस रात आप अयोध्या जाने से पूर्व यहाँ आये थे, तो उनको पहले तो सूचना मिली कि आप अपने गृह में जलकर भस्म हो गए हैं। अगली रात उन्होंने मेरे से बहुत शोक में बात

कही। इस पर मेरी हँसी निकल गई। जब मैंने उन्हें सत्यकथा बताई तो बहुत प्रसन्न हुए। तब से आज तक आपके विषय में कोई बात नहीं हुई।"

"उनकी स्त्री अपनी छोटी लड़की प्रभा से मेरा विवाह करने का यत्न कर रही है।"

मृदुला की हँसी निकल गई। भानुमित्र ने पूछा, "क्यों, किस लिए हँसी हैं आप?"

"मैं जानना चाहती हूँ कि कब होगा आपका विवाह?"

"आप क्या समझती हैं, कब होना चाहिए?"

"मैं तो समझती हूँ कि शीघ्र ही हो जाना चाहिए। मैंने उस लड़की को देखा है।"

"इसमें मैं आपका प्रयोजन नहीं समझा?"

"बात तो स्पष्ट है। वह अभी बालिका है। जब तक मैं इस पदवी से मुक्त होऊँगी तब तक वह तीन बच्चों की माँ बन चुकेगी। वह बेचारी उनके पालन-पोषण में लग जावेगी और तब मेरी बारी होगी। आपका दूसरा विवाह मुझसे होगा।"

भानुमित्र इस युक्ति से हँस पड़ा। मृदुला भी हँसने लगी। हँसकर जब दोनों कुछ शान्त हुए तो मृदुला ने पूछा, "मैं आपको चार वर्ष तक बन्धन में नहीं रखना चाहती; परन्तु एक बात पूछूँ? आप रुष्ट तो न हो जावेंगे?"

भानुमित्र ने उत्सुकता से कहा, "हाँ कहो। आपसे रुष्ट कैसे हो सकता हूँ?"

"यदि आपने विवाह ही करना है तो क्या प्रभा से सुन्दर लड़की और मिल नहीं रही?"

"मिल तो रही है। पर मैं डरता हूँ कि यदि किसी अति सुन्दर स्त्री का पति बन गया तो फिर तुमसे विवाह की रुचि रह जायेगी या नहीं?"

इससे मृदुला गम्भीर विचार में पड़ गई। फिर कुछ सोचकर बोली, "मैंने इस विषय पर बहुत विचार किया है। जब मैंने यह सुना कि आप

अवध के महामात्य बन गए हैं तो मैं यह विचार करती थी कि जब तक मैं आपसे विवाह करने के लिए तैयार हो सकूँगी आपका विवाह हो जाना स्वाभाविक ही है। भला इतने ऊँचे पद पर रहते हुए आपके पथ में प्रलो-भन आवेंगे ही नहीं, यह मैं नहीं मान सकती। फिर मेरा क्या अधिकार है कि मैं आपको एकाकी जीवन व्यतीत करने के लिए कहूँ। इतना विचार कर मैं सोचती थी कि मेरे साथ आपका क्या व्यवहार होगा? आपके विषय में मैं क्या सोच सकती थी? सब अपने मन के लड्डू ही तो होते थे। हाँ, मैं अपने व्यवहार के विषय में तो सोच ही सकती थी। सो सोच-विचार लिया है।"

भानुमित्र आगे सुनना चाहता था। कारण यह कि बात अभी समाप्त नहीं हुई थी, परन्तु मृदुला ऐसे चुप कर गई मानो वह जो कहना चाहती थी, कह चुकी है। उसे चुप देख भानुमित्र ने पूछा, "क्या विचार किया है, प्रिये! तुमने?"

"मैं आपके द्वार पर धूनी रमा दूँगी और इससे मैं अपना अधिकार पा जाऊँगी।"

"परन्तु देखो न, देवी! यदि मेरी स्त्री अति सुन्दर हुई, आप से भी सुन्दर हुई तो फिर आपकी रमाई धूनी व्यर्थ नहीं जायगी क्या?"

"नहीं। कोई भी स्त्री सदैव अपने पति के काम की नहीं रह सकती। मैं भी तो आपका पूर्ण साथ नहीं दे सकती। प्रकृति ने स्त्रियों को ऐसा ही बनाया है। उन्होंने बच्चे जनने हैं और फिर उनका पालन-पोषण भी करना है।"

"तो उस समय के लिए पुरुषों को संयम से नहीं रहना चाहिए क्या?"

"हाँ! यदि वे रह सकें तो। परन्तु मैं तो नित्य देखती हूँ। मेरे प्रासाद में एक सौ से ऊपर दासियाँ हैं और उनमें से प्रति मास दस से बीस तक गर्भवती हो बच्चा जनने चली जाती हैं। मनुष्य स्वभाव से और प्रकृति से बहुपत्नीक है।"

"और आप अपनी दासियों को देख क्या यह अनुभव नहीं करतीं कि

स्त्रियाँ भी बहुपतीक हैं ?"

"हैं तो। परन्तु उनके गर्भ तो एक से ही स्थित हो सकता है। आर्य! मैं वासना की बात नहीं कर रही। वासना-तृप्ति में तो पुरुष स्त्री में अन्तर नहीं होता; परन्तु विवाह के मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति में तो स्त्री एक समय में एक ही पति रख सकती है और पुरुष एक से अधिक स्त्रियाँ। यह प्रकृति का विधान है। जो इसका विरोध कर जी सकते हैं, उन्हें कौन मना करता है। जो नहीं रह सकते वे एक से अधिक पत्नियाँ रखेंगे ही।"

"यह युक्ति आपकी दूषित है, मृदुला देवी! इसमें पुरुष-स्त्री में असमानता की गन्ध आती है। हम पुरुष अपनी स्त्री को किसी दूसरे पति से सन्तानोत्पत्ति कराते पसन्द नहीं करते। नियोग हमारे जीवन में नियम नहीं अपवाद है। यही प्रतिबन्ध हमें पुरुषों पर लगाना चाहिए। तभी तो गृहस्थ-जीवन सुखमय हो सकेगा।"

मृदुला मुस्करा कर आँखें नीची किये हुए कहने लगी, "एक बार यही बात गणपति जी से चल पड़ी थी। मैं उनको एक योग्य कार्यकुशल अनुभवी विद्वान् मानती हूँ। वह कहने लगे, 'आदर, सत्कार, भोजन, वस्त्र और अन्य प्रकार की शारीरिक और मानसिक सुविधाएँ तो स्त्रियों को पुरुषों से अधिक मिलनी ही चाहिएँ; परन्तु जो कमियाँ प्रकृति ने स्त्रियों में रखी हैं, वे मैं या तुम मिटा नहीं सकते। स्त्रियाँ क्षेत्र हैं। इनमें बीजारोपण पुरुषों का कार्य है। बीजों की बाहुल्यता है। क्षेत्र में एक समय एक ही सन्तान उत्पन्न हो सकती है। परिणाम यह होता है कि पुरुष तो एक से अधिक क्षेत्रों में बीजारोपण कर सकता है, परन्तु क्षेत्र तो एक ही से बीज ग्रहण कर सकता है।"

"तो इसका परिणाम यह होगा कि सन्तान-आधिक्य से परिवार और देश आक्रान्त हो उठेंगे।"

"ठीक यही बात मैंने उनसे कही थी और उन्होंने कहा था कि जब देश में जन-संख्या इतनी अधिक हो जायगी कि देश उनके निर्वाह के लिए भोजन उत्पन्न नहीं कर सकेगा तो हम समाज में सन्तान-निरोध के लिए उपाय और

नियम बना लेंगे। अभी इसकी आवश्यकता नहीं है।"

इस समय रात्रि के तीसरे प्रहर का घड़ियाल बजा। दोनों उठ पड़े। मृदुला अपने शयनागार की ओर चल पड़ी। भानुमित्र जब शयनागार के बाहर से विदा होने लगा तो उसने बहुत ही लालसा-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। मृदुला इस दृष्टि में छुपे भावों को समझती थी। उसने भानु-मित्र के दाहिने हाथ को पकड़, अपना हाथ उसमें पकड़ा कहा, "साढ़े तीन वर्ष मेरे नगर-वधू की पदवी के और रह गए हैं। प्रतिदिन प्रातः मैं दिनों की गिनती करती रहती हूँ और प्रतिदिन यह अवधि घटती देख मन में लक्ष्य स्थान की ओर जाती हुई अनुभव करती हूँ। आज प्रातः बारह सौ अस्सी दिन की अवधि शेष गिनी थी।"

"मैं तो कभी यह सोचता हूँ कि इस नगर-वधू प्रथा का सत्यानाश क्यों नहीं हो जाता।"

"तो मेरी आपसे भेंट कैसे होती? फिर वैशाली की पूर्ण राजनीति और संगठन-आयोजन व्यर्थ हो जाता। इस देश में यह संस्था एक प्रथम श्रेणी की महत्ता रखती है। देखिये मित्र! मैं आपकी आशा बाँधे हुए ये दिन व्यतीत कर सकती हूँ। जिस दिन मैं यहाँ से मुक्त होऊँगी, उसी दिन मैं आपको रथ लिए द्वार पर मेरी प्रतीक्षा करते हुए देखना चाहती हूँ।"

इतना कह वह हाथ छुड़ा शयनागार में चली गई। भानुमित्र वहीं द्वार पर मूर्तिवत् खड़ा रह गया। उसे चेतनता हुई जब पीछे खड़ी चम्पा ने कहा, "आर्य! आइये।"

भानुमित्र ने चौंककर पीछे देखा। चम्पा की आँखों में अभी भी चप-लता थी। भानुमित्र उसके साथ बाहर के द्वार की ओर जाते हुए पूछने लगा, "तुम वहीं छुपकर बातें सुन रही थीं?"

"देवी जी की कृपा है मुझ पर। मैं उनकी सब बातें जानती हूँ।"

"तब तो तुम बहुत काम की वस्तु हो, चम्पा!"

"किसके काम की, भद्र!"

"मेरे काम की, प्रिये!"

"आपकी सेवा कर मैं अपने को कृतकृत्य मानूँगी।"

"मैं यह स्मरण रखूँगा, चम्पा देवी!"

: ८ :

प्रभा को जब मालूम हुआ कि भानुमित्र वैशाली में आया हुआ है और प्रातः के अल्पाहार के समय उनके घर में आने वाला है, तो वह अपने मन की प्रसन्नता को अपनी बड़ी बहन से छुपा नहीं सकी। उसकी बड़ी बहन ऊषा ने उसे सज-धज कर अपने आगार में से निकलते देख मुस्करा दिया। प्रभा जानती थी कि वह एक मागधी से विवाहित है और उसका विवाहित जीवन पूर्णरूप में असफल रहा है। इसी लिये वह अपने माँ-बाप के पास ही रहती है। इस कारण उसके मुस्कराने को वह शुभ न मान पूछने लगी, "ऊषा बहन! क्या है आज, जो मुख टेढ़ा कर रही हो?"

ऊषा हँस पड़ी और प्रभा के समीप आ उसके कान के समीप मुख को ले जाकर बोली, "यह वेणी पर जूही के गुच्छे का कारण जानती हूँ।"

"तो जानो। वह मागधी नहीं है।"

इस कटाक्ष से तो ऊषा की आँखें भर आईं और वह बिना उत्तर दिये भोजन-गृह में चली गई। परिवार के सब लोग वहाँ एकत्रित थे। ऊषा अपने स्थान पर जा बैठी। माँ ने देख लिया कि उसकी आँखें तरल हो रही हैं। उसने पूछा, "ऊषा! क्या बात है?"

"कुछ नहीं, माँ! मैं राजगृही जाने का विचार कर रही हूँ।"

"क्या है वहाँ?"

"तो माँ! तुम नहीं जानती कि क्या है वहाँ? मैं अपने पति के घर जा रही हूँ।"

गणपति इस मनोद्गार को सुन चुप नहीं रह सका। बहुत प्रेम-भाव से बोला, "बेटी, ऊषा! तुम्हारा विवाह भूल हुई है और मैं समझ नहीं सका कि इसको सुधारने का क्या उपाय करूँ?"

"पिता जी! मेरा जन्म ही भूल हुआ है। आप जैसे प्रख्यात प्रकाण्ड

विद्वान् की लड़की को इतना कुरूप नहीं होना चाहिए था। यदि मैं एक निर्धन की लड़की होती तथा अनपढ़ और गँवार होती तो किसी मूर्ख, कुरूप से विवाह कर सन्तुष्ट रहती। मेरे सब कुछ पढ़ने-लिखने का क्या लाभ हुआ है?"

देवधर्मा ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "देखो ऊषा! तुम्हें अपनी मां से रोष करने की कोई आवश्यकता नहीं। यह रूप-रंग उसका अपना ही है। मुझसे भी तुम्हें रुष्ट होने के लिए कारण नहीं। मैंने तुम्हें शिक्षा दिलवा विदुषी बनवा दिया था। यदि इस पर भी तुम सुखी नहीं हो सकीं तो इसमें तुम्हारी ही भूल है। तुमने स्वयं साधारण रूप-लावण्य रखते हुए अपने से अधिक रूप-रंग वाले और अपने से कम शिक्षित को जयमाला पहनाई है। वह गँवार नहीं समझ सका कि तुम ज्योतिष, गणित, संगीत और अनेकों अन्य गुणों से युक्त हो।"

"पिताजी!" ऊषा आँखों में आँसुओं को न रोक सकने से विह्वल हो उठी थी। उसने साड़ी के आँचल से आँसुओं को पोंछते हुए कहा, "पिता जी! आपने भी तो माताजी से विवाह किया था।"

इस समय भानुमित्र वहाँ आ पहुँचा और प्रभा उठकर उसका आगार में स्वागत करने लपकी। भानुमित्र ने इस प्रकार भागकर आती प्रभा को देख अपने दोनों हाथों से उसकी भुजाओं को पकड़ लिया और अपने से कुछ अन्तर पर खड़ा कर उसे सिर से पाँव तक देखा। मृदुला के सौन्दर्य को, जिसको रात वह एक प्रहर तक देख तृप्त होता रहा था, अभी भूला नहीं था। जब वह प्रभा को देख रहा था तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मृदुला की प्रतिमा प्रभा के पीछे खड़ी उसकी हँसी कर रही है। इस बात का मन में भाव होते ही उसका मन उतर गया। उसने प्रभा को सम्बोधन कर कहा, "मेरी छोटी बहन! आजकल क्या पढ़ती हो?"

प्रभा बहन कही जाने से, फेना को हवा लगने की भाँति, शान्त हो गई और उसका शरीर ढीला पड़ गया। दोनों शान्त भाव में वहाँ आ गए, जहाँ सब आहार के लिए बैठे थे। भानुमित्र प्रभा की माँ के चरण-

स्पर्श कर प्रभा के समीप बैठ गया। इस समय उसकी दृष्टि ऊषा की ओर गई। वह अपने गालों से टपके हुए आँसू पोंछ रही थी।

"क्या बात है, ऊषा बहन? क्या मैं आज कुसमय पर आया हूँ?"

"नहीं वत्स! तुम ठीक समय पर ही आये हो। यह लड़की कहती है कि मैंने इसी के रंग-रूप वाली इसकी माँ से विवाह किया है और हम दोनों झगड़ते नहीं हैं। इसी प्रकार यह समझती है कि इसके मागधी पति को इससे झगड़ा नहीं करना चाहिए। मैं इसे यह बताना चाहता हूँ कि इसकी माता इससे अधिक बुद्धिमान और कार्य-कुशल है। उसने अपने से अधिक पढ़े-लिखे और बुद्धिमान को अपना पति वरा था। फिर उस पति को पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है। ईस लड़की ने अपने से कम पढ़े-लिखे और प्रकृति में उजड्ड पति को वरा है और रोष कर रही है अपनी माँ पर कि उसने इसे कुरूप क्यों बनाया है।"

"देखो, ऊषा बहन!" भानुमित्र ने बात समझकर कहा, "प्रत्येक बात में गुण-अवगुण दोनों होते हैं। तुम अपने में गुणों का प्रयोग करो तो निश्चय तुम मन-वाञ्छित फल पाओगी।"

"कौन गुण है मुझमें? आज इस जग में पढ़ने-लिखने को कौन पूछता है?"

"तुम ज्योतिष पढ़ी हो, बहन! क्यों नहीं इसमें अभ्यास बढ़ातीं। इस कार्य में कुछ निपुणता प्राप्त करो तो जीवन में मनोरंजन भली भाँति होने लगेगा। हमारी अयोध्या में ही चली आओ तो तुम्हें इतना काम दिलवा दूँगा कि जीवन की सुध-बुध ही भूल जाओगी।"

भानुमित्र की बात को सबने हँसी में उड़ा दिया और प्रभा तो बड़ी बहन के ज्योतिषी बनने के विचार पर ताली पीट हँसने लगी। परन्तु ऊषा के मस्तिष्क में अयोध्या जाकर रहने की बात समा गई। इस समय तो वह चुप कर रही, परन्तु पृथक् में भानुमित्र से इस विषय में राय करने का निश्चय ठान बैठी।

प्रभा का मन बैठता जाता था। वह एक ओर तो अपनी मनोकामना

की पूर्ति में भानुमित्र का उसे बहन कहना बाधा समझने लगी और दूसरी ओर ऊषा को अयोध्या जाने का निमंत्रण सुन, बहन से ईर्ष्या करने लगी थी। इससे मुख फुला चुपचाप बैठी रह गई।

अल्पाहार के पश्चात् गणपति, भानुमित्र से पुनः नगर-वधू के आवास में रात को मिलने को कह, उसे वहीं छोड़ अपने काम पर चला गया।

प्रभा भी उठकर अपने आगार में चली गई। अन्य लोग भी चले गये परन्तु ऊषा और उसकी माँ वहाँ बैठी रह गईं। भानुमित्र ने काश्मीर से आए पत्र में अपनी माता की ओर से ऊषा की माता से सस्नेह नमस्कार लिखा सुनाया। इस पर भानुमित्र के माता-पिता की बातें होने लगीं। फिर भानुमित्र के विवाह की चर्चा भी चली तो उसने कह दिया, "माता जी! जब विवाह होगा तो आपको, ऊषा के पिताजी को और फिर दोनों बहनों को बिना बुलाये थोड़े ही होगा, इससे माँ के हृदय का संशय दूर हो गया और प्रभा के वहाँ से चले जाने का कारण भी स्पष्ट हो गया। ऊषा को इससे प्रसन्नता हुई और प्रभा के कटाक्ष ने, जो उसके मन में उसके लिए द्वेष-भाव उत्पन्न कर दिया था, वह मिट गया।

उसने माँ के सामने ही पूछा, "भैया! मैं कब अयोध्या आऊँ?"

"कभी भी आ सकती हो, बहन! अपने में धैर्य, सन्तोष और दूर-दर्शिता उत्पन्न करो तो सब काम सुगम हो जावेंगे। कोई अचम्भे की बात नहीं कि तुम्हारा वरा हुआ पति तुम्हें मिल जावे। पार्वती ने देव-पति तपस्या के बल पर ही पाया था।"

: ६ :

भानुमित्र का वैशाली आने का एक प्रयोजन महाप्रभु कल्याण से मिलना भी था। उसकी महाप्रभु से चिट्ठी-पत्री चल रही थी, जिसमें वह अपना नाम 'आनन्द' लिखता था। वास्तविक आनन्द रिपुदमन का एक बौद्ध-सहायक था, जो अयोध्या के कारावास में बन्दी था।

अयोध्या के ऋण-सम्बन्धी कार्य को समाप्त कर भानुमित्र ने अपना

ध्यान महाप्रभु की ओर किया। वैशाली में पाँच छोटे-छोटे विहार थे। ये सब एक ही अध्यक्ष के नियंत्रण में थे। यह अध्यक्ष मुख्य विहार में, जो गंगापुर के मार्ग पर लक्ष्मी पंथागार और नगर-द्वार के मध्य में बना था, रहता था। विहार मार्ग से कुछ हटकर जंगल में था।

एक बड़ा सा आहाता था, जिसके चारों ओर दस हाथ ऊँची मट्टी की दीवार बनी थी। भीतर जाने को एक पक्की ईंटों का ऊँचा-सा फाटक था, जिसमें दृढ़ लकड़ी के किवाड़ लगे थे। अहाते के बाहर, फाटक के एक ओर एक अच्छा लम्बा-चौड़ा चैत्य बना था। यह बाहर से आने वाले उपासकों के ठहरने का स्थान था। इसमें कई आगार थे। एक याचक और कुछ सेवक भी इसमें रहते थे। ये लोग चैत्य में ठहरने वाले उपासकों की सेवा-शुश्रूषा के लिये थे। फाटक की रक्षा के लिये प्रतिहार भी इस चैत्य के एक आगार में ही रहते थे।

फाटक प्रायः बन्द रहता था। फाटक में एक खिड़की थी, जो दिन-भर खुली रहती थी और सूर्यास्त के समय बन्द कर दी जाती थी। खिड़की के बाहर एक प्रतिहार सदैव बैठा रहता था, जो बिना स्वीकृति किसी को भीतर नहीं जाने देता था।

भानुमित्र खिड़की पर पहुँचा तो प्रतिहार ने कार्य पूछा। भानुमित्र ने बताया, "मैं महाप्रभु कल्याण से मिलने आया हूँ।"

"क्या नाम है आपका?"

"आनन्द। अयोध्या से।"

प्रतिहार ने भानुमित्र को चैत्य में प्रतीक्षा करने को कहा और एक दूसरे सेवक को सन्देशा समझा भीतर भेज दिया।

चैत्य के आगारों के बाहर बाँस और फूस का छाजन बना था। उसके नीचे दो चारपाइयाँ रखी थीं। भानुमित्र वहाँ जाकर खड़ा हो गया। एक लड़की हाथ में एक लम्बी-सी छड़ी लिये वहाँ खड़ी थी। भानुमित्र का ध्यान उसकी ओर नहीं था, परन्तु वह इस भले आदमी को खड़े देख रही थी। लड़की ने कहा, "भन्ते! बैठियेगा नहीं?"

भानुमित्र को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने यह स्वर कहीं सुना है। उसने ध्यान से लड़की की ओर देखा। वह सिर से नंगी थी। उसके सिर के पीछे बड़ा सा जूड़ा, उसके लम्बे बालों का सूचक स्पष्ट दिखाई दे रहा था। छोटा सा लम्बा मुख परन्तु चौड़ा मस्तक, मोटी-मोटी आँखें और लम्बी बरौनियाँ, पतला गोल नाक और पतले अधर, लम्बी गर्दन तथा गोल पतली भुजाएँ, अति सुन्दर नखशिख थे। शरीर का रंग गन्दमी था, परन्तु त्वचा में विशेष प्रकार की चमक थी। छाती अभी उभरनी आरम्भ ही हुई थी, इससे लड़की की आयु चौदह-पन्द्रह वर्ष से अधिक प्रतीत नहीं होती थी।

यह सब सौन्दर्य अधमैली चोली और लहँगे से ढंपा था। पाँव से नंगी थी, जिसमें बारीक चाँदी की कड़ियाँ थीं। पाँव छोटे-छोटे और सुकुमार दिखाई देते थे।

भानुमित्र को अपनी ओर ध्यान से देखते हुए पा पहले तो उसकी आँखें भूमि की ओर झुक गईं। पश्चात् उसने उसकी ओर देखकर पूछा, "क्या देख रहे हो, भन्ते?"

भानुमित्र ने इतनी सुकुमारी को यह कह कि उसका रूप-लावण्य देख रहा है, डराना उचित नहीं समझा। इससे उसने पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

"प्रचला। आप बैठ जाइये। प्रतिहार को आने में समय लगेगा। महाप्रभु उपासना करा रहे हैं। जब तक वे उपासना से नहीं उठते, तब तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।"

प्रचला का नाम सुन भानुमित्र को स्मरण हो आया कि उसने लड़की को, काले साये की भाँति, अपने पर पानी डालते देखा था। यह उस दिन था, जब वह मद्यपान से अचेत नगर-वधू के कर्मचारियों से सड़क के किनारे फेंक दिया गया था। उस समय उसने केवल शरीर की बाहरी रेखा ही देखी थी। इसीसे वह देखी हुई प्रतीत हो रही थी। इस स्मृति से उसके मन में लड़की के विषय में अधिक जानने का कौतुहल उत्पन्न हो गया। वह एक चारपाई

पर बैठ गया। लड़की उसके सम्मुख भूमि पर बैठ गई। भानुमित्र ने दूसरी चारपाई की ओर संकेत कर कहा, "वहाँ क्यों नहीं बैठती ? नीचे भूमि पर बैठ गई हो ?"

"हम सेवक हैं, भन्ते ! बड़े लोगों के बराबर नहीं बैठ सकते ?"

"तुम किस की लड़की हो ?"

"किसी की भी नहीं।" इतना कह वह हँस पड़ी।

हँसने से उसकी आँखों में विशेष आर्द्रता आ उपस्थित हुई। फिर एक दमचुप कर वह अत्यन्त दयनीय दृष्टि से भानुमित्र की ओर देखने लगी।

"क्या बात है प्रचला ?"

"मेरे कहने का अभिप्राय है कि मैं अपने माता-पिता को नहीं जानती। काल-मेघ कहता है कि वह मेरा पिता है। मैं जानती हूँ कि वह नहीं है और यही कहती हूँ। इस पर सब मुझे पगली कहते हैं।"

"तुम कैसे जानती हो कि कालमेघ तुम्हारा पिता नहीं है ?"

"आपने उसे देखा है ?"

"नहीं।"

"वह अब बाजार गया है। नहीं तो उसे देखते ही कहते कि वह मेरा पिता नहीं है।"

इतने में उस प्रतिहार के साथ, जो भानुमित्र की सूचना देने भीतर गया था, भूधर बाहर आया और महाप्रभु से मिलाने के लिए, अपने विचार से आनन्द को भीतर ले जाने के लिए, छाजन के नीचे पहुँचा। प्रचला को वहाँ से भगा देने के लिए डाँटकर बोला, "ओ पगली ! क्या कर रही है यहाँ ?"

"भूधर भैंसे की कथा······"

इतना सुनते ही भूधर उसे मार भगाने को लपका। परन्तु भानुमित्र ने उसे बीच में ही रोककर कहा, "मैंने उसे बैठाया है।"

"तुम कौन······?"

भूधर ने इतना कहते-कहते भानुमित्र को ध्यानपूर्वक देखा और देखकर

अवाक् मुख खड़ा रह गया। उसके मुख से बहुत कठिनाई से ये शब्द निकले, "तुम···? तुम आनन्द···?"

इतना कहते हुए वह अपनी आँखें मलने लगा। प्रचला उठ कर जाने लगी तो भानुमित्र ने कहा, "प्रचला! ठहरो। तुमसे अभी और बातें करनी हैं।" प्रचला पुनः भूमि पर बैठ गई और बोली, "मैं इस भैंसे से डरती थोड़े हूँ?"

भानुमित्र की हँसी निकल गई।

"तुम्हारा नाम आनन्द है या भा······।"

भानुमित्र खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला, "उसे तो तुमने मकान में जला कर भस्म कर दिया था न? मैं अब आनन्द हूँ।"

"पर तुम आज तक रहे कहाँ हो?"

"आकाश से टपक पड़ा हूँ। परन्तु सेठ जी! डरिये नहीं। मैं आप पर अभियोग नहीं चलाऊँगा। उस समय आपने भूल की थी। मैं वास्तव में वैशाली का हितचिन्तक था और आप लोग भी तो वैशाली का हित ही कर रहे थे न?"

भूधर के माथे पर पसीने की बूँदें झलकने लगी थीं। भानुमित्र उनको देख रहा था। वह तो यह जानना चाहता था कि क्या इसको उसके अवध का महामात्य होने का ज्ञान है या नहीं। इससे उसने कहा, "देखिये सेठ शिरोमणि! मैं बाह्लक देश का रहने वाला हूँ। वहाँ फ़ारस वालों ने आक्रमण करने आरम्भ कर दिए हैं। अपने देश की रक्षा के लिए वैशाली के गणपति से सहायता लेने आया था। उन्होंने सहायता नहीं दी। इससे मेरे मन में आया कि उनके विरोधी दल से मिल जाऊँ। परन्तु आपको विश्वास नहीं आया और एक सेट्टी भाई का मकान जला दिया तथा मेरे एक भृत्य को जलाकर भस्म कर दिया।"

इतने में भूधर ने सचेत हो बात बदल कहा, "महाप्रभु उपासना करवा रहे हैं। एक घड़ी-भर में उससे निपट कर आप से मिलेंगे।"

इतना कह प्रचला से बोला, "ओ पगली! इनको ले जाकर महाप्रभु

के आगार में बैठाओ।"

यह कह भूधर ने हाथ जोड़ नमस्कार की और चैत्य से सड़क की ओर चल पड़ा, जैसे कि वह वहाँ से भयभीत हो जा रहा है। उसे जाता देख प्रचला ने भानुमित्र से कहा, "चलो, आपको ले चलूँ। पर यह आपको देख डर क्यों गया है?

"मैं नहीं जानता।" भानुमित्र ने यह कह प्रचला के साथ विहार में प्रवेश किया।

: १० :

द्वार लाँघ भानुमित्र ने देखा कि एक विस्तृत मैदान है। मैदान के दोनों बाजुओं में बहुत-से गृह बने हुए हैं। मैदान के बीच में एक ऊँचा चौतरा है, जिस पर चढ़ने के लिए चारों ओर सीढ़ियाँ बनी हैं। चौतरे के ऊपर एक मन्दिर की रूपरेखा का गृह बना था।

इस समय बहुत-से लोग वहाँ पीत तथा श्वेत उत्तरीय वसन पहने, मुँडे सिर वाले बैठे थे।

प्रचला भानुमित्र के साथ-साथ चल रही थी। भानुमित्र ने कहा, "यह तो बहुत सुन्दर स्थान है।"

"हाँ। यह उपासना हो रही है।"

"इसमें क्या करते हैं?"

"चुपचाप बैठे रहते हैं। महाप्रभु अपने मुख में कुछ पढ़ते रहते हैं और भिक्षु-भिक्षुणियाँ आँखें मूँदे बैठी रहती हैं।" इतना कह वह खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

"क्यों हँसी हो, प्रचला?"

इसका प्रचला ने उत्तर नहीं दिया। उसने बात बदल दी, "आपका 'प्रचला' कहने का ढंग विचित्र है। यहाँ मुझे इस प्रकार कोई नहीं बुलाता।"

"कैसे बुलाते हैं तुम्हें, ये लोग?"

"आपने सुना नहीं भूधर भैंसे को ? मुझे सब पगली कहते हैं।"

"पर तुम मुझे तो पगली नहीं दीखती।"

"यही तो कहती हूँ। आप भले आदमी प्रतीत होते हैं।"

"ये बौद्ध-भिक्षुक भी तुम्हें ऐसा ही कहते हैं।"

"इनकी बात छोड़ो। इनके विषय में जो कुछ न कहूँ सो ही ठीक है।"

"ओह!" भानुमित्र ने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा।

इस समय मैदान पार कर ये चौतरे के पीछे जा पहुँचे। वहाँ एक पृथक् गृह बना था। वह मन्दिर वाले चौतरे के पीछे कुछ अन्तर पर था और मैदान के बाजुओं में बने गृहों से दूर पृथक् था।

प्रबला ने कहा, "यह महाप्रभु का आवास है।"

वह उसे गृह के भीतर ले गई और एक आगार में ले जाकर भूमि पर बिछी चटाई पर बैठा दिया। आगार के बीचोंबीच एक चन्दन की लकड़ी की चौकी रखी थी, जिस पर चटाई का एक टुकड़ा बिछा था। चौकी पर एक पुस्तक श्वेत वस्त्र में लपेटी रखी थी। आगार खाली था।

भानुमित्र बैठा तो प्रबला भी उसके सम्मुख बैठ उसका मुख देखती रही। भानुमित्र भी इस शृंगार-शून्य सुन्दर सुकुमारी को देख तृप्ति अनुभव कर रहा था। परन्तु चञ्चल प्रबला से चुप नहीं रहा गया, "तो आप मुझे पागल नहीं समझते ?"

"नहीं! बिल्कुल नहीं। तुम तो बहुत ही अच्छी समझदार सुन्दरी हो। मैं तो तुम्हें चिरकाल से जानता हूँ।"

"अब आप भी मुझे पागल बनाने लगे हैं। मैंने आपको कभी नहीं देखा।"

"तुम भूल गई हो, प्रबला! एक सायं चैत्य के बाहर, राजमार्ग के तट पर तुमने एक, सुरा से अचेत मनुष्य को पड़े देखा था। तुमने देखा कि एक सियार उसको सूँघ रहा है। यह समझ कि कहीं वह उसे, मृत शव समझ, खा न जावे, तुमने सियार को भगा दिया और उस अचेत व्यक्ति के

"मुझे कौन रोकेगा? यह कालमेघ? मैं उसकी परवाह नहीं करती।"

"यह महाप्रभु जो हैं।"

प्रचला इस बाधा को सुन गम्भीर विचार में पड़ गई। फिर कुछ सोचकर बोली, "परन्तु क्या तुम मुझसे विवाह कर लोगे?"

"हाँ।"

"मेरी मान-प्रतिष्ठा करोगे?"

"हाँ, हाँ।"

"उतनी ही जितनी अपनी पहली स्त्री की करते हो?"

"हाँ शपथ खाकर कहता हूँ।"

"तो मैं महाप्रभु और कालमेघ को बिना बताए तुम्हारे साथ चलूँगी। मुझे बताओ मैं तुम्हें कहाँ मिलूँ?"

भानुमित्र ने सोचकर बताया, "उसी स्थान पर, जहाँ तुमने मेरे सिर पर पानी उड़ेल, मुझे सचेत किया था। कल सूर्योदय से पूर्व।"

"तुम मुझको वहाँ प्रतीक्षा करते पाओगे।"

भानुमित्र ने यह कहते हुए प्रचला की मोटी-मोटी आँखों में विचित्र चमक देखी।

: ११ :

इसके पश्चात् दोनों गम्भीर हो अपने-अपने मन में सोचने लगे। भानुमित्र प्रचला के आकर्षण को सहन करने में अपने को अशक्त पा रहा था। प्रचला सोच रही थी कि यह भी स्वप्न है या सत्य?

इस समय दो भिक्षुओं के साथ महाप्रभु आगार में आये। गृह के बाहर भिक्षुओं का आपस में बातें करने का शब्द आ रहा था। महाप्रभु को आया देख प्रचला उठ खड़ी हुई। इससे भानुमित्र ने अनुमान लगाया कि उन तीनों में महाप्रभु भी है। फिर एक के मुख पर गम्भीर और अधिकार-पूर्ण मुद्रा देख महाप्रभु को अन्य दो से पृथक् करना कठिन नहीं था। भानुमित्र ने उठकर नमस्कार किया। महाप्रभु ने कहा, "बुद्धं शरणं गच्छामि।"

भिक्षुओं ने चौकी पर रखी पुस्तक को उठाकर एक ओर रख दिया और महाप्रभु चौकी पर बैठ गया। उसके बैठने पर भानुमित्र और दोनों भिक्षुक बैठ गये। प्रचला खड़ी रही। बैठते ही महाप्रभु ने उसकी ओर देख पूछा, "क्यों खड़ी हो यहाँ?"

"भूधर सेठ ने इस ठाकुर के साथ भेजा था।"

"तो अब भाग जाओ। देखो कालमेघ आवे तो मेरे पास भेजना।"

प्रचला ने उत्सुकता से भानुमित्र की ओर देखा, परन्तु वह दत्तचित्त हो महाप्रभु को देख, उसके स्वभाव और प्रकृति का अनुमान लगा रहा था। प्रचला भानुमित्र को अपनी ओर न देखने पर, द्वार के बाहर निकल विलुप्त हो गई। पश्चात् महाप्रभु ने साथ आये दोनों भिक्षुओं को भी जाने को कह दिया, "तुम लोग जाओ, फिर आना। मुझे इस भद्र पुरुष से कुछ काम है।"

जब वे बाहर निकल गये और आवाज़ की पहुँच से दूर हो गये तो महाप्रभु ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "तुम आनन्द प्रिय नहीं हो।"

"भगवन् यह मेरा जन्म-नाम है। पीछे गुरु ने नाम बदल दिया था और जब कभी मुझे कोई गुप्त नाम से कार्य करना होता है, तो इसी नाम से करता हूँ।" भानुमित्र ने उत्तर तो दे दिया, परन्तु अपना भेद खुल जाने से वह लज्जित हो संकोच में पड़ गया।

महाप्रभु ने समझ लिया कि वार्तालाप में उनका पक्ष ऊँचा हो गया है। उसने अपनी विजय को पूर्ण करने के लिए कहा, "परन्तु तुम्हारा जो प्रत्यक्ष रूप है, उससे मैं तुमसे खुलकर बात नहीं कर सकता। अवध के महामात्य के विरुद्ध अवध के महामात्य से ही परामर्श करूँ, मुझे यह ठीक नहीं जान पड़ता।"

भानुमित्र ने समझ लिया कि उसके आने का प्रयोजन विफल गया है। इस पर भी अपनी बात के पक्ष में युक्ति देने के लिए हँसकर कहने लगा, "इससे तो यह सिद्ध होता है कि मैंने यहाँ आकर ठीक ही किया है। आपका यह कहना कि ऐसी बातें चिट्ठी-पत्री में नहीं लिखी जा सकतीं, अब

समझ में आने लगा है। आपको यह बात अपने मस्तिष्क में स्पष्ट कर लेनी चाहिए कि आप महामात्य का विरोध कर रहे हैं या अवध राज्य का। महामात्य ने आपका क्या बिगाड़ा है ?"

"महामात्य भानुमित्र ने हमारे पूर्ण प्रयास को मिट्टी में मिला दिया है। रिपुदमन को आत्मघात करने पर विवश किया है। यहाँ के अर्थ-मन्त्री को देश से निर्वासित करवाया है। भूधर को ऐसा भयभीत किया है कि अब वह किसी कार्य के योग्य नहीं रहा। तुमने हमें परास्त किया है पर एक बात तुमको समझ लेनी चाहिए कि अब हम तुम्हारे से ठगे नहीं जा सकते।"

"भगवन्! जब मनुष्य त्रसित होता है तो ऐसी ही बातें करता है। उसके लिए वास्तविक तत्व तक पहुँचने में कठिनाई उपस्थित हो जाती है।

"देखिये, मैं आपको समझाऊँ। रिपुदमन किसी सिद्धान्त का पोषक नहीं था। उसका प्रयत्न स्वार्थ निमित्त था। वह स्वयं राजा बनना चाहता था। मैंने उसको निकाल क्षेत्र सिद्धान्तों के संघर्ष के लिए तैयार कर दिया है। साथ ही मैंने अपने को देवधर्मा और महाराज अवध का विश्वासपात्र बना लिया है। अब मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। मैं आपकी योजना का विरोध तो करूँगा नहीं। हाँ यदि आप मुझे विश्वास में ले लेंगे तो सफलता निश्चित ही है। अपने वचन की सत्यता के प्रमाण में मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि मेरा महाराज अवध से निजी द्वेष है।"

"मैं जानता हूँ। महारानी मल्लिका तुम्हारी भार्या बनने वाली थीं। इस पर भी मैं यह देख रहा हूँ कि मैलन्द पण्डित की लड़की राका तुम्हें भेंट में देकर तुम्हारी हानि की पूर्ति की जाएगी। इधर वैशाली तुम्हें मृदुला भेंट में देगा। इतने प्रलोभनों में तुम हमारे पक्ष की बात करोगे ? मुझे सन्देह है।"

भानुमित्र इस भिक्षु को वस्तुस्थिति का इतना ज्ञान देख चकित रह गया। वह समझ गया कि यह आदमी राज्य का महामात्य बनने के योग्य है; परन्तु राज्य का विरोधी होने पर अत्यन्त भयंकर सिद्ध होगा। इससे उसने इस व्यक्ति से बनाये रखने में ही देश का हित समझ अपने कन्धों

को ऊपर उठा अपने मन का असन्तोष प्रकट कर कहा, "ये प्रलोभन मुझे अपने निश्चय से डिगा नहीं सकते, परन्तु आपको विश्वास दिलाना कठिन हो रहा है।"

इस पर महाप्रभु कुछ काल तक गम्भीर विचार में पड़ा रहा। भानुमित्र उसके मुख पर बदलते भावों को पढ़ने का यत्न करता रहा। एकाएक महाप्रभु ने भानुमित्र की आँखों में देखते हुए कहा, "एक बात तुम समझ गए होगे कि तुम हमको धोखा नहीं दे सकते। यह बात ठीक है कि तुम चतुर हो और हमारे प्रयत्नों को समझ गए हो। तुमने क्यों मुझे दण्ड नहीं दिलवाया मैं नहीं जानता। शायद मुझे और अधिक दोषी सिद्ध कर मृत्यु-दण्ड दिलवाने का विचार है। जब इतना परस्पर अविश्वास है तो कैसे हम एक-दूसरे को अपना रहस्य बता सकते हैं?"

"तो ठीक है भगवन्! हमारा मार्ग एक ओर जाने वाला होता हुआ भी एक नहीं है। मैं समझता हूँ अधिक वार्तालाप से कुछ लाभ नहीं।"

महाप्रभु ने हाथ ऊँचा कर आशीर्वाद देते हुए कह दिया, "बुद्धं शरणं गच्छामि……।"

: १२ :

भानुमित्र ने जीवन में यह दूसरी पराजय खाई थी। पहले मल्लिका के विषय में और अब महाप्रभु को जाल में फँसाने में। यह भिक्षुक चट्टान की भाँति उसके विरोध में खड़ा था और वह इसके विरुद्ध कोई भी लिखित प्रमाण प्राप्त नहीं कर सका था। न ही कोई साक्षी मिल सका था, जो महाप्रभु कल्याण को राज्य में विद्रोह खड़ा करने का दोष लगा सके।

भानुमित्र एक सिद्धान्त को मानता था। वह यह कि बिना न्यायालय में किसी को दोषी सिद्ध किये वह दण्ड नहीं देगा। उसके पास न्यायालय में रखने योग्य कोई प्रमाण नहीं था। अतएव उदास चित्त वह विहार से बाहर निकल आया। जब फाटक से निकल राज्य-मार्ग की ओर चला तो अचला मार्ग पर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने भानुमित्र के पास आ

कहा, "कल सूर्योदय से पूर्व राज-मार्ग के तट पर प्रतीक्षा करूँगी।"

भानुमित्र का विचार भंग हुआ। उसने अचला के कहने का अर्थ समझा तो सिर हिला कहा, "देखो, देरी न करना। प्रकाश होने से पूर्व हमें गंगा पार कर लेनी चाहिए।"

महामात्य नगर की ओर जाता विचार कर रहा था कि महाप्रभु के गुप्तचर बहुत चतुर हैं। उसके मल्लिका के प्रति मनोभावों का इसको ज्ञान होना बहुत ही विचित्र बात थी। कहाँ से और कैसे उनको जान गया है, विचार करने की बात थी। फिर मृदुला से उसके सम्बन्ध का भी इसे ज्ञान था। इतना विचार कर भानुमित्र मार्ग पर चलता-चलता रुक गया। उसे एक बात सूझी और वह उसको कार्य में लाने की योजना बनाने लगा।

उसी सायंकाल वह गणपति से और मृदुला से मिलने के लिए विनोद-भवन में गया। गणपति अभी नहीं आये थे। अतएव चम्पा की खोज में एक दासी को भेज अपने आगार में चला गया। उसका सन्देश पा चम्पा और मृदुला दोनों आईं।

महाप्रभु से मिलने के पश्चात् भानुमित्र ने निश्चय कर लिया था कि उसके गुप्तचरों के जाल को तोड़ डालेगा। मृदुला से उसके सम्बन्ध को मृदुला के अतिरिक्त चम्पा जानती थी। इससे उसकी परीक्षा आवश्यक हो गई थी। दोनों को आया देख बहुत आदर से उनको बैठाया। मृदुला के कुछ पीछे हटकर चम्पा बैठ गई।

"चम्पादेवी! तुम्हारा इतिहास जानने की लालसा मन में लिये हुए ही मैं यहाँ से जा रहा हूँ।"

"कब जा रहे हैं, प्रभु?"

"कल मध्याह्न पश्चात्। यहाँ आने का अब निकट में अवसर नहीं मिलेगा।"

"परन्तु प्रभु! मेरा इतिहास कुछ अधिक रोचक नहीं है। एक निर्धन की लड़की किसी सेठ की वासना का भोग बन अपने रूप को बेचने रूप की मण्डी में आ बैठी है।"

"परन्तु रूप के ग्राहक तो वैशाली में कम हैं न ?" भानुमित्र ने कन-खियों से उसके मुख की ओर देखते हुए पूछा, "इस कारण रूप-विक्रय के साथ कुछ अन्य कार्य भी करना पड़ता है। ठीक है न, देवी ?"

चम्पा का मुख विवर्ण हो गया। भानुमित्र इतना ही जानना चाहता था, परन्तु अभी उसे डराना नहीं चाहता था। इस कारण तुरन्त बात बदल कर बोला, "क्या आयु होगी, चम्पा तुम्हारी ?"

चम्पा ने आँखें नीची कर धीमे स्वर में कहा, "तीस वर्ष से दो मास कम।"

"अभी तो रूप-नगर में तुम्हारा दाम लग सकता है। फिर भी क्या तुम मेरे घर में चलोगी ? वहाँ तुम्हें मेरी धर्म-पत्नी की, गृह-प्रबन्ध में सहायता करनी होगी।"

चम्पा का मुख इस समाचार से खिल उठा था। इस पर भी अपने उद्‌गारों को दबाते हुए उसने कहा, "यह तो मृदुला दीदी की इच्छा पर है।"

"इनकी स्वीकृति तो मैं ले लूँगा।" भानुमित्र ने मुस्करा कर मृदुला की ओर देखते हुए कहा, "तुम अपनी ओर से तो तैयार हो न ?"

चम्पा के मुख पर प्रसन्नता की लालिमा छा गई। इस समय भानुमित्र ने कहा, "अच्छी बात है। मृदुलादेवी तुम से इस विषय में बात करेंगी। अब तुम जा सकती हो, मुझे इनसे कुछ काम है।"

चम्पा लम्बी साँस ले उठ आगार के बाहर चली गई। भानुमित्र उसके पीछे-पीछे बाहर चला आया। संकेत से चम्पा को समीप बुला कहने लगा, "देखो चम्पा ! मेरे मन के भावों को तुम समझती हो। मृदुला देवी से नहीं कहना। मैं तुम्हें अपने रणवास की स्वामिन बनाने के लिए ले जा रहा हूँ।"

"दासी मरण-पर्यन्त आभारी रहेगी।" इतना कह चम्पा एक ओर को चली गई। भानुमित्र उसे जाते देखता रहा। जब वह दृष्टि से ओझल हो गई तो वह आगार में लौट आया। मृदुला विस्मय में भानुमित्र को यह

नाटक करते देखती रही। भानुमित्र उसके भावों को समझ गया और उसने उसका विस्मय तुरन्त निवारण कर दिया। उसने पूछा, "देवी! यह दासी यहाँ कब से कार्य करती है?"

"मेरे यहाँ आने से भी पूर्व से है। अन्य दासियों से अधिक सुन्दर, सुशील और शिक्षित जान मैंने इसे अपनी सेवा में रख लिया था। इसका प्रेम या यूँ कहो कि इससे प्रेम, एक साधारण रूप-रेखा के व्यापारी कर्णदेव से है। वह प्रायः नगर के बाहर रहता है। जब भी वह नगर में होता है तो इससे मिलने आता है। दोनों बहुत सभ्य और सुसंस्कृत विचारों के हैं। यह उसे यहाँ छोड़ आपके संग नहीं जावेगी।"

"देवी! यही तो तुम्हें पता नहीं है। यह मेरे साथ जावेगी और कर्ण-देव का व्यापार भी अयोध्या में बढ़ जावेगा। ये दोनों एक संस्था की ओर से गुप्तचर हैं, जो तुम्हारे भेद जानने के लिए यहाँ नियुक्त हैं।

"अब इसको मेरी देख-भाल करने का आदेश है। इस कारण यह मेरे साथ चलने को बहुत पसन्द करेगी। परन्तु मैं इसे साथ नहीं ले जा रहा।"

मृदुला इस समाचार को सुन हैरान रह गई और प्रसन्न भी हुई। भानुमित्र ने अपने भावों को समझाने के लिए कहा, "मैं इसे तुम्हारे यहाँ भी नहीं रहने दूँगा। मैं गणपति जी से कह जाऊँगा और वे कल मध्याह्न के समय इसको तुम्हारे यहाँ से मेरा नाम ले मँगवा लेंगे और उचित स्थान पर भिजवा देंगे। कर्णदेव इसकी खोज में अयोध्या आवेगा। उसे मैं चम्पा के पास भेज दूँगा। तुम उसे कल मध्याह्न से पूर्व अपना सामान बाँध तैयार रहने का आदेश दे देना।"

मृदुला चम्पा पर बहुत भरोसा करती थी और उसे ही इस प्रकार धोखा देते देख अत्यन्त दुःख अनुभव कर रही थी। भानुमित्र ने कहा, "देवी! मैं कल सूर्योदय से पूर्व ही यहाँ से जा रहा हूँ। अब भेंट शीघ्र नहीं हो सकेगी। इस कारण नमस्कार कहने के लिए आया हूँ।"

मृदुला ने इससे पुलकित हो कहा, "आर्य! स्मरण रखियेगा। यह दासी आपके नाम की माला जपती रहेगी।" इतना कह उसने भानुमित्र के

चरणों पर अपना शीश रख दिया।

भानुमित्र ने उसे उठा अपने अंग से लगा लिया। मृदुला की आँखों से आँसू बह रहे थे। भानुमित्र ने उसके मुख पर चुम्बन दे उसे अपने से पृथक् कर कहा, "बस, अभी हमारे मिलन की यही सीमा रहेगी देवी!

"तुम्हें अधीर नहीं होना चाहिए। समय व्यतीत होते देर नहीं लगती। मुझे पूर्ण आशा है कि तुम्हारी तपस्या अपना फल लाएगी। हाँ! एक समाचार तुम्हें बताना चाहता हूँ। वैशाली के कीचड़ में एक पंकज लगा देख आया हूँ। उसे उखाड़ लिये जा रहा हूँ। यह इस कारण कि उस रात तुमने मुझे मन बहलाने की अनुमति दे दी थी।

"लो अब मैं चला। एक बात स्मरण रखना। इस पंकज के विषय में अभी किसी से नहीं कहना और चम्पा को मेरे जाने का ठीक समय नहीं बताना। उसे तो मध्याह्न का समय देना ही ठीक रहेगा।"

इतना कह भानुमित्र ने एक बार पुनः मृदुला से आलिंगन किया और पृथक् हो आगार से बाहर निकल गया। वह गणपति के आगार में जा पहुँचा।

: १२ :

भानुमित्र वैशाली राज्य के पंथागार में गुप्त नाम से ठहरा हुआ था। उसने अपना गुप्त नाम 'आनन्द प्रिय' बताया था। इस कारण दो-चार इने-गिने लोगों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था कि अवध का महामात्य वैशाली में विद्यमान है।

जब से उसे विदित हुआ था कि चम्पा द्वारा उसका रहस्य बौद्ध-विहार में पहुँच गया है, वह पंथागार में नहीं गया। मध्यरात्रि तक विनोद भवन में रहा, पश्चात् गणपति के भवन में जा पहुँचा। वहाँ एक प्रहर विश्राम कर, गणपति के सेवक को भेज, अपना रथ मँगवा विदा हो गया। रथ और सारथी अयोध्या से साथ आए थे।

नगर द्वार से निकल रथ गंगापुरि की ओर चल पड़ा। जब रथ नगर

द्वार और लक्ष्मी देवी के पंथागार के मध्य में पहुँचा, जहाँ प्रचला से मिलना नियत था, तो उसने रथ रुकवा मार्ग के एक ओर पेड़ों के नीचे खड़ा करवा दिया। स्वयं रथ से उतर कुछ दूर पेड़ों के झुरमुट में जा प्रतीक्षा करने लगा। उसे वहाँ समीप प्रचला दिखाई नहीं दी। उसने चैत्य की ओर दृष्टि दौड़ाई। उधर से कोई आता दिखाई नहीं दिया। उसने समझा कि शायद प्रचला की नींद नहीं खुली। इससे कुछ काल तक प्रतीक्षा करना उचित समझ एक ओर खड़ा हो गया।

कुछ काल पश्चात् उसे एक व्यक्ति रथ की ओर आता दिखाई दिया। वह छिपे-छिपे रथ के समीप पहुँचा। वह देखना चाहता था कि यह कौन व्यक्ति है। वह व्यक्ति बहुत लम्बे ऊँचे डीलडौल वाला प्रतीत होता था। जब वह रथ को भली भांति देख चुका तो सारथी से पूछने लगा, "किसका रथ है?"

"गणपति महाराज का।"

"वे कहाँ हैं?"

"बताने की आज्ञा नहीं।"

"कब से खड़े हो, भाई?"

"दो घड़ी से ऊपर हो गए हैं।"

"किसी लड़की को यहाँ घूमते देखा है?"

सारथी हँस पड़ा और बोला, "इतने बीहड़ जंगल में ऐसे समय में लड़कियाँ घूमती हैं यहाँ?"

"तुम नहीं जानते, भाई! वह लड़की पगली है। रात को ऐसे ही घूमा करती है।"

"तो पगली की चिन्ता क्यों करते हो? जब थक जावेगी तो लौट आवेगी।"

भानुमित्र ने समझ लिया कि पूछने वाला कालमेघ है और प्रचला घर से लापता है। इससे उसने यह भी समझ लिया कि प्रचला कहीं छिपी होगी और जब तक कालमेघ यहाँ खड़ा है, वह निकलेगी नहीं। अतएव

उसे अब ले जाना असम्भव है। इससे उसे निराशा हुई। जब वह सारथी से पूछने वाला पुरुष ढूँढ़ता हुआ चैत्य की ओर गया तो भानुमित्र जंगल से निकल रथ पर सवार हो गंगापुरि की ओर चल दिया।

रथ वेग से गंगापुरि की ओर चला जा रहा था। लक्ष्मीबाई का पंथागार पीछे छूट गया था। इस समय भानुमित्र को ऐसा प्रतीत हुआ कि दूर मार्ग के बीचोंबीच कोई खड़ा, रथ रोकने को कह रहा है। भानुमित्र ने सारथी को रथ रोकने को कहा, "ठहरो और देखो यह कौन है?"

"कोई लड़की मालूम होती है।"

"तो रोको।"

प्रचला मार्ग के बीचोंबीच खड़ी हाथ उठा रथ रोकने को ऊँचे स्वर से पुकार रही थी। रथ रुकते ही उसने रथ में भानुमित्र को पहचाना और लपक कर रथ में सवार हो गई। भानुमित्र ने कहा, "अरे! तुम यहाँ आ गई हो?"

"वहाँ, कालमेघ मेरे पीछे पड़ा था।"

"हाँ, देखा था। अच्छा," सारथी से बोला, "ले चलो।" प्रचला के हाथ में एक कपड़ों की गठरी थी। उसे वह अपने घुटने से नीचे दबा आराम से बैठ गई। भानुमित्र ने पूछा, "यह क्या लिये जा रही हो?"

"इसमें मेरे वे कपड़े हैं, जो मैंने उस समय पहने हुए थे, जब कालमेघ ने मुझे जंगल में पड़ा पाया था।"

"कालमेघ को तुम्हारे आने का कैसे संदेह हुआ? मैं तो उसे वहाँ देख निराश होता जा रहा था।"

"मैं समझती हूँ इस पगली की कथा आपको विदित हो जानी चाहिए। मैं शायद दो तीन-दिन की थी जब कालमेघ मुझे जंगल में पड़ी देख उठा लाया था।

"जब मैं आठ-नौ वर्ष की हुई तो मैंने एक दिन कालमेघ से पूछा कि मेरा रूप उससे क्यों नहीं मिलता। तो वह कहने लगा कि मैं अपनी माँ के ऊपर गई हूँ। वह बहुत सुन्दर थी। इस पर मैंने पूछा कि मेरी सुन्दर माँ

ने उस कुरूप को क्यों वरा ? तो इसका उत्तर उसने नहीं दिया।

"एक दिन यही प्रश्न मैंने भूधर से भी किया। वह चैत्य का प्रबन्धक है। भूधर ने बहुत आनाकानी की; परन्तु मैंने जब बहुत हट किया तो उसने मेरे जन्म का रहस्य मुझे बता दिया। भूधर ने मुझे यह भी बताया कि मेरे उस समय के कपड़े कालमेघ के पास रखे हैं।

"मैंने एक दिन कालमेघ के सन्दूक की तलाशी ली। उसमें यह गठरी देखी। गठरी में एक सोने की कंठी थी। कंठी के नीचे एक छोटी-सी डिबिया बनी थी। वह डिबिया खोली तो उसमें एक बहुत सुन्दर स्त्री का चित्र बना था। इससे मुझे विश्वास हो गया है कि मेरी माँ का चित्र है।

"अब मैं कालमेघ को कहने लगी कि वह मेरा पिता नहीं है। वह मुझे पगली कहने लगा। मैं भी पगली बनने में लाभ समझने लगी। मुझे काम-धंधे और रोटी बनाने से छुट्टी मिल गई।

"अब मैं पन्द्रह वर्ष की हूँ। कालमेघ ने मेरा विवाह निश्चित कर दिया है। विहार के द्वार के एक प्रतिहार का लड़का, काला-कलूटा, छोटी-छोटी मिची हुई आँखें और सूखी-पतली टाँगें, अति बेडौल है, जो मेरे लिये वर ढूँढा है। मैंने उससे विवाह करने से इन्कार कर दिया है। इस पर भी विवाह की तैयारी हो रही है। मैं महाप्रभु के पास गई और उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा विवाह तो होगा ही। मैंने याचना की, तो उन्होंने मुझे भिक्षुणी बन जाने की राय दी।

"मेरा मन भिक्षुणी बनने को तैयार नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा कि यदि मेरा विवाह इस छोकरे के साथ किया गया तो मैं आत्मघात कर लूंगी। इस पर उन्होंने मुझे पगली कह टाल दिया।

"मेरे विवाह की तिथि में एक सप्ताह शेष है। कल मुझे आप मिले और आपने कहा कि आप मुझसे विवाह कर लेंगे। मेरा मन पक्का हो गया।

"कल, आप जब चले आये तो मैं आपके साथ आने की योजना बनाने लगी। मेरे मन में विचार आया कि अपने कपड़े साथ लेती चलूँ, जिससे कभी अपनी माँ का पता कर सकूं। यह विचार कर मैंने कालमेघ

का सन्दूक खोला और उसके कपड़ों के नीचे दबी यह गठरी निकाल कर जंगल के कुएं के पास घास में छिपा कर रख दी। यह कर जब घर लौटी तो कालमेघ नगर से लौट आया था और अपने खुले सन्दूक के समीप खड़ा विचार कर रहा था। मैंने उसे देखा तो मन कड़ा कर पूछा, 'क्या देख रहे हो ?'

"उसने पूछा, "तुमने खोला है इसे ?"

"मैंने कह दिया, 'नहीं।'

"इस पर उसने डाँट कर कहा, "तो किसने खोला है ?'

" 'मैं क्या जानूं ?' "

" 'इसमें एक गठरी थी ?' "

" 'मुझे नहीं मालूम।' "

"इस पर वह नरम हो गया। कहने लगा, 'पगली ! उस में एक सोने की कंठी तुम्हारे विवाह पर देने के लिये ही रखी थी।'

" 'तो मैं क्या करूं ?' "

"इस पर उसने मुझे घूर कर देखा। मेरा रंग उड़ गया। उसे कुछ संदेह हुआ तो छड़ी ले मेरे चूतरों पर दो-तीन लगाईं। मैं ऊंचे-ऊंचे रोने लगी। वह प्रतिहार, जिसके लड़के से मेरा विवाह होना निश्चित है, मेरे रोने का स्वर सुन आया तो कालमेघ को डाँटने लगा। कालमेघ ने उसे अपनी वस्तु गुम होने की बात नहीं बताई। मुझे छोड़ खाट पर जा लेट रहा। आजकल चैत्य में कोई उपासक नहीं ठहरा, इससे भोजन बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उसने भोजन नहीं बनाया। न मैंने खाया है न ही उसने खाया।

"सायं होने पर मैं भी अपनी खाट पर लेट रही। वह दिन-भर और रात-भर लेटा रहा। सोया या नहीं, मैं नहीं जानती। मुझे नींद नहीं आई। मुझे डर था कि कहीं सो गई तो समय पर जाग न सकूँगी।

"रात के तीसरे प्रहर का घण्टा बजते ही मैं उठी। वह अभी लेटा हुआ था। मैं चुपके से गृह के बाहर हो चैत्य से बाहर निकल आई। ज

मैं मार्ग की ओर आ रही थी तो मैंने पीछे घूमकर देखा। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि कालमेघ भी चैत्य के बाहर निकल रहा है। इस कारण मैंने कुएँ की ओर जाने के स्थान राज-मार्ग पर आ नगर की ओर जाना उचित समझा। कुछ दूर जा मैं एक पेड़ के पीछे छिपकर खड़ी हो गई। कालमेघ मार्ग पर पहुँच नगर की ओर चल पड़ा। वह अपने आगे-पीछे चारों ओर देखता जा रहा था। जब वह कुछ दूर चला गया तो मैं भाग कर कुएँ की ओर गई और गठरी उठा लाई। कालमेघ नगर की ओर से वापस लौट आया और पुनः चैत्य की ओर गया। इस समय आपका रथ आया और एक ओर खड़ा हो गया। मैं आपकी ओर आने ही वाली थी कि रथ की आहट पा कालमेघ चैत्य की ओर से लौट आया और सारथी से कुछ पूछने लगा। मैं दूर पेड़ के पीछे खड़ी देख रही थी।

"कालमेघ को वहाँ से टलते न देख मैंने सोचा कि आपके मार्ग पर आगे निकल जाऊँ। सो वहाँ से जंगल-ही-जंगल, मैं इधर को चल पड़ी। कुछ दूर आ सड़क पर निकल भाग खड़ी हुई ताकि चैत्य से इतनी दूर निकल आऊँ जितना सम्भव है।

"मैं समझती हूँ कि मेरी योजना सफल हुई है।"

भानुमित्र सोच रहा था कि यह अशिक्षित लड़की प्रभा आदि शिक्षित लड़कियों से अधिक चतुर है।

पाँच

मनुष्य-प्रकृति

: १ :

बौद्ध विहार में प्रचला के लोप हो जाने से भारी हलचल मच गई। कालमेघ ने दिन निकलते ही यह समाचार सबको बताना आरम्भ कर दिया था।

प्रातः की उपासना के पश्चात् भिक्षुणी कीर्ति महाप्रभु को इस समाचार से सूचित करने गई। महाप्रभु ने यह समाचार गम्भीर भाव में सुना और कीर्ति के कहने के उत्तर में केवल 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का मन्त्र उच्चारण कर दिया।

कीर्ति ने कहा, "भगवन्! इस प्रकार शान्ति-शान्ति कहने से कुछ नहीं बनेगा। लड़की को ढूँढने का कुछ उपाय करना चाहिए। गणपति से जाकर कहना चाहिए।"

"और यदि गणपति स्वयं ही लड़की को उठाकर ले गया हो तो?"

इस सूचना से तो कीर्ति भौंचक खड़ी रह गई। वह गणपति से यह आशा नहीं करती थी। अपनी बात की पुष्टि में महाप्रभु ने कहा, "जब प्रचला लोप हुई है, उस समय गणपति का रथ गगापुरि की ओर जाता देखा गया है।"

"यह तो अनर्थ हो रहा है भगवन्!"

"शान्ति, देवी! प्रत्येक बात अपने समय पर परिपक्व होती है।"

कीर्ति जब लौटकर निवास-गृह में आई तो अन्य भिक्षुणियाँ महाप्रभु

का विचार जानने को उसके पास एकत्रित हो गई। कीर्ति ने बताया, "महाप्रभु कहते हैं कि गणपति स्वयं पगली को हर ले गए हैं।"

"यह तो अनर्थ है। प्रचला की आयु बहुत छोटी है।" सब कह उठीं।

इन एकत्रित हुई भिक्षुणियों में एक नीलमणि थी। उसने कहा, "बेचारी बच गई है।"

सब घूमकर नीलमणि का मुख देखने लगीं। नीलमणि ने अपना आशय समझाने के लिए कहना जारी रखा, "कालू प्रतिहार के कुरूप लड़के से विवाह होने वाला था। अब किसी सभ्य की अर्द्धाङ्गिनी बनेगी।"

"अर्द्धाङ्गिनी?" कीर्ति ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा।

"वह कुछ काल तक तो गणपति की वासना का भोग बनेगी, पश्चात् नगर-वधू के भवन में वेश्यावृत्ति करेगी।" एक और ने कहा।

"यहाँ काले-कलूटे दुबले कालू के पुत्र की वासना-तृप्ति करती। यदि उससे असन्तुष्ट होती तो भिक्षुणी बन जाती और फिर यहाँ जो होता है, सो किसको मालूम नहीं। कम-से-कम खाने, पहनने और आराम से जीवन व्यतीत करने को तो पाएगी।"

"क्या खाना-पहनना ही जीवन का ध्येय है?" कीर्ति ने पूछा।

"ध्येय मैं नहीं जानती। कहते हैं मनुष्य-जीवन का लक्ष्य निर्वाण है। परन्तु एक बात मैं जानती हूँ कि बिना खाये-पीये कोई रह नहीं सकता। क्या तुम बिना खाये रह सकती हो, कीर्ति दीदी?"

"कैसी बातें करती हो नीलमणि! तुम? एक होती है जीवन की माँग। उसे पूर्ण करना विवशता की बात है। यह विवशता की बात जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकती।"

"यह ठीक है, दीदी! परन्तु यह विवशता कालू प्रतिहार के पुत्र से दूर नहीं हो सकती थी। वह गणपति के महल में मिट जावेगी।"

"परन्तु क्या तुम यह नहीं समझ सकती हो कि खाने-पहनने का क्या मूल्य देना पड़ेगा उसे वहाँ? पहले गणपति फिर न जाने किस-किसके आगे

मूल्य चुकाना पड़ेगा।"

"परन्तु यहाँ तो बात उल्टी है कीर्ति दीदी! मूल्य तो चुका दिया जाता, परन्तु भोजन इत्यादि फिर भी न मिलता।"

महाप्रभु ने कीर्ति के सम्मुख तो गम्भीर भाव बनाए रखा, परन्तु उसके जाते ही एक सेवक को भेज भूधर को बुला भेजा।

भूधर आया तो उसको सब घटना, जैसी कालमेघ ने बताई थी, बताकर कहा, "मेरा विचार है कि गणपति प्रचला का हरण कर ले गया है। तुम नगर-पालक को यह सूचना दे दो और कहो कि तुम्हारा सन्देह देवधर्मा गणपति पर है।"

"इससे क्या लाभ होगा, प्रभु?"

"सूचना लिखाने से नगर में गणपति के विरुद्ध असन्तोष बढ़ेगा।"

"परन्तु प्रचला तो नहीं छूटेगी। साथ ही गणपति के विरुद्ध बात कहने में लोग मेरी भी तो निन्दा करेंगे।"

"तुम तो केवल भैंसे ही रहे, भूधर! तुम नीति नहीं समझते। संसार की रीति यह है कि अपना ढोल पीटते जाओ, चाहे कोई सुने अथवा न सुने। अन्त में तो लोगों को सुनना ही पड़ेगा।"

भूधर नगरपालक के कार्यालय में गया और उसे अपना समाचार दिया। नगरपालक ने जब गणपति का नाम सुना तो अचम्भे में भूधर का मुख देखने लगा। जब भूधर सूचना लिखाने पर हठ करता रहा तो नगरपालक ने कहा, "अच्छी बात है, लिख लेता हूँ। परन्तु सेठ जी! बहुत लम्बी हो गई है जिह्वा आपकी।"

सूचना लिखी गई और लड़की की खोज आरम्भ हो गई। गणपति को भूधर से लिखाई सूचना का पता लगा तो खोज और भी कठोर कर दी गई। इसी दिन सायंकाल यह सूचना मिली कि एक आनन्दप्रिय प्रहर दिन गये एक देहाती गँवार लड़की और रथ के साथ गंगा-पार गया है।

इस सूचना के मिलने पर गणपति को यह समझ आया कि इस लड़की का भी षड्यन्त्र के साथ सम्बन्ध होगा। चम्पा को तो गणपति ने

भानुमित्र के कहने के अनुसार मध्याह्न समय रथ भेजकर पकड़वा लिया था।

इस सूचना के मिलने पर तो महाप्रभु को बहुत ही अचम्भा और चिन्ता लग गई। उसके विचारानुकूल भानुमित्र चम्पा के साथ मध्याह्न के समय वैशाली से चला है और नगरपालक की खोज के अनुसार भानुमित्र प्रचला के साथ मध्याह्न से पूर्व ही गंगा पार कर चुका था।

भूधर को जब यह समाचार मिला तो वह अत्यन्त भयभीत हो कुछ काल के लिए वैशाली छोड़ तीर्थाटन के लिए चला गया।

: २ :

गणपति देवधर्मा ने चम्पा को भानुमित्र के कहने पर पकड़वा लिया था। उस दिन मध्याह्न के समय वह अपना सामान ले रथ में बैठी तो रथ वेग से चल पड़ा। जब रथ नगर के बाहर निकलने लगा तो चम्पा ने सारथी से पूछा, "किधर जा रहे हो?"

"महामात्य भानुमित्र जी के पास।"

"वे किधर हैं?"

"अयोध्या के मार्ग पर गंगा-तट पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

चम्पा का चित्त कुछ काल के लिए शान्त हुआ। रथ वेग से चलता गया। दो मुहूर्त-भर जाने के पश्चात् उसकी चिन्ता फिर बढने लगी। उसने फिर पूछा, "किधर जा रहे हो, सारथी?"

"गंगा-तट पर, जहाँ महामात्य आगे गये हैं।"

"गंगा इधर कहाँ है? तुम तो दक्षिण की ओर जा रहे हो?"

"यह मार्ग ही ऐसा है, देवी!"

"मुझे तुम पर सन्देह हो रहा है।"

"सन्देह की कोई बात नहीं, देवी! अभी एक घड़ी-भर और ठहरो और हम अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँच जावेंगे।"

"पर वह गंगा-तट नहीं होगा। ठहरो!"

सारथी ने रथ को और वेग से भगाना आरम्भ कर दिया। केवल

यह कहा, "थोड़ा और धीरज करो, सब कुछ ठीक हो जावेगा।"

चम्पा इस बात के लिए तैयार नहीं थी, परन्तु कर भी क्या सकती थी। रथ से कूदती तो हड्डी-पसली टूट जाती। अपने पास कुछ शस्त्र भी नहीं रखती थी। इस कारण चुपचाप बैठी रही और अपने भाग्य में जो बदा है, वह होगा ही, मान भागते रथ में बैठी चलती गई।

रथ एक दुर्ग के बाहर जाकर खड़ा हुआ तो ड्योढ़ी पर खड़े सुभट्टों ने चम्पा को दुर्ग में ले जाकर बन्दी बना लिया। इसके दो घड़ी पश्चात् दुर्ग का संरक्षक चम्पा से मिलने आया। उसने चम्पा देवी से कहा, "देखो देवी! तुम नगर-वधू के गृह में रहती हुई गणपति और वैशाली के भेद की बातें महाप्रभु कल्याण को बताती थीं। वैशाली में यह भारी अपराध माना जाता है। परन्तु एक स्त्री को किसी राजनीतिक अपराध में भाग लेते देख उसकी पृष्ठ-भूमि में कोई प्रेम-गाथा के होने की आशंका की जाती है। इससे स्त्री को दण्ड का भागी नहीं माना जाता। साथ ही एक बात यह है कि जिस पुरुष का उस स्त्री से सम्बन्ध हो उसे ही स्त्री के भाग का दण्ड दे दिया जाता है।

"ऐसी परिस्थिति में तुम क्या चाहती हो, यह जानने के लिए गणपति देवधर्मा का आदेश आया है। यदि तुम चाहती हो कि तुम्हारे प्रेमी को दण्ड से मुक्त कर दिया जाय तो तुम्हें दो बातें करनी पड़ेंगी। एक तो अपनी पूर्ण सत्य-कथा लिखा दो और दूसरे यह कि जिस नगर में तुम्हारे रहने का प्रबन्ध किया जाय वहाँ तुम रहो। तुम्हारे प्रेमी का भी, तुम्हारे साथ रहने का प्रबन्ध कर देंगे।"

चम्पा ने कहा, "मुझे पूर्ण स्थिति पर विचार करने का अवसर दिया जाय।"

इस पर दुर्ग के संरक्षक ने उसे बन्दी के रूप में दुर्ग में रहकर विचार करने को तीन दिन की अवधि दे दी।

तीन दिन में इसी दुर्ग में कर्णदेव भी बन्दी बनाकर लाया गया और फिर दोनों से दुर्ग के संरक्षक ने बातचीत की। कर्णदेव चम्पा से

अधिक भयभीत प्रतीत होता था। उसे भूधर के भयभीत हो तीर्थाटन को चले जाने की बात विदित थी। उसे कुछ दिन के लिए वैशाली से महाप्रभु के तीर्थाटन को जाने का समाचार भी मालूम हो गया था। इसका अर्थ वह यही समझता था कि महाप्रभु के सहायकों पर कोई भारी विपत्ति आने वाली है। इससे उसने चम्पा से राय कर गणपति की शर्तें स्वीकार करने का निश्चय कर लिया।

चम्पा की कथा बहुत साधारण थी। वह एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार की लड़की थी। उसका विवाह कर्णदेव के पड़ोसी सेठ के लड़के से हो गया था। कर्णदेव से उसका प्रेम हो गया तो घर से भाग खड़ी हुई। पश्चात् धनी बाप की पुत्री के पालन-पोषण का भार न सह सकने के कारण कर्णदेव को महाप्रभु की सेवा में गुप्तचर का काम करना पड़ा और चम्पा को नगर-वधू की सेवा।

चम्पा को नगर-वधू के भवन में खाने-पहनने को तो खूब मिलता था; परन्तु लोगों को प्रसन्न करने के लिये उनकी इच्छा-पूर्ति भी करनी पड़ती थी। जब मृदुला नगर-वधू बनकर आई तो उसकी जान छूटी। मृदुला ने उसे अपनी सहायता के लिये अपने साथ रख लिया था। मृदुला की उस पर अपार कृपा थी। इसी कारण कर्णदेव से मिलना-जुलना विनोद भवन के भीतर ही होने लगा था।

चम्पा देवी को कर्णदेव के गुप्तचर होने का ज्ञान नहीं था। वह तो कर्ण-देव को प्रेमवश विनोद भवन की सब बातें बताया करती थी। परन्तु कर्णदेव उन बातों को महाप्रभु को बता कर इनाम पाता था।

जब चम्पा को विदित हुआ कि महाप्रभु राज्य-विरोधी षड्यंत्र कर रहा है और कर्णदेव उससे बताई बातें उसे बताता रहा है तो उसे बहुत शोक हुआ और उसे अपनी मृदुला के प्रति घोर कृतघ्नता प्रतीत हुई।

जब कर्णदेव भी पकड़ा हुआ आया तो उसके मन में कर्णदेव के प्रति भय समा गया। इससे उसने दुर्ग के संरक्षक का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

कर्णदेव और चम्पा दोनों को किन्नर देश में राज्य की ओर से गुप्तचर का काम करने के लिये भेज दिया गया। कर्णदेव का वेतन नियत कर दिया गया और उन्हें वैशाली लौट आने की मनाही कर दी।

चम्पा और कर्णदेव की कथा से देवधर्मा को महाप्रभु के षड्यंत्रकारी होने का एक और प्रमाण मिल गया। इससे गणपति ने विहार के भीतर की बातें जानने के लिये कई गुप्तचर नियत कर दिये।

: ३ :

भानुमित्र प्रचला को लेकर मध्याह्न समय, अयोध्या में पहुँचा। महामात्य को एक लड़की साथ लेकर आया देख भवन के कर्मचारियों ने समझा कि यह कोई दासी साथ लाये हैं। परन्तु उनका यह भ्रम तब दूर हुआ जब महामात्य रथ से उतर, प्रचला को साथ ले अपने भवन के सबसे उत्तम सुसज्जित आगार में ले जाकर तथा बैठा कर बोला, "प्रचला देवी! यह तुम्हारे रहने का स्थान है। जब तुम्हारा विवाह हो जावेगा, तब तुम मेरे आगार में पधारोगी।"

"परन्तु आपने तो भूधर को कहा था कि आप बाहुक देश के रहने वाले हैं।"

"परन्तु मेरा कार्य तो यहाँ अयोध्या में है।"

"तो आपकी पहली स्त्री कहाँ है?"

"तो इसी समय उससे मिलोगी? इन्हीं मैले कपड़ों में?"

मैले कपड़ों की बात सुन प्रचला का मुख लज्जा से लाल हो गया। वह अपने कपड़ों और उस आगार में रखे पलंग पर श्वेत रेशमी चादर को देखने लगी। इतने में उसकी दृष्टि सामने दीवार के साथ लगे दर्पण की ओर गई। उसमें अपना मुख और कपड़ों को देखा तो उसकी हँसी निकल गई। भानुमित्र ने उसे अपने मुख दर्पण में देख हँसते देख, पूछा, "क्यों, क्या बात है प्रचला?"

वह चुप कर गई और लम्बा साँस लेकर बोली, "कुछ नहीं, प्रभु! आप बहुत दयालु हैं।"

भानुमित्र उसके मन के भावों को समझ गया। वह अपने को, अपने आसपास की वस्तुओं से बहुत भिन्न और निकृष्ट समझने लगी थी। यह भाव वह उसके मन में बैठने नहीं देना चाहता था। इससे उसने तुरन्त बात बदलने के लिए ताली बजाई। एक सेवक आया तो भानुमित्र ने उसे कहा, "शीघ्र राजमहल में जाओ और महारानी जी को कहला भेजो कि महामात्य जी ने दो परिचारिकाएँ माँगी हैं। घर में अतिथि आये हैं और वे उनकी सेवा-सुश्रूषा के लिए चाहियें।"

सेवक चला गया। प्रचला का मस्तिष्क, महारानी से परिचारिकाएँ माँगने की बात सुन चकराने लगा। वह नहीं समझ सकी थी कि यह कौन महापुरुष है, जो राजमहल से महारानी से दासियाँ माँगने की धृष्टता कर सकता है। इससे उसने साहस कर पूछा, "भगवन्! आप हैं कौन?"

"देखो प्रचला! इस पलंग पर बैठ जाओ।"

प्रचला बैठने में संकोच करती थी। भानुमित्र ने कहा, "तुम्हें इस गृह में राज्य करना है। यदि तुमने मन को दृढ़ कर अपने अधिकार पाने में संकोच किया तो सेवक तुम्हारी हँसी उड़ायेंगे। बैठ जाओ।"

प्रचला बैठ गई। पलंग पर बहुत कोमल गद्दा था। उस कोमल स्पर्श से उसे ऐसा अनुभव हुआ कि यह उसका स्थान नहीं है। वह फिर खड़ी हुई। "और कोई स्थान नहीं है?" उसने पूछा।

"क्यों, क्या हुआ है? डरो नहीं, यह तुम्हारे सोने के लिये है। बैठो।"

प्रचला विवश हो बैठ गई। भानुमित्र उसके सम्मुख एक चौकी ले बैठ गया। "देखो," वह बताने लगा, "यह अयोध्यापुरी है। मैं यहाँ का महामात्य हूँ। समझती हो?"

"महामात्य क्या होता है?"

"वैशाली में मेरे जैसी पदवी वाले को महामन्त्री कहते हैं, जो गणपति की अनुपस्थिति में राज्य-कार्य चलाता है। यहाँ गणपति नहीं होता। यहाँ महाराज हैं। मैं प्रधान मन्त्री हूँ। राजा के स्थान पर मैं राज्य-कार्य करता हूँ।"

प्रचला यह सुन अवाक् मुख हो, फिर खड़ी हुई। भानुमित्र ने उसे पुनः बैठने को कहा, "बैठो, बैठो प्रचला! यह क्या कर रही हो? अभी कोई सेवक आजाएगा तो क्या समझेगा? बैठो।"

प्रचला फिर पलंग पर बैठ गई और बोली, "तो आप बहुत बड़े व्यक्ति हैं। आपने मुझे वहाँ क्यों नहीं बताया?"

"बताता तो तुम क्या करतीं?"

"आपके साथ विवाह के लिये न आती। मैं एक पाचक की पाली लड़की और आप हैं यहाँ के प्रधान मन्त्री। कितनी धृष्टता कर बैठी हूँ।"

"चुप रहो, प्रचला! तुम अपना मूल्य नहीं जानतीं। तनिक दासियों को आने दो, फिर देखो तुम्हें मैं क्या कुछ बनवा देता हूँ।

"मैं बाजार से तुम्हारे लिये वस्त्र-भूषण और शृंगार का सामान मँगवा देता हूँ और तुम्हें नहा-धुला वे वस्त्र पहना, जब दर्पण के सम्मुख खड़ा करेंगी, अपने को दर्पण में देख बौद्ध चैत्य के पाचक कालमेघ से पाली हुई प्रचला को भूल जाओगी। कल तुम्हारा विवाह होगा। पश्चात् तुम्हारी शिक्षा का काम मैं अपने हाथ में लूँगा। देखो, तुम अवध के महामात्य की पत्नी बनने वाली हो। तुम्हें यह समझ लेना चाहिये कि संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं, जिसके भोग करने के तुम योग्य नहीं। स्मरण रखो बड़ा वही होता है, जो बड़ा होना चाहता है। तुम अवध की स्त्रियों में द्वितीय पदवी पर हो। प्रथम अवध की महारानी श्रीमती मल्लिका देवी हैं और दूसरे स्थान पर रानी प्रचला देवी, श्री भानुमित्र महामात्य अवध की पत्नी है।"

इतने में सेवक राजमहल से दासियों को ले आया। भानुमित्र ने उनको देख कहा, "देखो, यह देवी प्रचला मेरी होने वाली धर्मपत्नी हैं। अभी मैं कपड़े वाले लोगों को तथा जौहरी को बुलाता हूँ। तुम इन्हें स्नानादि करवा बढ़िया-से-बढ़िया वस्त्र-भूषण पहनवाकर, इनकी सेवा में रहना।"

इतना कह भानुमित्र चौकी से उठ, प्रचला से बोला, "देवी! तुम तैयार हो जाओ। मैं तनिक महाराज से भेंट कर आता हूँ।"

कपड़ा बेचने वाले आये तो दासियों ने महारानी के योग्य प्रचला के कपड़े खरीद लिये। कपड़ा सीने वाली आई तो उन्हें प्रचला का नाप दिलवा कपड़े तैयार करने की आज्ञा दे दी। जौहरी आया तो सिर से पाँव तक जड़ाऊ भूषण खरीद दिए।

प्रचला को स्नानागार में ले जा, तेल-उबटन लगा, स्नान कराया। पश्चात् कपड़े पहना सुरमा, मिस्सी, सिंदूर लगा पाँवों पर महावर लगा दी। इस प्रकार सजधज के पश्चात् भूषण पहना दिये। जूड़े पर जूही के फूलों का गुच्छा बाँधकर, उसे उसी आगार में लाकर खड़ा कर दिया। प्रचला ने दर्पण में जो अपने को देखा, तो सत्य ही अपने को एक नवीन अति सुन्दर कन्या समझा।

इस समय भानुमित्र महाराज से भेंट कर लौट आया। वह स्वयं प्रचला को देख चकित रह गया। प्रचला उसके अपने अनुमान से भी अधिक सुन्दर प्रतीत हुई। उसे देख उसका हृदय हर्ष से भर गया। उसने दासियों को भोजन परोसने की आज्ञा दे बाहर भेज दिया और स्वयं प्रचला को बोला, "मैं सत्य कहता था, प्रचला! तुम अद्वितीय सुन्दरी हो।"

प्रचला भी अपना रूप-रंग देख फूली नहीं समाती थी। एक बात वह समझ रही थी कि उसके भाग्योदय होने में यह महापुरुष ही कारण है। अतएव वह घुटनों के बल उसके चरणों पर झुक प्रणाम करने लगी। भानुमित्र ने उसे भुजाओं से पकड़ उठा, छाती से लगा कहा, "तुम मेरे हृदय की रानी हो देवी!"

: ४ :

अगले दिन नगर से पुरोहित बुला भानुमित्र ने प्रचला से विवाह कर लिया। विवाह के समय बहुत आडम्बर नहीं किया गया। न ही उस समय बहुत लोग बुलाये गए। घर के सेवक और भद्रसेनादि मन्त्रीगण ही आमन्त्रित थे।

विवाहोत्सव के पश्चात् भानुमित्र महाराज से मिलने गया। भानुमित्र

का विचार था कि वह अपने मुख से अपने विवाह का समाचार महाराज और महारानी को देगा, परन्तु विवाह का समाचार राजमहल में पहले ही पहुँच चुका था। महाराज और महारानी नगर के शिष्ट लोगों से भेंट कर उठे ही थे कि भानुमित्र वहाँ पहुँच गया। उसे आया देख मल्लिका की हँसी निकल गई। महाराज ने कहा, "नवीन वर भानुमित्र ! बहुत-बहुत बधाई हो। बहू कैसी है, मित्र ?"

"विवाह के समय महाराज और महारानी को कष्ट देना उचित न समझ आज सायं वर-वधू को आशीर्वाद देने को सेवक के घर पधारने के लिए निवेदन करने आया हूँ।"

"हम तो स्वयं ही विचार कर रहे थे कि जब तुम घर पर न होओ, हम वहाँ जा धमकें और बहू रानी के दर्शन कर आवें। सुना है बहुत सुन्दर है वह।"

"हाँ, महाराज की कृपा है। मैं समझता हूँ कि अपनी प्रथम विवाहिता के निर्वाचन में मैंने भूल नहीं की।"

प्रथम विवाहिता का शब्द सुन महारानी को राका का स्मरण हो आया। इस कारण पूछने लगी, "पर राका के साथ विवाह के निश्चय का क्या हुआ ?"

"वह निश्चय अनिश्चय नहीं हुआ।"

"बहुत निर्दयी हो, भानुमित्र !"

"महारानी का यह भ्रम है। इसका निवारण तो समय ही कर सकता है।"

बात आगे नहीं चली। महाराज और महारानी भानुमित्र से झगड़ना नहीं चाहते थे। उसी सायंकाल महाराज और महारानी महामात्य के निवास-गृह पर बधाई देने पहुँचे। महाराज और महारानी के वहाँ पहुँचने का समाचार सुन नगर के प्रायः प्रतिष्ठित व्यक्ति महामात्य को बधाई देने और महामात्य की रानी को भेंट देने उपस्थित हो गए। स्त्री-पुरुष सैकड़ों की संख्या में आये थे।

भानुमित्र ने भी गृह का सबसे बड़ा आगार साफ करवा, फूल-बेलों से सुशोभित और अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थों की सुगन्धि से आवासित करवा रखा था।

महारानी और महाराज अपने सर्वोत्तम रथ पर सवार हो, दो सौ अश्वारोहियों के साथ महामात्य के सुसज्जित गृह के बाहर जा पहुँचे। उन्हें आया देख महामात्य ने बाहर आ महाराज और महारानी का स्वागत किया। उन्हें रथ से उतार गृह के भीतर ले जा, प्रस्तुत आगार में ले जाकर सोने की चौकियों पर बैठाया।

महारानी और महाराज के चौकियों पर बैठ जाने पर महामात्य ने प्रचला को बुला भेजा। वह रत्नजड़ित रेशमी वस्त्र पहने और भूषणों से लदी, हाथ में सोने की थाली में घी का दीपक जलाये हुए लेकर आई और महारानी तथा महाराज की आरती उतार, थाली उनके चरणों में रख महारानी की चौकी के समीप भूमि पर बैठ गई।

महारानी ने उसे आशीर्वाद दिया, उसके मुख को उठाकर देखा और सन्तोष अनुभव किया। पश्चात् महामात्य दो मुक्ताहार लाया। एक उसने महाराज के गले में डाल दिया और दूसरा प्रचला ने महारानी के गले में डाल दिया। अब महाराज ने अपने भृत्यों को वे भेंट लाने के लिए कहा, जो वे रथ में अपने साथ महामात्य और उसकी नवविवाहिता को देने लाये थे।

एक बहुत बड़े स्वर्ण-थाल में महामात्य और प्रचला के लिए कपड़े तथा आभूषण थे। इस भेंट के दिये जाने के पश्चात् नगर के प्रतिष्ठित लोगों और उनकी स्त्रियों ने महामात्य और प्रचला को भेंट दीं।

आकर भेंट देने वाले लोगों में पं० मैलन्द भी था। वह अपने साथ अपनी लड़की राका को भी लाया था। पं० मैलन्द ने संस्कृत की प्रथम पाठ्य-पुस्तक एक स्वर्ण-पात्र में रखकर दी। इस कटाक्ष को मल्लिका ने देखा और मुस्कराकर प्रचला के मुख पर देखा; परन्तु उसे या तो इसकी कटुता समझ ही नहीं आई या उसने ध्यान ही नहीं दिया। महामात्य मैलन्द के उपहार को देख हँस रहा था।

महाराज ने भी यह देखा था और भानुमित्र का ध्यान दूसरी ओर करने के लिए पूछ लिया, "मित्र ! यह अनमोल रत्न कहाँ से पा गए हो ?"

"वैशाली के बाहर एक कीचड़ के तालाब में यह कमल का फूल दिखाई दिया तो उखाड़ लाया हूँ।"

"परन्तु इसके मानसिक विकास के विषय में क्या है ?"

"वहाँ के लोग इसको पगली कहते थे।"

"यह तो ठीक नहीं हुआ। पं० मैलन्द ने इसी कारण कटाक्ष किया है।"

"महाराज ! यदि कोई इतना भाग्यशाली न हो कि उसे एक ही पत्नी सर्वगुण-सम्पन्न मिले, तो वह तीन गुणों वाली तीन पत्नियाँ वर, त्रिगुणात्मक प्रकृति का भोग क्यों न करे ?"

महाराज इस व्याख्या को सुन हँस पड़े। पश्चात् कुछ सोचकर बोले, "हमें भय है कि तीनों पत्नियों के तीनों दोष मिलकर कहीं अवध के महामात्य को सन्निपात न कर दें।"

"यह रोग तो महाराज ! पूर्व जन्म के दुष्कर्मों का फल ही होता है, जिसे कोई टाल नहीं सकता। इस पर भी मैं तो गुणों का ही समावेश करने का यत्न कर रहा हूँ।"

इस समय सेवक और सेविकाएँ सोने-चाँदी की थालियों में मिठाई बाँटने लगीं। स्त्रियाँ उठकर दूसरे आगार में चली गईं और पुरुष मिठाई के साथ माधवी पीने लगे।

: ५ :

राका भी अपने पिता को छोड़ दूसरे आगार में चली गई। वहाँ स्त्रियों में बैठने में अरुचि अनुभव कर, वह साथ के एक रिक्त आगार में चली गई। वहाँ भूमि पर कालीन इत्यादि बिछे थे। वह वहाँ बैठ अपने मन में उठ रहे अनेकानेक विचारों का मन्थन करने लगी।

अचला को उसने भी देखा था। इस समय भूषण-वस्त्रों में और शृंगार

किये हुए तो वह अद्वितीय सुन्दरी प्रतीत होती थी। तो क्या वे स्वप्न, जो वह कई दिनों से देख रही थी, सब व्यर्थ गए हैं ?

वह सुन चुकी थी कि प्रचला पढ़ी-लिखी लड़की नहीं है। इससे वह भानुमित्र के प्रचला को उस पर उपमा देने पर विस्मय कर रही थी। वह सोच रही थी कि भानुमित्र विवाह-सम्बन्ध को केवल शारीरिक सम्बन्ध ही समझता है। इससे उसे भानुमित्र एक छोटे विचारों का व्यक्ति प्रतीत हुआ।

इस समय मल्लिका प्रचला को साथ लिये हुए वहाँ आ पहुँची। वह भी किसी एकान्त स्थान पर बैठ प्रचला से बातें कर, उसके मानसिक विकास का अनुमान लगाना चाहती थी।

राका को इस प्रकार एकान्त में गम्भीर बैठे देख, उसके मन के भावों को समझ गई। राका ने जब मल्लिका को देखा तो उठकर उसका सत्कार किया। महारानी ने स्वयं बैठते हुए कहा, "बैठो राका। यह देखो किसको ले आई हूँ।"

राका ने प्रचला को सिर से पाँव तक देखा। फिर उसके विषय में अधिक जानने के लिए, उसे अपने और महारानी के मध्य में बैठा लिया।

मल्लिका ने प्रचला से पूछा, "बहन ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

"प्रचला।" आँखें नीची किये हुए उसने उत्तर दिया।

"बहुत सुन्दर नाम है।" राका ने कहा।

"और काया भी बहुत सुन्दर है।" मल्लिका ने प्रचला के छोटे-छोटे हाथों को देखते हुए कहा।

"आपका धन्यवाद है, जो आप ऐसा समझती हैं।"

"शृंगार तो बहुत सुन्दर किया है ?" राका ने गम्भीर साँस खींचते हुए कहा।

"यह महारानी जी की दासियों का काम है। मैं इस विषय में कुछ नहीं जानती।"

"तो वे दासियाँ तुम्हें धोखा भी दे सकती हैं ?"

"पर महामात्यजी को धोखा नहीं दे सकतीं। वह उनकी भूल जान लेंगे।"

"भला यह बताओ, प्रचला ! तुमने पहले महामात्य जी से प्रेम अनुभव किया था या उन्होंने तुमसे ?"

"भला इसका उत्तर मैं कैसे जान सकती हूँ ? मैं तो अपने मन की ही बात जानती हूँ। जब मैंने उन्हें देखा तो मेरे मन में तुरन्त यह बात उठी कि ये मेरे पति हों तो बहुत अच्छा हो। उनके मन में क्या विचार उठे होंगे, मैं कैसे बता सकती हूँ। मैं उस समय बहुत मैले कपड़े पहने थी। मेरे बाल बिखरे हुए थे और सिर-पाँव से नंगी थी।"

"इस पर भी वे तुम्हें ले आए ?"

"उन्होंने मुझे कहा कि मैं वैशाली की नगर-वधू से अधिक सुन्दर हूँ। मैंने कहा, एक निर्धन अनाथ की हँसी न करिए। इस पर उन्होंने कहा कि वह मुझसे विवाह कर लेते यदि उनकी एक और पत्नी न होती।"

मल्लिका खिलखिलाकर हँस पड़ी। राका का मुख लज्जा से लाल हो गया। प्रचला ने मल्लिका को हँसते हुए देख पूछा, "क्या मैंने कुछ भूल कर दी है ?"

"नहीं ! मैं तो यह सोच हँसी थी कि तुम यह जान कर भी कि उनकी एक और पत्नी है, उनसे विवाह के लिये तैयार हो गई थीं ?"

"मैं इसे बुरी बात नहीं समझती। मैंने जब यह सुना तो बहुत प्रसन्न हुई थी।"

"प्रसन्न ? भला क्यों ?"

"तो यह प्रसन्नता की बात नहीं है क्या ? जब एक पुरुष की दो स्त्रियाँ हों तो उनमें परस्पर प्रेम विशेष होना स्वाभाविक नहीं क्या ? हम दो साथिन होंगी। परस्पर बैठने, बातें करने और खेलने-कूदने का अवसर मिलेगा। हम एक-दूसरे के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होंगी।"

मल्लिका ने समझा कि भानुमित्र ने अपने विकृत विचारों से इसको प्रभावित कर रखा है। जब इसकी कोई सौत होगी तब यह अनुभव करेगी कि इसकी धारणा अशुद्ध है। उसे निपट अनाड़ी समझ चुप कर रही।

प्रचला ने महारानी को चुप और राका को अपने विचारों में खोया देख

कहा, "मैंने अपने गँवारों के से विचार प्रकट कर आपको अप्रसन्न कर दिया है।"

"नहीं, अप्रसन्न नहीं प्रचला! केवल विस्मित किया है।"

"अच्छा, आप महामात्य जी को कब से जानती हैं?"

"ग्यारह वर्षों से।" मल्लिका का मुख यह बताते समय लाल हो गया। परन्तु प्रचला उधर नहीं देख रही थी। उसने हाथ की उंगलियाँ मरोड़ते हुए पूछा, "वे कैसे व्यक्ति हैं? मेरा अभिप्राय है, स्वभाव के कैसे हैं?"

"बहुत अच्छा स्वभाव रखते हैं।"

"तो उन्होंने अपने पहले विवाह के विषय में सत्य ही कहा होगा?"

"नहीं, उनका पहले कोई विवाह नहीं हुआ है। हाँ उनका एक और लड़की से विवाह होने वाला था। अब वह स्वीकार करेगी अथवा नहीं, कहना कठिन है।"

"बहुत विचित्र है?" विस्मय की मुद्रा बना प्रचला ने पूछा, "वह लड़की क्यों विवाह नहीं करेगी? जब वे बहुत अच्छे हैं तो उनको वर कर छोड़ देना तो बुद्धिमत्ता नहीं। मुझे वह लड़की मिले तो मुझे विश्वास है कि मैं उसे मना लूँगी।"

इस पर राका और मल्लिका दोनों हँसने लगीं।

: ६ :

महाप्रभु कल्याण ने जब सुना कि प्रचला को ले जाने वाला भानुमित्र है तो वह चम्पा और कर्णदेव के विषय में चिन्ता अनुभव करने लगा। दोनों का पता नहीं मिल रहा था। कर्णदेव को महाप्रभु की बहुत सी योजनाओं का ज्ञान था, इससे उसके भानुमित्र अथवा देवधर्मा के हाथ आ जाने से, उसकी सब योजनाओं पर पानी फिर जाने की सम्भावना थी। केवल इतना ही नहीं, प्रत्युत् उससे उसके अपने पूर्ण बौद्ध विहारों के विरुद्ध भी किसी कार्यवाही की आशा की जा सकती थी।

अतएव तीन दिन पर्यन्त तो वह बिहार से लोप रहा। परन्तु जब उसकी खोज में कोई राज्य-कर्मचारी नहीं आया तो वह चम्पा और कर्णदेव की खोज में निकल पड़ा। उसे विश्वास था कि नगरवधू इस विषय पर अवश्य प्रकाश डालेगी।

एक दिन सायं समय वह विनोद भवन के द्वार पर जा पहुँचा। एक बौद्ध भिक्षु को नगरवधू के प्रासाद के सम्मुख खड़ा देख, द्वार पर खड़े प्रतिहार विस्मय में एक-दूसरे का मुख देखने लगे।

महाप्रभु ने "बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि" की मधुर ध्वनि की और भवन की दूध समान श्वेत सीढ़ियों पर चढ़ फाटक के भीतर बड़े आगार में जा कर खड़ा हो गया। उसके वहाँ पहुँचते ही नियमानुसार दासी आई और पूछने लगी,

"भगवन्! क्या चाहिये?"

"नगरवधू से काम है।"

"महाराज पधारिये।" इतना कह दासी ने भवन में आगे चलने को निमन्त्रण दे दिया।

"वह यहाँ नहीं आ सकती क्या?"

"आ सकती हैं, परन्तु आपका आदर-सत्कार कर, बैठाना हमारा कर्तव्य है।"

"नहीं, यहाँ ही बुला लाओ।"

दासी तुरन्त नगरवधू को ढूँढने गई। वह उस समय गणपति के आगार में किसी आवश्यक विषय पर परामर्श कर रही थी। दासी ने आकर बताया, "एक बौद्ध भिक्षुक् देवी की ड्योढ़ी में खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"उसे आगार संख्या दस में बैठाओ।"

"वे आपसे वहीं मिलना चाहते हैं।"

गणपति हँस पड़ा और बोला, "जाओ देवी! कोई नौसिखिया प्रतीत होता है।"

मृदुला उठकर बाहर ड्योढ़ी में आई तो महाप्रभु को दत्तचित्त हो

आगार की दीवार पर बने सरस्वती के सुन्दर चित्र की ओर आकर्षित देख हँस पड़ी। महाप्रभु का ध्यान भंग हुआ तो घूमकर मृदुला की ओर सिर से पाँव तक देख बोला, "क्या मैं नगरवधू को देख रहा हूँ?"

"भगवन्! वह चित्र कैसा जँचा है? इस चित्र के बनाने वाले चित्रकार का नाम केतकर है। इसका दाम राज्य को दस सहस्र मुद्रा देनी पड़ी थीं। भारत-भर में सरस्वती देवी के सब चित्रों से इसको श्रेष्ठ माना जाता है। फ़ारस और यूनान से कलाकार इसको देखने के लिए यहाँ आते हैं।"

"सत्य ही चित्र अति सुन्दर है। परन्तु...। छोड़ो इस व्यर्थ की बात को। मैं तुमसे मिलने आया हूँ।"

"अहो भाग्य दासी के। आइये, मेरे आगार में पधारिये। यहाँ मैं क्या सेवा कर सकूँगी? सब आने-जाने वाले और सेवक विस्मय में आपको देख रहे हैं।"

महाप्रभु की समझ में आ गया कि मृदुला बात तो ठीक कहती है। लोग क्या संशय करेंगे? इससे बोला, "काम तो साधारण है, परन्तु चलो जहाँ तुम्हारी इच्छा हो।"

मृदुला महाप्रभु का पथ-प्रदर्शन करती हुई उन्हें एक अति सुसज्जित आगार में ले गई। वहाँ भूमि पर मखमली कालीन और उस पर कोमल सेमल की रुई की गद्दियाँ लगी थीं। आगार के मध्य में इतरदान रखा था, जिसमें से धीमी-धीमी मौलसिरी की सुगन्धि उठ रही थी। आगार की पूर्ण वायु इस सुगन्धि से भर रही थी।

दीवारों पर नग्न स्त्रियों के चित्र भाँति-भाँति की नृत्य-मुद्राओं में बने थे। छत से एकसौ एक बत्ती का दीपगुच्छ लगा था, जिसके सब दीप जल रहे थे। एक ओर वीणा रखी थी।

नगर-वधू सायं समय प्रायः पूर्ण शृङ्गार किये होती थी। इस प्रकार के आगर में नगर-वधू जैसी सुन्दर युवती को पूर्ण शृङ्गारयुक्त खड़ी देख, महाप्रभु का मस्तिष्क चक्कर काटने लगा। उसका पूर्ण शरीर एक विशेष प्रकार की मादकता से पुलकित हो उठा। उसने एक क्षण में अपने को सँभाल कर

कहा, "देवी ! इस आगार में लाने का क्या अभिप्राय है आपका ?"

"मुझे नहीं मालूम भगवन् ! कि आपने क्यों दासी को स्मरण किया है ? यह तो आप ही बताइयेगा। बैठिये ! इस आसन पर बैठने की कृपा कीजिये।"

महाप्रभु अति संकोच में पड़ गया और उसका कंठ शुष्क हो गया। उसने इसे साफ करने का यत्न कर कहा, "मैं तो चम्पा के विषय में जानने आया था।"

"ओह ! भला बैठिये तो।"

महाप्रभु पर वातावरण की मादकता चढ़ती जाती थी। उसकी टांगें जवाब देने लगी थीं। इस कारण एक गद्दी पर बैठ गया। उसे बैठा देख उसके साथ रखी गद्दी पर मृदुला बड़े से प्रश्रय का आश्रय ले आधी लेटी अवस्था में हो गई। इससे उसका सौन्दर्य अपने पूर्ण ओज में दिखाई देने लगा।

महाप्रभु नगर-वधू के सौन्दर्य को देख चकित हो उसके मुख पर देखता रह गया। उसका कंठ अब सर्वथा शुष्क हो गया था और उसके मुख से शब्द निकलना कठिन हो गया। बहुत कठिनाई से यह कह सका, "देवी ! मैं अभी बहुत दुर्बल जीव हूँ। मैं समझता हूँ कि मुझे यहाँ तुम्हारे साथ एकान्त में नहीं आना चाहिये था।"

"आपका मुख सूख रहा प्रतीत होता है। जल मंगवाऊँ ?"

फिर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये मृदुला ने ताली बजाई। एक दासी भीतर आई तो उसे पेय लाने की आज्ञा दे दी।

महाप्रभु ने भर्राई आवाज में कहा, "नहीं, मुझे जल की आवश्यकता नहीं है। आप चम्पा के विषय में बताइये।"

"चम्पा, मेरी दासी ? क्यों ? उसकी क्या बात है ? आप से भी उसका मेल-मिलाप था ? तब तो आप बहुत अच्छे पारखी हैं। वह मेरी सबसे अधिक सुन्दर दासी थी। भगवन् ! उसे तो अवध के महामात्य, श्री भानुमित्र साथ ले गये हैं। यद्यपि वह उनसे……

"लो, पेय आ गया। थोड़ा पी लीजिये। बात करने में सुभीता हो

जाएगा।"

दासी गंगाजमुनी सुराही और एक पात्र ले आई। मृदुला उठी और सुराही में से पात्र भर महाप्रभु के सम्मुख कर दिया।

"यह तो सुरा प्रतीत होती है।" महाप्रभु ने कहा।

"यहाँ इस भवन में आकर इस स्वादिष्ट सुरा के पिये बिना कोई नहीं जाता। लोग तो इसके लिये लालायित रहते हैं।"

मृदुला के सुन्दर हाथों से दी गई सुरा, ना नहीं की जा सकी। गला भी तो सूख गया था। महाप्रभु ने मुख को लगाई तो दो ही घूँट में गिलास समाप्त हो गया। "और दूँ ?"

"नहीं, नहीं, अब ठीक है। मेरे गले में न जाने क्या हो गया था। शब्द ही नहीं निकलता था। देखो देवी! चम्पा से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। हम भिक्षुक हैं। सबकी भलाई करना हमारा कार्य है। उसका प्रेमी कर्णदेव हमारा उपासक था।"

"ओह! आप बहुत दयालु हैं।" इतना कह मृदुला ने तिरछी दृष्टि से महाप्रभु की ओर देखा। महाप्रभु के पूर्ण शरीर में रोमांच हो उठा। उसने धीरे से, जैसे अपने-आपको कह रहा हो, कहा "यह बहुत भयंकर स्थान है।"

मृदुला ने एक गिलास सुरा का और भरा और आगे कर कहा, "क्यों भगवन्! क्या भयंकर बात देखी है आपने यहाँ ? क्या भिक्षु का बाना कष्ट देने लगा है अब ?"

"यह तो नहीं कह सकता। परन्तु हम भी तो दूसरों की भाँति हाड-चाम के बने हैं। हमें ऐसे प्रलोभनों से बचना चाहिये।"

"क्यों ? क्या आवश्यता है बचने की ?"

"ये प्रलोभन मनुष्य के परम लक्ष्य निर्वाण-प्राप्ति में बाधक होते हैं।"

"निर्वाण-प्राप्ति से क्या होता है, भगवन् ?"

इस प्रश्न से घबरा कर महाप्रभु ने कहा, "मैं कैसे जान सकता हूँ ? हाँ भगवान शाक्य मुनि गौतम ने कहा है कि निर्वाण पाने पर परम सुख मिलता है।"

"परन्तु भगवान् ने भी तो यह निर्वाण-प्राप्ति से पूर्व कहा था। यह भ्रम भी तो हो सकता है। उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् तो उनका कोई सन्देश मिला नहीं। उनका कहना सत्य हो सकता है, परन्तु मैं जो कह रही हूँ वह तो प्रत्यक्ष है। उसके लिये किसी साक्षी की आवश्यकता नहीं। "उपलब्ध को छोड़ अनिश्चित के पीछे भागने वाले को बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता। यह लीजिये, एक गिलास इस शीतल माधवी का और पीजिये। इससे बुद्धि का आवरण दूर होकर सत्य दर्शन की शक्ति उत्पन्न होती है।"

जब मृदुला यह कह रही थी, सुरा का गिलास पीने के लिए दे रही थी। महाप्रभु सामने बने एक चित्र की नगर-वधू से तुलना कर रहा था। उसे नगर-वधू अधिक सुन्दर और ओजपूर्ण दिखाई दे रही थी। वह अपने मन में सोच रहा था कि नगर के कुरूप पुरुष तथा स्त्रियाँ बौद्ध विहारों में में भर्ती हो गई हैं। उन्हें, न तो बाहर जगत् में कोई चाहने वाला है, न उनके चाहने की परवाह करने वाला है। प्रायः अशिक्षित, अनपढ़ और हीन मति इकट्ठे हो दान-दक्षिणा के अन्न को गन्दा कर रहे हैं।

इन्हीं विचारों में लीन उसने बिना जाने और विचार किए सुरा का पात्र पकड़ लिया और पीने लगा। पीते समय उसे विचार आया भी कि वह ठीक नहीं कर रहा, परन्तु आधा पी शेष छोड़ना अशिष्टता समझ और सुरभित स्वादिष्ट सुरा को त्यागने को मन तैयार नहीं कर सकने से, एक ही घूँट में सब पी गया।

मृदुला उसके मनोभावों को समझ रही थी। इससे उसका शेष संकोच भी दूर करने के लिए बोली, "भगवन्! आप चम्पा के विषय में पूछ रहे थे न? देखिये, वह दासी इतनी मधुर भाषी, विचारशील और सुन्दर थी कि उसकी माँग इस भवन में सर्व व्यापक थी। यदि आप उसके विषय में जानने आये हैं तो मुझे अचम्भा नहीं हुआ।

"आप वही करने आये हैं, जो गणपति देवधर्मा अभी एक पल पूर्व कर रहे थे। अन्तर केवल यह है कि वे वास्तविकता समझते हैं और आप जो करने आये हैं, उसके वास्तविक प्रयोजन को समझ नहीं सके। देखिये मैं

आपको बताती हूँ। यह ज्ञान प्राप्ति यहाँ पूर्णरूप में उपलब्ध है।"

इतना कह उसने ताली बजाई और दासी को कहा, "तनिक सुमति को बुलाओ। कहो महाप्रभु को वीणा सुनानी है।"

"देखिये," उसने प्रश्रय से उठ कहा, "आप निर्वाण को प्राप्त कर क्या पायेंगे यह तो आप जानें, परन्तु आप यहाँ इस संसार में रहकर क्या पा सकते हैं, मैं दिखाती हूँ।"

महाप्रभु को सुरा की मादकता चढ़ रही थी और वह समझ रहा था कि कितना मधुर सुखद् और सरस वातावरण है। इस पर भी स्वभाव से उसने कहा, "देवी! यह मैं मानता हूँ यह सब कुछ अति सुखप्रद है। तुम जैसी सुन्दरी और इस स्वादिष्ट सुरा को अप्रिय कहकर मैं तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता; परन्तु यह सब इन्द्रियों का सुख है और तुच्छ है; क्षण भंगुर है। यह आत्मा की तुष्टि के लिए उपयुक्त नहीं हैं।"

मृदुला खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसके अनार के दानों समान दाँतों की दो लड़ियों ने तो महाप्रभु के हृदय को आन्दोलित कर दिया। मृदुला ने हँसते हुए कहा, "यह आत्मा की आड़ लेने की आवश्यकता क्यों पड़ गई, भगवन्? भगवान् तो आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानते थे। आप एक न होने वाली वस्तु की तुष्टि करने लगे हैं।"

महाप्रभु को, नगर-वधू का उसे युक्ति में पछाड़ते देख अचम्भा हुआ। वह समझता था कि यह गणिका भगवान् बुद्ध क्या मानते थे और क्या नहीं मानते, नहीं जानती होगी।

इस समय सुमति आ गई और आगार के कोने में रखी वीणा को ले महाप्रभु के सम्मुख बैठ, उसे स्वर करने लगी।

"देखिये, यह स्वर्गीय वाद्य भूतल पर स्वर्ग का विस्तार करने में सबल है या नहीं।"

इस समय मृदुला ने सुरा का एक गिलास भरकर और दिया। इस बार महाप्रभु ने इन्कार नहीं किया। सुमति ने वीणा पर वागेश्वरी बजानी आरम्भ कर दी। आरोह अवरोह, अन्तरा, मींड़, तान-आलाप एक के

पश्चात् दूसरा बजने लगा।

मृदुला ने और सुरा देते हुए कहा, "यह शरीर का है अथवा मन का, किसी का भी समझिए। है यह सुख वास्तविक। इसका साक्षात्कार हो रहा है। निर्वाण का साक्षात्कार किसी ने किया हो, ऐसा संसार में कोई जीवित नहीं है।"

इस समय तक सुरा का प्रभाव पूर्ण रूप में हो चुका था। महाप्रभु मृदुला के कथन को न सुन वीणा की स्वर लहरी का रसास्वादन कर रहा था। मृदुला उसे पात्र के पश्चात् पात्र भर कर सुरा के दे रही थी।

महाप्रभु के मन में छुपी वासना प्रवृत्ति जाग उठी थी और वह नगरवधू से प्रेम प्रकट करने लगा था। इस समय नगरवधू, उसे यह कह कि 'मैं अभी आती हूँ' आगार के बाहर चली गई। आगार के बाहर खड़ी दासी भीतर आई और महाप्रभु को सुरा पान कराने लगी।

कुछ ही समय में महाप्रभु अचेत हो चित्त लेट गया।

: ७ :

विनोद भवन के सम्मुख मार्ग तट पर पड़े भिक्षु को जब चेतना हुई तो दिन निकल चुका था। मार्ग पर चलने वाले वोसियों लोग एक बौद्ध भिक्षु को नगरवधू के द्वार पर मदिरा से अचेत पड़ा देख, बौद्ध मत पर आलोचना करते दिखाई दिए।

महाप्रभु को जब पर्याप्त चेतना हुई और उसने अपनी दयनीय अवस्था को समझा तो चुपचाप अपना दंड ले, बिना लोगों के कहने का विचार कर, नगर द्वार की ओर चल पड़ा।

विहार में पहुँच अपनी दुर्दशा का बदला लेने की योजनाएँ बनाने लगा। उसकी हँसी, जो नगरवधू के भवन के भीतर और बाहर हुई, थी वह उसे बिच्छू के डंक के समान लगने लगी।

उसके मन में अपने पतन पर भी ग्लानि हो रही थी। साथ ही रात अधिक सुरा-पान का दुष्ट प्रभाव अभी था। इससे उसने तीन दिन का

अक्षुण्य व्रत रखने का निश्चय कर लिया। उसने सबसे न मिलने का निश्चय कर अपने गृह का द्वार बंद कर घर के भीतर पड़ा रहा।

इन तीन दिन तक एक उपासक चैत्य में महाप्रभु से मिलने की प्रतीक्षा में पड़ा रहा। तीसरे दिन महाप्रभु ने अपने गृह का द्वार खोला, स्नान किया और फिर हलका भोजन किया।

इस समय उसे सूचना मिली कि तीन दिन से एक उपासक उससे भेंट की प्रतीक्षा में बैठा है। उसने उसे बुलाया। वह व्यक्ति किसी भले घर का युवक प्रतीत होता था। सुन्दर युवा था परन्तु मुख की आकृति से ऐसा प्रतीत होता था कि वह भारी दुःख और कठिनाई में है। महाप्रभु के सम्मुख उपस्थित हो, उसने उनके चरण छुए और चरण-रज नेत्रों को लगाई। महाप्रभु ने कहा, "बैठो भन्ते! कौन हो? किस अर्थ मुझसे मिलना चाहते हो?"

आगन्तुक ने उत्तर दिया, "भगवन्! उपासक मगध देश में पाटली-पुत्र से पूर्व में स्थित एक छोटे से गाँव 'कुसुमावत' का रहने वाला है। पिता भूमिपति थे और 'कुसुमावत' का पूर्ण गाँव हमारा था। पिताजी के देहान्त के उपरान्त बड़े भाई ने गाँव पर अधिकार कर लिया और मुझे पाटलीपुत्र में पढ़ने भेज दिया। वहाँ हमारा कुलपुरोहित था और मैं उसके पास पढ़ने लगा।

"पुरोहित जी ने मुझे अष्टाध्यायी पढ़ाई और पश्चात् महासूत्र का पाठ आरम्भ होने वाला था। एकाएक पुरोहित जी की एकलौती कन्या के गर्भ ठहर गया। लड़की को जब डाँट कर पूछा गया तो उसने मेरा नाम बता दिया। परिणाम यह हुआ कि मुझे अपमानित कर गुरुगृह से निकाल दिया गया। मैं घर गया तो मेरा अपमान, छाया समान, मेरे साथ गया। मेरी भाभी ने मुझसे पूछा, 'मुख काला कर आए हो न लल्ला?'

"मैंने उत्तर दिया, 'नहीं भाभी! यह सब झूठ है।'

'तो क्या लड़की झूठ बोलती है?'

'निस्सन्देह।'

'चल धूर्त ! मैं पहले ही जानती थी कि तुम्हारी आँखों में तुम्हारे पिता की दुष्टता छुपी है। तुम्हारे भैया तुम्हारा पक्ष लिया करते थे। तो अब सिद्ध हो गया है कि मेरा अनुमान सत्य था। तुम्हारे लिये इस घर में स्थान नहीं।'

"मैं अपने डाँटे जाने को सह सकता था, परन्तु अपने पिता जी को दुष्ट कहा जाना सहन नहीं कर सका। इस पर यह कि भैया सिर नीचा किये यह सब कुछ सुनते रहे। मैं उसी समय, ऐसे ही जैसे वहाँ बैठा था, उठ घर से निकल आया। वहाँ से पाटलीपुत्र और फिर प्रयाग होता हुआ वैशाली में पहुँच गया। इस यात्रा-काल में मैं निरन्तर विचार करता रहा हूँ और अन्त में इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह संसार त्यागने योग्य है। मैं भिक्षु बनने के विचार से यहाँ आया हूँ और आपसे दीक्षा लेने की प्रतीक्षा में तीन दिन से बैठा हूँ।"

इस कथा को सुन महाप्रभु उस युवक के मुख पर देख विचार करने लगा कि होनहार युवक प्रतीत होता है। यदि यह संघ में सम्मिलित हो जाय तो निस्सन्देह संघ के नाम को उज्ज्वल करेगा। इस पर भी बोला, "यह भिक्षु-मार्ग अति कठिन है युवक ! पग-पग पर काँटों की बाड़ है। प्रलोभन संसार में भरे पड़े हैं। एक ओर पूर्ण संसार के आनन्द-भोग हैं और दूसरी ओर वीरान कष्टप्रद कंटकाकीर्ण मार्ग है। मैं समझता हूँ विचार कर लो। कोई कार्य उसका भविष्य देखे बिना नहीं करना चाहिये।"

"प्रभु ! बहुत सोच चुका हूँ। मैं इस संसार से घृणा करने लगा हूँ। मुझे इसको देख कर जो मानसिक क्लेश होता है, वह वर्णनातीत है। मुझे बचा लीजिये। भगवन् ! मैं गड़हे में धँसता जा रहा हूँ, नहीं जानता कहाँ जा पहुँचूँगा। मुझे बचाइये।"

महाप्रभु ने विचार कर कहा, "अभी चैत्य में प्रतीक्षा करो। अपने मन में पूर्ण बात को समझने का यत्न करो। तब तक मैं भी देखूँगा कि तुम्हारा मानसिक विकास कहाँ तक हुआ है। कुछ दिन उपरान्त हम फिर इसी विषय पर बातचीत करेंगे। तुम्हारा नाम क्या है ?"

"पद्मनाभ, भगवन् !"

"अच्छी बात है। बीच-बीच में मिलते रहा करो। तब तक उपासना में सम्मिलित हुआ करो। अपने उद्देश्य पर मनन किया करो और समय पर तुम्हें दीक्षा मिल जावेगी।"

पद्मनाभ विहार में एक विशेष व्यक्ति माना जाने लगा। विहार में उच्च वर्ण के लोग कम आते थे। साथ ही पद्मनाभ पढ़ा-लिखा विद्वान् था। अच्छी खासी संस्कृत जानता था। यह बात विहार में अनोखी थी। यद्यपि संस्कृत-साहित्य पढ़ना पाप माना जाता था तो भी इसके जानने वालों का विहार में अभाव होने से पद्मनाभ विशेष आकर्षण बन रहा था।

एक दिन कुछ भिक्षु और भिक्षुणियाँ उपासना के उपरान्त उसे घेर कर खड़ी हो गईं। महाप्रभु अपने गृह में जा चुके थे। "भन्ते !" एक भिक्षु ने पूछा, "आपको दीक्षा नहीं दी जा रही। क्या कारण है ?"

"मैं पातकी हूँ।"

"क्या पापकर्म किया है आपने ?"

"एक क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुआ हूँ।"

"ओह ! महाप्रभु ने बताया है यह ?" एक भिक्षुणी ने पूछा।

पद्मनाभ ने प्रश्नकर्ता की ओर देखा। एक युवती उसकी ओर देखती हुई मुस्करा रही थी। पद्मनाभ ने आँखें नीची कर कहा, "नहीं देवी ! मैं स्वयं भी ऐसा ही मानने लगा हूँ।"

"तब तो ठीक है। जो अपने को पापी मानता हो, वह वास्तव में ही पापी है। चाहे उसने पाप किया हो चाहे न।"

इस तत्व की बात को पद्मनाभ ने सुना तो पुनः कहने वाले के मुख की ओर देखने लगा। भिक्षुणी हँस रही थी। वह अन्यमनस्क भाव से उसकी ओर देखता रहा। भिक्षुणी नीलमणी थी।

: ८ :

महाप्रभु ने नगरवधू प्रथा का सर्वनाश करने का विचार कर लिया।

उसने एक-एक दो-दो कर संसद् के सदस्यों को बुलाकर अपना मत प्रकट करना आरम्भ कर दिया।

वैशाली की संसद् में सत्तावन सहस्त्र क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य परिवारों के प्रतिनिधि थे। संसद् के सदस्यों की संख्या तीन सौ चालीस थी। इनमें दो सौ सदस्य वैश्य जाति के थे। चालीस ब्राह्मण थे और शेष एक सौ क्षत्रिय थे। गणपति तथा मंत्रीगण खुली संसद् में चुने जाते थे। जब कभी किसी पड़ोसी देश से झगड़ा होता था तो युद्ध के लिये सेनापति अथवा बातचीत करने के लिये दूत भी संसद् के खुले अधिवेशन में चुन लिया जाता था।

वैशाली के राज्य-संचालन के लिये एक विधान बना था। प्रत्येक संसद् के सदस्य को शपथ लेनी पड़ती थी कि वह विधान का उल्लंघन नहीं करेगा। विधान में परिवर्तन सर्वसम्मति से ही हो सकता था।

नगर-वधू रखने की प्रथा विधान का अंग थी। इस कारण इस प्रथा को हटाने के लिये सर्वसम्मति की आवश्यकता थी। संसद् के सदस्य महाप्रभु के सम्मुख इस प्रथा की बुराइयों को मान जाते थे; परन्तु जब संसद् में इसके विरोध की बात होती थी तो आनाकानी करने लगते थे।

महाप्रभु के इस प्रयत्न की सूचना मृदुला को भी मिली और उसने गणपति से इस विषय में बातचीत की। गणपति सुनकर पूछने लगा, "मृदुला देवी! तुम क्या चाहती हो?"

मृदुला का मुख इस प्रश्न से लाल हो गया। उसने कहा, "आर्य! यह प्रथा वैशाली की है। इसके लाभ-हानि को वैशाली ही समझे। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं इस पद से तुरन्त मुक्त होना चाहती हूँ।"

"क्यों?"

मृदुला ने आँखें नीचे किये हुए कहा, "मेरा उचित स्थान मेरी प्रतीक्षा कर रहा है।"

"तो तुम्हारा स्थान बन गया है?" गणपति ने विस्मय में पूछा।

"हां आर्य! और मैं वहां जाने के लिये व्याकुल हूँ।"

"यदि आपत्ति न हो, तो क्या मैं जान सकता हूँ कि वह कहां है ?"

मृदुला ने वैसे ही आंखें नीची किये हुए कहा, "आप तो मेरे पिता हैं। आपसे मेरी कोई बात छुपी नहीं रहनी चाहिये। मैं अयोध्या जाने के लिये व्याकुल हो रही हूँ।"

"अयोध्या ?" गणपति ने चकित हो पूछा।

"हां आर्य ! आप समझ सकते हैं कहां। वहां के महामात्य प्रासाद में एक आगार मेरे लिये निश्चित हो चुका है।"

गणपति ने कुछ उदास होकर कहा, "तुम्हारे निर्वाचन से मैं प्रसन्न हूँ और यदि मेरे बस में होता तो मैं तुम्हें आज ही मुक्त कर देता; परन्तु वैशाली के विधान में परिवर्तन मेरे बस की बात नहीं है। रही नगरवधू रखने की प्रथा, मैं इसके तोड़ने के पक्ष में नहीं हूँ। इस समय वैशाली में गणिकाएँ बहुत कम हैं। उन में से प्रायः सर्वश्रेष्ठ गणिकाएँ विनोद भवन में हैं। इससे नगर के गण्य-मान्य लोग विनोद के लिए यहां आते हैं और वे राज्य के नियंत्रण में रहते हैं। यदि यह विनोद भवन तोड़ दिया गया तो लोगों की प्रकृति तो वही रहेगी जो अब है। हां एक विनोद भवन के स्थान पचास छोटे-छोटे विनोद भवन बन जायँगे और वहां पर जो उच्छृङ्खलताएँ होंगी, उनका ज्ञान रखने के लिए राज्य को पचास स्थानों पर अपने गुप्तचर रखने पड़ेंगे।

"इसके रहते, मैं तुम्हें समय से पूर्व मुक्त नहीं कर सकता। मैं समझता हूँ तुम्हारे यहां रहने के तीन वर्ष और हैं और तब तक भानुमित्र कम-से कम एक विवाह और कर लेगा। तुम शायद उसकी तीसरी पत्नी बनोगी।"

मृदुला चुप रही। गणपति ने कहा, "महाप्रभु ने विनोद भवन को तोड़ने का प्रयत्न यहां अपमानित किये जाने के पीछे आरम्भ किया है। शायद यह उस अपमान का ही परिणाम है।"

मृदुला की हँसी निकल गई। गणपति ने कहा, "मृदुला देवी ! यह हँसने का विषय नहीं। मैं समझता हूँ कि तुमने उसे यदि मार्ग-तट पर

लेटाने के स्थान विहार तक पहुँचवा दिया होता तो ठीक रहता। वह धर्म में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है। उसके अपमान से पूर्ण धर्म का अपमान माना जा रहा है।"

"मैं यह स्वीकार करती हूँ कि कुछ अशिष्टता हो गई है। परन्तु आर्य! वह महानुभाव किसी धर्म-कार्य से तो यहाँ आये नहीं थे। राज्य-कार्य की विरोधी गुप्तचर गणिका की टोह लेने ही तो आये थे न? और अब तो एक नई बात चल रही है। क्या मैं महाप्रभु जी का अंतिम पत्र आपको पढ़ कर सुनाऊँ? शायद आपके काम की वस्तु बन जाए। यह पत्र अभी आया है। ठहरिये मैं अभी लाती हूँ। चम्पा के धोखा देने के पश्चात् अब मैं किसी पर विश्वास नहीं कर सकती।"

"यह तो बहुत विचित्र है। जाओ शीघ्र ले आओ। मैं आज जल्दी ही जा रहा हूँ।"

मृदुला ऊपर की मंजिल पर गई और अपने आगार में एक लोहे के संदूक को खोल कर उसमें से एक पत्र ढूँढ कर ले आई।

उसने पत्र लाकर गणपति जी को दे दिया। यह इस प्रकार लिखा था :—

"प्रिय चन्द्रवदनी!

कल रात-भर मैं सो नहीं सका। पद्मनाभ एक गुणी आदमी मुझे मिल गया है, जो भाँति-भाँति के काव्य सुना मेरा मन बहलाता रहता है; परन्तु वह भी तो रात भर मेरे पास बैठा नहीं रह सकता। मुझे जब झपकी आती थी तो तुम्हारा चन्द्र-मुख मेरे सामने आ विराजमान होता था। मैं जानता हूँ कि यह वासना है। इस पर भी मैं इसको मन से निकाल नहीं सकता। मैं तुमसे एक रात पुनः वैसे ही प्रेम की भिक्षा माँगता हूँ, जैसी तुमने पहले दी थी। यह कैसे हो सकता है, यह तो तुम ही बता सकती हो। इससे मेरी चिंता समाप्त हो जावेगी। मैं स्थिर चित्त से उपासना और ध्यान में लग सकूँगा। इस वर्तमान अवस्था में तो मैं पागल होता जा रहा हूँ। अपने कार्य को भूल रहा हूँ और सब

कहते हैं कि मैं दुबला होता जाता हूँ।

"मेरी इस अवस्था में भी तुम ही कारण हो। एक निष्पंक निरपराध व्यक्ति को, जो संसार के सुखों से दूर था, तुमने ही घसीट कर इसके स्वाद में लपेट लिया है। अब तुम ही हो जो मुझे इस बंधन से बाहर निकाल सकती हो।

"कम-से-कम उत्तर तो दो। मैं दिन-भर तुम्हारे कार्य से घृणा करता हूँ। सब मिलने वालों को कहता रहता हूँ कि विनोद भवन को जला कर राख कर दो। परन्तु रात को तुम मेरी दृष्टि में समाई रहती हो। प्रतीत होता है कि तुमने कोई जादू डाल दिया है मुझ पर।

तुम्हारा कल्याण"

"तो तुम," गणपति ने पत्र वापस करते हुए कहा, "उसे इनका उत्तर नहीं देतीं?"

"एक पद्मनाभ नाम का उपासक पत्र लाता है। जब उत्तर माँगता है तो मैं कह देती हूँ कि कुछ उत्तर नहीं है।"

गणपति ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "गँवार लोगों में रहते-रहते प्रेम करने का ढंग भी नहीं जानता यह। मैं समझता हूँ मृदुला देवी! उस बेचारे को उत्तर तो दे दिया करो। संसार में सफल वही हो सकते हैं, जो सब की आशाओं को जीवित रखते हैं। आशाएँ दो प्रकार से मरती हैं। एक तो पूर्ण कर देने से। जब किसी की आशा पूर्ण हो जाती है, तब वह सन्तुष्ट हो जाता है और आशा रखने वाले व्यक्ति की भाँति वह खुशामद और मिन्नत नहीं करता रहता। कृतज्ञता, जो आशापूर्ति के पश्चात् उत्पन्न होती है और वह क्षणभंगुर है, अधिक काल तक नहीं रहती।

"आशाओं की मृत्यु होने में दूसरा कारण उन आशाओं की पूर्ति न हो सकने का विश्वास हो, जाने में है। इस कारण मैं यह कहता हूँ कि जिस व्यक्ति से कोई कार्य लेना हो, उसकी आशाएँ बनी रहनी देना ही ठीक है।"

"परन्तु आर्य! मैंने तो उससे कोई कार्य नहीं लेना।"

"पर वैशाली राज्य ने तो उससे कई कार्य सम्पन्न कराने हैं और तुम

का विचार था कि वह अपने मुख से अपने विवाह का समाचार महाराज और महारानी को देगा, परन्तु विवाह का समाचार राजमहल में पहले ही पहुँच चुका था। महाराज और महारानी नगर के शिष्ट लोगों से भेंट कर उठे ही थे कि भानुमित्र वहाँ पहुँच गया। उसे आया देख मल्लिका की हँसी निकल गई। महाराज ने कहा, "नवीन वर भानुमित्र! बहुत-बहुत बधाई हो। बहू कैसी है, मित्र?"

"विवाह के समय महाराज और महारानी को कष्ट देना उचित न समझ आज सायं वर-वधू को आशीर्वाद देने को सेवक के घर पधारने के लिए निवेदन करने आया हूँ।"

"हम तो स्वयं ही विचार कर रहे थे कि जब तुम घर पर न होओ, हम वहाँ जा धमकें और बहू रानी के दर्शन कर आवें। सुना है बहुत सुन्दर है वह।"

"हाँ, महाराज की कृपा है। मैं समझता हूँ कि अपनी प्रथम विवाहिता के निर्वाचन में मैंने भूल नहीं की।"

प्रथम विवाहिता का शब्द सुन महारानी को राका का स्मरण हो आया। इस कारण पूछने लगी, "पर राका के साथ विवाह के निश्चय का क्या हुआ?"

"वह निश्चय अनिश्चय नहीं हुआ।"

"बहुत निर्दयी हो, भानुमित्र!"

"महारानी का यह भ्रम है। इसका निवारण तो समय ही कर सकता है।"

बात आगे नहीं चली। महाराज और महारानी भानुमित्र से झगड़ना नहीं चाहते थे। उसी सायंकाल महाराज और महारानी महामात्य के निवास-गृह पर बधाई देने पहुँचे। महाराज और महारानी के वहाँ पहुँचने का समाचार सुन नगर के प्रायः प्रतिष्ठित व्यक्ति महामात्य को बधाई देने और महामात्य की रानी को भेंट देने उपस्थित हो गए। स्त्री-पुरुष सैकड़ों की संख्या में आये थे।

"इस कारण ही तो मैं तुम्हारे-जैसे दृढ़निष्टा वाले व्यक्ति को नियुक्त कर रहा हूँ।"

"मुझे तो आपके विषय में भय है, प्रभु !"

"मेरी चिन्ता न करो। मैं कभी प्रलोभनों में फँस भी जाता हूँ तो मन को सदा निर्लेप रखता हूँ।"

पद्मनाभ ने श्रद्धा से महाप्रभु के मन की दृढ़ता पर विश्वास कर लिया। इसके पश्चात् महाप्रभु के प्रेम-पत्र लेकर वह नगर-वधू के विनोद-भवन में जाने लगा। इसके अतिरिक्त संसद् के सदस्यों को मिल नगर-वधू-प्रथा की निन्दा करनी आरम्भ कर दी।

पद्मनाभ विहार के प्रत्येक भिक्षु और भिक्षुणी से सुहृदयता और घनिष्ठता का व्यवहार रखता था। उसकी बातों में रस और ज्ञान की मात्रा पर्याप्त होती थी।

उपासना के पश्चात् प्रायः विचार-विनिमय हुआ करता था और पद्मनाभ उसमें विशेष भाग लेता था। आत्मा और मन में क्या अन्तर है, यह एक जटिल प्रश्न था, जिसका उत्तर प्रत्येक विहार में रहने वाला जानने को उत्सुक रहता था।

भिक्षुणियों में नीलमणि विशेष दृष्टिकोण रखती थी और दिन प्रतिदिन दोनों में वार्तालाप विशेष रूप से रुचिकर होती जाती थी। एक दिन दोनों विहार के पीछे वाले वन में बेर एकत्रित करते हुए खुलकर बातचीत करने लगे। पद्मनाभ ने कहा, "इस ऋतु में बेर अति स्वादिष्ट होते हैं।"

"हाँ जब और कुछ न मिले तो।"

"और कुछ न मिले का क्या अर्थ है ?"

"माँस, उदाहरण के रूप में।"

"यह तामसी भोजन है, देवी !"

"इस पर भी भिक्षुओं के लिए खाद्य पदार्थ है।"

"पर हम लोग खाते तो नहीं ?"

"मिले तो छोड़ते भी नहीं।"

"तो तुमने खाकर देखा है कि यह स्वादिष्ट होता है ?"

नीलमणि हँस पड़ी। फिर कुछ गम्भीर हो पूछने लगी "भन्ते! तुम नगर-वधू के भवन में कई बार जा चुके हो। क्या वहाँ तुम्हें भोजन का निमन्त्रण नहीं मिलता ?"

"मिलता तो है। जब भी मैं नगर-वधू से मिलता हूँ तो सबसे पूर्व वह कहती है, 'बैठिये भन्ते!' मैं बैठ जाता हूँ। पश्चात् वे कहती हैं, 'क्या खाइयेगा? क्या पीजियेगा?' मैं कहता हूँ 'सब आपकी कृपा है।' इस पर वह कहती है, 'अच्छी बात है आप जा सकते हैं। चिट्ठी का उत्तर कुछ नहीं है' इस पर मैं चला आता हूँ।"

"एक दिन वहाँ भोजन करके देखिये। फिर बेरों का स्वाद समझ में आ जावेगा। बड़े-बड़े सेठ महाजन वहाँ भोजन करने के लिए लालायित रहते हैं।"

"तुम्हें बहुत बातों का ज्ञान है, देवी!"

"हाँ! मैं इस विहार में रहने वाले लोगों की भाँति आँखें बंद कर नहीं रहती। मुझे बहुत कुछ विदित है?"

"सत्य?" पद्मनाभ बेर तोड़ने भूल गया था। वह नीलमणि की चमकीली आँखों में देख रहा था। नीलमणि उसके मुख पर देख मुस्करा रही थी।

"महाप्रभु एक दिन कहते थे कि नगर-वधू के एक रात के आतिथ्य ने उनके मस्तिष्क को इतना बिगाड़ दिया है कि कई रात से उन्हें नींद नहीं आती।"

"यह सब ढोंग है। कल रात वह ऐसे सोये हुए थे कि कई बार जगाने पर भी नहीं उठे थे।"

पद्मनाभ को यह सुन विस्मय हुआ। उसने कहा, "तो मुझसे जो नित्य नगर-वधू के नाम पत्र लिखवाये जाते हैं, झूठ है क्या?"

"तो पत्र आप लिख कर ले जाते हैं?"

"मेरा अभिप्राय यह है कि लिखाते वे हैं, लिखता मैं हूँ।"

"तभी! वे पत्र भद्दे ढंग पर लिखे होते हैं।"

इससे पुनः पद्मनाभ को विस्मय हुआ। उसने नीलमणि को दोनों भुजाओं से पकड़कर कहा, "यह रहस्य की बात तुम्हें कैसे पता है नीलमणि?"

"मैं और भी बहुत कुछ जानती हूँ!"

"क्या जानती हो?"

"वह यह कि जिस रात को नगर-वधू का आतिथ्य महाप्रभु को मिला था, उस रात उन्होंने वहाँ बहुत मदिरा पी थी। पश्चात् एक दासी को नगर-वधू समझ उससे प्रेम-प्रलाप करते रहे। जब अचेत हो गये तो उठवा कर मार्ग-तट पर फेंकवा दिये गए। अब चाहते हैं कि नगर-वधू को बदनाम करें और फिर इस प्रथा को तुड़वा दें।"

पद्मनाभ नहीं समझ सका था कि नीलमणि को इन बातों का ज्ञान कहाँ से होता है। उसने यह जानने के लिए नीलमणि से और घनिष्टता उत्पन्न करनी आरम्भ कर दी।

एक सायं चैत्य के उस आगार में, जहाँ पद्मनाभ सोता था, नीलमणि आई। पद्मनाभ महाप्रभु के कार्य से नगर-वधू के भवन पर गया हुआ था। नीलमणि ने उस आगार का द्वार भींच कर बन्द कर लिया और दीपक जला पद्मनाभ के समान की तलाशी लेनी आरम्भ कर दी। उसके पहनने के कपड़े थे। नीलमणि ने भली भाँति देखे और पुनः उसी थैले में रख दिये, जिसमें वे थे। उसके आगार में संस्कृत में लिखे तीन ग्रंथ थे। एक रामायण कविवर बाल्मीकि ऋषि की लिखी हुई, दूसरी वायुपुराण और तीसरी भारत महाकाव्य। उनमें कुछ आपत्तिजनक न पा नीलमणि ने तीनों को उसी प्रकार लपेट दिया जैसे वे थीं। पश्चात् दीपक के प्रकाश में आगार का कोना-कोना ढूँढ़ डाला। जब उसे कुछ भी ऐसी वस्तु नहीं मिली, जिसकी वह आशा कर आई थी, तो हताश हो भूमि पर बैठ विचार करने लगी। दीपक उसने अपने सम्मुख भूमि पर रख लिया।

वह मन में सोचने लगी कि यहाँ तो कुछ पता नहीं चला। फिर अपनी चोली के भीतर से एक पत्र निकाल पढ़ने लगी। उसमें लिखा था, 'यह पद्मनाभ कौन है? कहाँ से आ गया है? भिक्षु नहीं है तो फिर विहार से

और महाप्रभु मे क्या सम्बन्ध है ? जो कुछ सम्भव हो प्रतीत कर लिखो ।'

इतना पढ़ उसने वह पत्र पुनः अपनी चोली के भीतर डाल लिया और घुटनों पर सिर रख सोचने लगी । इस समय चैत्य के बाहर पद्मनाभ ने कालमेघ को पुकार कर कहा, "मैं आज भोजन नहीं करूँगा ।"

नीलमणि ने उसकी आवाज सुनी तो दीपक बुझा दिया और उठ कर किवाड़ खोल बाहर निकल जाना चाहती थी कि पद्मनाभ ने धकेल कर द्वार खोल दिये । नीलमणि पीछे हट गई । पद्मनाभ ने द्वार में खड़े-खड़े ही अपने कुरते की जेब से चुम्बक निकाला और घिस कर बत्ती जलाने लगा । यदि वह द्वार से एक ओर हट कर खड़ा हो जाता तो नीलमणि अन्धेरे में चुपचाप बाहर निकल जाती; परन्तु वह द्वार में ही खड़ा रहा और वहीं खड़े-खड़े चकमक घिस कर कपड़े की बत्ती जला दीपक ढूँढ़ने लगा । उसने देखा कि दीपक भूमि पर पड़ा है । वह दीपक को एक अनहोने स्थान पर पड़ा और फिर उसकी बत्ती में से धुआँ निकलता देख, अचम्भे में वहीं खड़ा देखने लगा ।

नीलमणि ने समझ लिया कि अब उसका चोरी-चोरी वहाँ आने का भेद खुले बिना नहीं रहेगा । इससे अपने मन में बहाने सोचने लगी । इस समय दीपक से कुछ दूर एक स्त्री के नंगे पाँव बत्ती के धुँधले प्रकाश में पद्मनाभ को दिखाई दिये । विद्युत की भाँति उसके मन के भावों को नीलमणि समझ गई । उसने लपककर उसके हाथ में जलती बत्ती पर हाथ दे मारा । बत्ती बुझ गई परन्तु पद्मनाभ ने उसे दोनों भुजाओं में पकड़ लिया । नीलमणि इस प्रकार पकड़ी जाने पर पद्मनाभ से लिपट गई ।

पद्मनाभ ने नीलमणि का मुख नहीं देखा था । इस पर भी वह अपने से किसी को गाढ़ आलिंगन करते ही समझ गया कि कोई युवती है । एक क्षण तो वह इस सबका अर्थ समझ ही नहीं सका । पश्चात् उसके आलिंगन में व्यग्रता देख उसके मनमें संशय हो गया कि किसी कामातुर भिक्षुणी ने उसे पकड़ लिया है ।

इससे सचेत हो उसने पूछा, "कौन हो, देवी ! अपना परिचय तो

दो। इस प्रकार डाका डालना उचित नहीं।"

इस पर नीलमणि ने उसे और कसकर अपने साथ लगा लिया। पद्मनाभ उसे भुजाओं में न दबाये रखता, परन्तु उसे भय था कि इस अन्धेरे में वह भाग जायगी। इससे उसने पकड़े-पकड़े ही पुनः कहा, "प्रिये! कौन हो तुम?"

नीलमणि ने देखा कि भागना असम्भव है। इसलिए बोली, "तुम तो मेरी हड्डी-पसली तोड़ डालोगे। छोड़ो तो बताऊँ।"

पद्मनाभ पहचान गया। "ओह! नीलमणि हो? ठहरो दीपक जला लूँ।"

"नहीं, कोई देख लेगा।"

"डरो नहीं! कोई नहीं देखेगा। और फिर देखने से कोई क्या कर लेगा?"

पद्मनाभ समझता था कि आज यह काबू आई है। इससे और भेद की बातें लेनी चाहियें। इससे पुनः दरवाजे में खड़ा हो, मार्ग रोक चकमक से बत्ती जलाने लगा। नीलमणि उसके सामने खड़ी विचार कर रही थी कि क्या बहाना बनाये।

बत्ती जली। नीलमणि ने भूमि से दीपक उठा आगे कर जला लिया। पश्चात् दीपक को लकड़ी की बनी खूंट पर रख दिया। पद्मनाभ ने आगार का द्वार बन्द कर दिया और भूमि पर बिछी चटाई पर दोनों बैठ गये। पद्मनाभ ने उसकी आँखों में देखा तो नीलमणि हँस पड़ी। पद्मनाभ की भी हँसी निकल गई। इस पर पद्मनाभ ने अपने आगार में चारों ओर देख कर पूछा, "बस देवी! क्या तुम्हारे आने का प्रयोजन पूर्ण हो गया है?"

नीलमणि फिर हँसी और पश्चात् कुछ शान्त हो बोली, "पुरुष मूर्ख होते हैं या धूर्त, कह नहीं सकती।"

"यह संशय क्यों उत्पन्न हुआ, देवी?"

"तुम्हारे यह पूछने से कि प्रयोजन सिद्ध हुआ या नहीं।"

"पर मैं तो समझा था कि यह जो कुछ हुआ है आकस्मिक घटना

है। वास्तविक प्रयोजन कुछ और हो सकता है ?"

"आकाश और पाताल हो सकता है। एक स्त्री और पुरुष तीन मास से आँख-मिचौनी खेल रहे हैं और पुरुष को समझ ही नहीं पड़ता कि प्रयोजन क्या है। मैं यह समझी कि तुम यहाँ होगे। अन्धेरा होने पर अपने आगार से छुप कर निकल आई। प्रतिहारी इस समय फाटक की खिड़की भींच कर, जिससे कोई वनपशु भीतर न चला जाए, शौचादि के लिए चला जाता है। मैं खिड़की खोल चुपचाप यहाँ आई। परन्तु तुम नहीं थे।

"यहाँ दीपक जलाया और बैठ गई। फिर विचार आया कि यह ग्रन्थ कोई जातक है। खोल कर पढ़ने का विचार हुआ। परन्तु ये संस्कृत में निकले। अभी इनको लपेट कर रखा ही था कि तुम्हारी आवाज़ कालमेव को भोजन के विषय में कहती सुनाई दी। बस दीपक बुझा बैठ गई। तुम आये तो दीपक जलाने के लिए चकमक घिसने लगे। बत्ती जलाई तो मुझे लज्जा आ गई। मैंने बत्ती बुझा दी और फिर···।"

पद्मनाभ हँस पड़ा। नीलमणि भी हँसने लगी। पूर्व इसके कि उसके वहाँ आने के विषय में और पूछगीछ हो, वह पद्मनाभ से बोली, "देखो, मैं एक ज्योतिष लगाती हूँ। आज नगरवधू तुमसे बहुत ही नम्रता से मिली है। ठीक है न ?"

"वह तो सदैव ही बहुत सभ्यता से बात करती है।"

"आज उसने महाप्रभु के प्रथम पत्र का उत्तर दिया है।"

"नहीं ! यह बात भी नहीं है।"

"सुनते जाइये। आज के पत्र का उत्तर देने का वचन दिया है।"

"बिलकुल, ऐसा तो नहीं कहा है। हाँ यह कहा है, यदि कुछ उत्तर हुआ तो भेज दिया जावेगा।"

"पहले से तो भिन्न है न ?"

"हाँ। यह बात तुम्हारी कुछ-कुछ सत्य है।"

"तुम्हें भोजन करने का विशेष आग्रह किया गया और मांस, मछली, मुर्गा खाने को तथा सुरा पान को मिली है।"

"यह तो तुमने ही कहा था कि कभी खाकर देखो। सो मैंने एक-आध बार कहने पर ही खा लिया। परन्तु इस पर ज्योतिष की क्या बात है? मेरे मुख से सुरभित सुरा की सुगन्ध आती ही होगी।"

"परन्तु पत्र के उत्तर की बात तो ठीक है न?"

"हाँ माना। यह तो नीलमणि! मैं पहले से ही मानता हूँ कि तुम विशेष दृष्टि और प्रतिमा रखने वाली स्त्री हो और आज तो तुमने मुझ पर अपार कृपा की है।

"एक बात मैं तुम्हें अपने मन की बताना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि तुम्हारी महाप्रभु से बहुत घनिष्ठता है और महाप्रभु की तुम पर बहुत कृपा है। तुम मुझ पर उनकी ओर से देख-रेख कर रही हो।"

इतना कह मुस्कराते हुए पद्मनाभ ने नीलमणि की ओर देखा। नीलमणि हाथ-पर-हाथ की ताली मार हँस पड़ी।

"क्यों, क्या यह बात असत्य है?" पद्मनाभ ने तिरछी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा।

नीलमणि ने गम्भीर हो कहा, "तुम भी लाल बुझक्कड़ हो। भेड़ों में ऊँट पहचानते हो। लो मैं तुम्हें अपनी कथा सुनाती हूँ :—

"बचपन से ही मैं साक्य मुनि गौतम के गुणानुवाद सुनती रही हूँ। उनका त्याग, तपस्या, उनका तेज, बल और ज्ञान सुन मन में उनका अनुकरण करने की ठान बैठी थी। बचपन में ही मुझे भगवान् बुद्ध के अम्बपाली गणिका के आवास में भोजन करने और फिर उसे बौद्ध-धर्म की दीक्षा देने की कथा सुनाई गई थी। वैशाली के गणपति का सहस्रों प्रजागणों के साथ भगवान् के चरणों में अपनी पूर्ण धन-सम्पत्ति अर्पण कर पीत वसन पहन दण्ड ले भगवान् के पीछे चल पड़ना मैंने सुना था। इन सब बातों को सुन मेरे मन में उन जैसा बनने की लालसा जाग उठी।

"मैं जब बारह वर्ष की हुई तो घर का काम-काज छोड़ घण्टों ही बैठी भविष्य के स्वप्न देखा करती थी। मैं समझती थी भिक्षुणी बनूँगी, तपस्या करूँगी और फिर ब्रह्मचर्य के ओज से देदीप्यमान हो नगर-नगर

और गाँव-गाँव में घूमा करूँगी। लोग सहस्रों और लाखों की संख्या में मेरे पीछे-पीछे मेरे दर्शनार्थ घूमा करेंगे।

"घर वालों ने मुझे आलस्य और प्रमाद में निष्कर्म देख डाँटना आरम्भ कर दिया, पर मैं किसी की न सुनती। एक दिन भगवान् कल्याण हमारे गृह में आये और मेरे पिता ने उन्हें मुझे शिक्षा देने के लिए कहा। जब उन्होंने मुझे घर के कामकाज में मन लगाने को कहा तो मैंने पूछा, 'घर के कामकाज से निर्वाण प्राप्त होगा क्या?'

"प्रभु उत्तर नहीं दे सके। मैंने तुरन्त कह दिया कि मैं भिक्षुणी बनूँगी।

"घर में बहुत झगड़ा हुआ परन्तु मैं अपने हठ पर डटी रही। चौदह वर्ष की होने पर मैं भिक्षुणी बन गई। विहार में कुछ काम करने को नहीं था। भोजन करना, उपासना में सम्मिलित होना और सो रहना अथवा अन्य भिक्षुणिओं के साथ गप्पें हाँकना तथा खेलना।

"नगर में भिक्षा करने जाना सप्ताह में केवल एक बार होता था।

"इस जीवन से मैं शीघ्र ही थक गई और मैं महाप्रभु को अपने मन में उठते भिन्न-भिन्न प्रश्नों को पूछ कर तंग करने लगी। एक दिन मैंने जा पूछा :—

'मनुष्य जीवन का क्या उद्देश्य है, प्रभु?'

उत्तर था, 'निर्वाण-प्राप्ति।'

'यह उद्देश्य किसने बनाया है?'

'यह जानने की आवश्यकता नहीं।'

"मैंने जानने का हठ किया, तो प्रभु ने बताया,

'प्रकृति के धर्म ने।'

"उस दिन मुझे सन्तोष हो गया, परन्तु रात सोये-सोये जब मैं विचार करने लगी तो बीसियों और प्रश्न जाग उठे। अगले दिन मैंने फिर प्रभु को जा पकड़ा। मैंने पूछा, 'प्रकृति का धर्म निर्वाण-प्राप्ति है तो वह अपना धर्म छोड़ इस जीवन-मरण के बन्धन में आई क्यों?'

"उत्तर मिला, 'इसमें विकार उत्पन्न हो गया था।'

"मेरा प्रश्न था, 'विकार स्वयं हुआ था अथवा किसी बाहरी वस्तु के प्रभाव से ?'

'प्रकृति में अपने स्वभाव से विकार हुआ है।'

'तो स्वभाव से विकार मिटना भी स्वयं ही चाहिए।'

"इस प्रकार वादविवाद चलता रहता। अन्त में महाप्रभु निरुत्तर हो जाते तो झुँझला कर कहते, 'देखो तुम अभी बालिका हो। तुम्हें तो अपने गुरुजनों की बात स्वीकार कर लेनी चाहिए। बड़े हो जाने पर सब समझ आ जावेगा।

"मै सोलह वर्ष की हुई तो मेरे में एक नवीन प्रकार की भावना उत्पन्न होने लगी। मेरे मन में लालसा उत्पन्न होने लगी कि मैं पुरुषों और विशेष रूप में युवा पुरुषों के सम्मुख जा कर बैठूँ। उपासना में भी मैं आँखें खोल युवा भिक्षुओं को बैठे देख आनन्द अनुभव करती थी। इस विषय में मैंने अपनी अध्यक्षा कीर्ति देवी से जाकर पूछा कि यह क्यों है। वह हँस पड़ी और बोली कि यह वासना है।

'वह क्या होती है ?' मैंने पूछा।

"उसने इसका उत्तर नहीं दिया। केवल यह कहा, 'भगवान् बुद्ध का चिन्तन करो। उसकी शरण में जाओ। तुम्हे मार्ग दिखावेंगे।'

"मुझे एक नवयुवक भिक्षुक का तेजस्वी मुख कष्ट देने लगा। सोते जागते वह मेरी आँखों के सम्मुख घूमने लगा। जब मैं व्याकुल हो गई तो एक मध्याह्न के समय प्रभु के गृह में जाकर अपनी कठिनाई का वर्णन कर दिया। बताते हुए मेरी आँखों में आँसू भर आये। वे मेरे सिर पर हाथ फेर मुझे ढाढ़स बँधाने लगे।

"मुझे उनका स्पर्श सुखप्रद प्रतीत हुआ। उनके समीप खिसक कर पूछने लगी, 'प्रभु ! मुझे बताओ मैं क्या करूँ ?'

"उनका कहना था, 'भगवान् की शरण में जाओ। तुम्हें वे मार्ग दिखावेंगे।'

"मैंने उनके घुटने पर सिर रख रोते हुए कहा, 'रात भर उनके मंत्र का जप करती रहती हूँ परन्तु कुछ परिणाम नहीं निकलता।'

"उन्होंने मेरे मुख पर हाथ फेर प्यार करना आरम्भ कर दिया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे पूर्ण शरीर में रोमांच होने लगा है। मैं इस रोमांच से अचेत-सी हो गई। प्रभु मुझे अपनी छाती से लगा मेरा मुख चूमने लगे। अन्त में वही हुआ जो इसका परिणाम था।

"इसके कई दिन पीछे मैंने पूछा, 'भगवन्! यह क्या था?'

"उन्होंने कहा, 'यह पतन का मार्ग था।'

'परन्तु अति सुखप्रद था।'

'ठीक है, पर इससे बचने का यत्न करो। भगवान् बुद्ध तुम्हारी सहायता करेंगे।'

"इस पर भी मैं इस मार्ग को छोड़ नहीं सकी। प्रकृति मुझे इस ओर खेंच कर ले जाती है। अब मैं जानती हूँ कि कुछ वृद्ध भिक्षुओं के अतिरिक्त विहार में शायद ही कोई होगा, जो इस पिपासा को सहन कर सकता हो।"

पद्मनाभ अभी नगर-वधू के भवन से होकर आया था। उसके मस्तिष्क में अभी वहाँ का सौन्दर्य, कलामय वातावरण, सभ्य नियंत्रित जीवन का प्रभाव विद्यमान था। उसने नीलमणि को देखा। विहार में युवती तथा सुन्दर होने पर भी नगर-वधू की दासियों के मुकाबिले में कुरूप ही कही जा सकती थी। उसने उसके मुख पर देख कहा, "नीलमणि! तुम यदि विवाह कर लो तो कैसा रहे? भिक्षु-जीवन तुम्हारे अनुकूल नहीं पड़ रहा।"

: १० :

महाप्रभु अपने गृह में बैठा एक पत्र पढ़ रहा था। इस समय पद्मनाभ आ पहुँचा। महाप्रभु ने वह पत्र पद्मनाभ को देते हुए कहा, "इसे पढ़ो।" पद्मनाभ ने पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था—

"श्री १००८ परिव्राजक स्वामी कल्याण जी,

चरणवंदना

"दासी आर्य है। अतः आपको आर्य-परिव्राजकों की मान-प्रतिष्ठा देने पर बाध्य है। संन्यासी पिता तुल्य होते हैं। सब संसार के प्राणी उनके लिए पुत्र-पुत्रियाँ होती हैं। अतः आपका वात्सल्य पाकर दासी अति कृतज्ञता अनुभव करती है। आप विनोदभवन में आइये। दासी का आतिथ्य स्वीकार करिये। इससे दासी कृत्य-कृत्य हो जावेगी।

"उस दिन आप एक संन्यासी के रूप में नहीं आये थे, प्रत्युत किसी गणिका की खोज में आये थे। उस गणिका की खोज में आपका प्रयोजन क्या था, सो तो मैं नहीं जानती। इस पर भी उस दिन की घटना का अर्थ तो उसी खोज का परिणाम माना जाना चाहिये।

"विनोदभवन वासना-तृप्ति का साधन नहीं। यह कला-प्रदर्शन का केन्द्र है। दुर्भाग्य से मानव-समाज अति दुर्बल है। उच्च-से-उच्च मानसिक उड़ान पर उड़ता हुआ मनुष्य दुर्बलता के कारण भूमि पर आ गिरता है। विनोद-भवन में वासना विवशता है। ऐसे ही विहारों में वासना को माना जाता है। यहाँ भी कला के पुजारी वासना में फँस, इससे उठ पुनः कला-क्षेत्र में उड़ने का यत्न करते हैं। मैं समझती हूँ यही बात आप लोग विहारों में करते हैं। दोनों में अन्तर नहीं। आप निर्वाण की खोज में हैं। हम लोग कलामय सृष्टिकर्ता में लीन होने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। शायद दोनों का लक्ष्य एक ही है और नाम-भेद हम दोनों की भूल के कारण हो सकता है।

"अतएव विनोदभवन में पधारिये। दासी के गृह को पवित्र करिये।

विनीता

मृदुला"

"बहुत सुन्दर लिखी है।" पद्मनाभ ने पत्र पढ़ कर कहा।

"परन्तु हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई।"

"आपका उद्देश्य क्या था, भगवन्?"

"उसे फँसाना। यदि वह लिख कर दे देती कि मेरा प्रेम उसने स्वीकार किया है अथवा करने को उद्यत है, तो मैं वैशाली के विधान से उसे मृत्यु-दंड दिलवा देता और मेरे अपमान का बदला निकल जाता।"

पद्मनाभ ने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, "मैं यह उद्देश्य नहीं समझा था। मैं तो यह समझा था कि आप उस सुन्दरी को भूल के मार्ग से निकाल निर्वाण-पथ पर ले जाना चाहते थे। खैर छोड़िये। अब क्या आज्ञा है? आपके लिये विनोद-भवन का द्वार पुनः खुल गया है। क्या आप इससे लाभ उठाना चाहते हैं?"

"इस स्थिति से तो मैं अपमानित हो जाऊँगा।"

"तो फिर क्या किया जाए?"

"अभी इस निमन्त्रण को रहने दिया जाए। हमें अब दूसरी योजना पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये।"

"उसके लिये मेरी योजना तो यह है कि नगर के अपने पक्ष के पाँच प्रतिष्ठित लोगों की एक गुप्त सभा बुला ली जाए और उसमें पूर्ण योजना, उस योजना का उद्देश्य, योजना को सफल करने की विधि और फिर सफलता के पश्चात् उद्देश्य-सिद्धि निश्चित कर लें। इस सभा में हम धन, जन और शस्त्रों के विषय में भी विचार लेंगे।"

महाप्रभु ने कहा, "उद्देश्य तो स्पष्ट ही है। हमें भारत और भारत के बाहर बौद्ध-धर्म का प्रचार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति में ब्राह्मण और क्षत्रियों के राज्य बाधक हो रहे हैं। अतएव इन राज्यों की काया-पलट आवश्यक है। भारतखण्ड के बहुत से भागों में गणराज्य स्थापित हो गये हैं। मगध, अवध, पाञ्चाल, काश्मीर, कोकण इत्यादि कुछ ऐसे राज्य रह गये हैं, जहाँ क्षत्रिय राजा राज्य करते हैं। इनको भी दूर कर गणराज्य बना दिया जाय तो बौद्ध-धर्म प्रचार में बाधा मिट जावेगी।

"यदि तुम यह सभा बुलाने में ही लाभ समझते हो तो एक-एक स्थान के लोगों की सभा बुलानी चाहिये। वैशाली में यदि हम देवधर्मा को पद-च्युत कर सेठ लक्ष्मीकान्त को गणपति बना सकें, तो हमारी आधी विजय हो गई माननी पड़ेगी।"

छः

•

गण-राज्य

•

: १ :

गणपति देवधर्मा अभी सोकर उठा ही था कि उसे अयोध्या से एक दूत के आने का समाचार मिला। दूत एक पत्र लाया था जो उसने स्वयं गणपति की सेवा में उपस्थित होकर दिया।

देवधर्मा ने अपने शयनागार में ही उसे बुलाया और संदेश माँगा। दूत ने पत्र दे दिया। पत्र में केवल यह लिखा था :—

"वैशाली में बल से राज्य पलटने का षड्यंत्र हो रहा है। सावधान रहियेगा।

—भानुमित्र"

देवधर्मा ने पत्र पढ़ पूछा, "और कुछ ?"

दूत ने उत्तर दिया, "बस यही पत्र देने के लिये भेजा है।"

"अच्छी बात है, जा सकते हो।"

दूत चला गया तो देवधर्मा विचार करने लगा कि भानुमित्र ने इतनी दूर से चेतावनी व्यर्थ नहीं भेजी होगी। उसे अपने गुप्तचरों से यह सूचना तो मिल रही थी कि एक उपासक, जिसका नाम पद्मनाभ है, बहुत भाग-दौड़ कर रहा है; परन्तु उसका षड्यंत्र क्या रूप धारण करेगा यह स्पष्ट नहीं हो रहा था।

देवधर्मा ने गुप्तचर विभाग के नायक को बुला कर अधिक सतर्कता से देखभाल रखने का आदेश दे दिया।

उसी दिन संसद् की बैठक थी। उसमें नगर के प्रबन्ध के विषय में अनेकों बातों पर निर्णय किये गए। देवधर्मा को ऐसा प्रतीत हुआ कि संसद् के शत-प्रतिशत सदस्य उसकी नीति को स्वीकार करते हैं।

उसी सायंकाल समाचार आया कि नगर में पूर्ण रूप से शान्ति है। सब लोग खेल-कूद और मनोरंजन में संलग्न हैं।

विनोद भवन में जाने पर देवधर्मा को ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी के भी मुख पर भी कोई विशेष मुद्रा नहीं है। वह अपने आगार में जा रहा था कि नगर के एक विख्यात सेठ सुचन्द्र वहाँ उससे मिले। "ओह सुचन्द्र जी! कहाँ भागे जा रहे हैं?"

"आप ही की ओर आ रहा था।"

"आइये! भीतर आगार में आ जाइये।"

दोनों भीतर चले गए। मखमली आसनों पर बैठ निश्चिन्त हो पान-सुपारी ले, जो उनके भीतर आते ही एक दासी लेकर आई थी, सेठ सुचन्द्र ने बात आरम्भ की।

"आर्य! कल मेरे कनिष्ठ पुत्र की ग्यारहवीं वर्षगाँठ है। इस अवसर पर एक महोत्सव करने की योजना है। सो उस अवसर पर नगर की सब श्रेष्ठ संगीत तथा नृत्य-कला प्रवीण गणिकाएँ आमन्त्रित हैं। आप से भी निवेदन है कि उस समय दर्शन देकर सेवक को कृतार्थ करें।"

"बहुत प्रसन्नता का विषय है, सेठ जी! यह उत्सव किस समय हो रहा है?"

"कल सायंकाल से आरम्भ होकर रात के तीसरे प्रहर तक चलेगा। मृदुला देवी से भी निवेदन किया है। उन्होंने आना तो स्वीकार कर लिया है, परन्तु अपना नृत्य करना अभी स्वीकार नहीं किया। कहती हैं दस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा एक नृत्य का लेंगी।"

"तो फिर क्या निश्चय हुआ है?"

"यूँ तो आपकी कृपा है। इतना धन दिया जा सकता है, परन्तु यह है बहुत अधिक।"

"हाँ, कुछ अधिक तो है परन्तु जिस दिन वह यहाँ अपने भवन में नाचती है तो डेढ़-दो सहस्र मुद्रा एकत्रित हो जाना साधारण-सी बात है।"

"पर भद्र! दस और दो में भारी अन्तर है।"

"ठीक है। उसके अतिरिक्त और कौन आ रही है।"

"आने को तो नगर-भर की गणिकाएँ आ जावेंगी और सब का खर्चा मिलकर भी सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम ही पड़ेगा; परन्तु मित्र-लोग आग्रह कर रहे हैं कि मृदुला का वीणा-वादन और नृत्य अवश्य हो।"

"सेठजी! इस वर्ष रेशमी माल में आपको बहुत लाभ हुआ है। कुछ व्यय हो जावेगा तो क्या हानि है। फिर मृदुला देवी जब से नगर-वधू बनी हैं, कभी किसी के घर नृत्य के लिए नहीं गईं। आपके घर पर जाने को तैयार हो गई हैं, यही बड़ी बात है।"

"तो आपकी सम्मति है, दस सहस्र मुद्रा दे दी जावें?"

"मेरा कहना तो यह है कि ऐसी बातों में मोल-तोल के कुछ अर्थ नहीं।"

"बहुत ठीक। मैं अभी सेवक भेज धन जमा करा देता हूँ।"

इतना कह सेठ सुचन्द्र प्रणाम कर वहाँ से चला गया। उसके जाने के पश्चात् मृदुला देवी आई। नमस्कार कर सम्मुख बैठ गई। "क्या पान लीजिएगा?"

"अभी पान लिया है और कुछ आवश्यकता नहीं। तो सेठ सुचन्द्र के यहाँ तुम जा रही हो?"

"निमन्त्रण तो है। सेट साहब बहुत ही सज्जन, मृदुभाषी और सभ्य नागरिक हैं।"

"ठीक है! ठीक है! मैं मना नहीं कर रहा। मैंने तो यह ऐसे ही पूछा है।"

"हाँ आर्य! आज अयोध्या के महामात्य का पत्र आया है।"

"अच्छा! क्या लिखा है?"

"बहुत ही दयालु हैं वे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनको महाप्रभु के

मुझ पर डोरे डालने का पता चल गया है। वे लिखते हैं कि यदि मुझे किंचित् भी भय प्रतीत हो तो मैं तुरन्त भागकर अयोध्या चली आऊँ।"

"सत्य!" गणपति का मुख गम्भीर हो गया। उसके मन में विचार आया कि भानुमित्र को किसी विशेष षड्यन्त्र का पता चला है। तभी तो वह अपनी प्रेमिका को सचेत कर रहा है। उसने धीरे-धीरे कहा, "प्रतीत होता है कि भानुमित्र को किसी उपद्रव की आशंका हो गई है।"

बात इसके आगे नहीं चल सकी। देवधर्मा को इस विषय में कुछ भी मालूम न था।

: २ :

देवधर्मा ने नगर-पालक को बुला कर सचेत कर दिया, "मुझे विश्वस्त सूत्र से यह सूचना मिली है कि नगर में कुछ लोग उपद्रव करने वाले हैं। सब नगर-संरक्षकों को सतर्क और अपने-अपने स्थान पर सदैव उपस्थित रहना चाहिए।"

गुप्तचर विभाग को पुनः सचेत किया गया। इस पर भी नगर में पूर्ण रूप से शान्ति थी और व्यापार यथापूर्व चल रहा था।

सायं सुचन्द्र सेट के मकान पर भारी समारोह था। यह बात नगर-भर में विख्यात हो गई थी कि नगर-वधू सेठजी के उत्सव में नाचने आ रही है। इससे वे सब, जो सेठ साहब के मेहमान हो सकते थे, निमन्त्रण पाने का यत्न कर रहे थे। नगर के वे लोग जो नृत्य नहीं देख सकते थे, गृह के बाहर केवल दर्शन के लिए एकत्रित हो गए थे।

सहस्रों दीप शिखाएँ और भाँति-भाँति की सजावट गृह में हो रही थी। नगर के धनी-मानी लोग रंग-बिरंग के रथों पर सवार हो उत्सव के समय से पूर्व ही वहाँ पहुँच रहे थे। जब गणपति अपने रथ में अपनी लड़कियों सहित आये, तो लोगों ने वैशाली की जयजयकार की गर्जना की और जब नगर-वधू मृदुला देवी पधारीं तो एकटक उसका सौन्दर्य देखते रह गए।

गृह के भीतर एक बहुत खुला मैदान था। उसमें एक बहुत लम्बा-चौड़ा शामियाना लगा था, जिसमें एक ओर लकड़ी का विशाल मंच बना था। मंच के सम्मुख दरियाँ, कालीन तथा सफेद चादरों पर दो सहस्र के लगभग मेहमानों के बैठने का प्रबन्ध था।

इस मैदान के चारों ओर सेठ सुचन्द्र के गोदाम थे, जिनमें विदेशों में भेजा जाने वाला माल जमा रहता था। इस मैदान के एक ओर सुचन्द्र का निवास-गृह भी था।

उत्सव का प्रथम कार्य तो खाने-पीने तथा बधाई और बालक को आशीर्वाद देने का था। इसके समाप्त होते-होते अन्धेरा हो गया था। पूर्ण मैदान और विशेष रूप में शामियाने के नीचे मंच दीप-शिखाओं से प्रकाशमय हो रहा था।

जब गाने-बजाने वाले मंच पर बैठे तो दर्शक भी शामियाने में आकर यथोचित स्थानों पर बैठ गये।

मंगलाचरण से उत्सव आरम्भ हुआ। कभी वीणा-वादन, कभी संगीत और कभी नृत्य होता रहा। सब इस कला-प्रदर्शन से अति प्रसन्न थे। इस पर भी उत्सुकता से नगर-वधू के मंच पर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इस बीच श्रोतागणों को मिठाई और मद्यवितरण हो रही थी। लोग निस्संकोच खा और पी रहे थे।

इस उत्सव के मध्य में सेठजी का एक सेवक लोगों में लाँघता हुआ सब से आगे बैठे गणपति के पास पहुँचा और बोला, "आपसे नगर-पालक बाहर मिलना चाहता है।"

गणपति को भानुमित्र से सचेत किया जाना स्मरण हो आया। उसने समझा कि अवश्य कोई नवीन सूचना मिली है। सो वह पास बैठे सुचन्द्र को यह कह कि मैं अभी आता हूँ, बाहर चला गया।

इसके पश्चात् कुछ काल तक नगर की एक और गणिका का नृत्य चलता रहा। इस नृत्य के पश्चात् नगर-वधू का गायन होना था। इस कारण सेठ सुचन्द्र ने उठ कर मंच पर खड़े हो यह घोषणा की, "अब वैशाली नगर

की विभूति, जगत्प्रसिद्ध मृदुला देवी अपनी कला का प्रदर्शन करेंगी। सबसे प्रथम वह वीणा-वादन करेंगी। पश्चात् संगीत होगा और अन्त में आज के उत्सव की अन्तिम कार्यवाही उनका नृत्य होगा।"

इस घोषणा को सुन, 'धन्य हो धन्य हो' का नाद चारों ओर से होने लगा। सेठ सुचन्द्र मंच के नीचे उतर आया। मंच पर नया कालीन और उस पर कौशेय बिछा दिया गया। तीन कौशेय आवरण वाले प्रश्रय रख दिये गये और एक अति सुन्दर, बहुत बड़ी वीणा रख दी गई। इस समय एक दासी वीणा स्वर करने और मृदंग बजाने वाला असुर नाम का आन्ध्र-निवासी वहाँ आ गये और वाद्यों को स्वर करने लगे।

सेठ सुचन्द्र उठ-उठकर बेचैनी से बाहर की ओर देख रहे थे। लोगों का अनुमान था कि मृदुला देवी, जो सेठ साहब के आगार में शृंगार कर रही थी, आने वाली है और उसकी प्रतीक्षा में सेठ साहब परेशान हैं।

वाद्य स्वर हो गये तो दासी, जो वीणा स्वर कर रही थी, प्रश्रयों के पीछे होकर बैठ गई। इस समय मृदुला देवी सेठ सुचन्द्र के गृह से निकल, शामियाने में आ गई। उसका शृंगार सोने पर सुहागे का काम कर रहा था। सब की दृष्टि उधर घूम गई। सिर पर कुछ बाँई ओर, बड़ा-सा जूड़ा था, जिस पर मोतिये के फूलों की-लड़ियाँ बँधी थीं। गले में वैजयन्ती की माला और कमर में सात लड़ी मोतियों की तड़ागी थी। पाँव में चान्दी के घुँघरू बँधे थे और नीचे लाल रंग के कपड़े का जूता था।

आँखों में काजल और अधरों पर मिस्सी, चुबुक पर काले तिल का चिह्न बना था; पीतवर्ण कौशेय की चोली, जो शरीर के साथ सटकर शरीर की सब रेखाओं को ठीक-ठीक प्रकट कर रही थी; नीचे लँहगा था, जिसका कमरबन्धन बहुत छोटा और नीचे घेरा बहुत बड़ा था।

नगर-वधू के पीछे दो दासियाँ हाथों में बड़े-बड़े तानपूरे लिये थीं, जिनमें सोने की तारें मढ़ी थीं।

नगर-वधू मंच पर चढ़ी तो लोगों ने प्रसन्नता से जयजयकार की घोषणा की। लोगों ने पुष्पों की वर्षा की। पुष्प-गुच्छ और मालाओं का मंच पर

ढेर लग गया।

नगर-वधू ने अपना इतना स्वागत देखा तो प्रसन्नता से देदीप्यमान हो, हाथ जोड़ चारों ओर घूम कर नमस्कार की और तदोपरान्त एक प्रश्रय के सम्मुख बैठ वीणा की तारों को हिला स्वर देखा, पश्चात् कुछ दोष पा वीणा को उठा उसका स्वर ठीक करना आरम्भ कर दिया। साथ आई दासियाँ उसके दोनों ओर बैठ गईं और अपने-अपने तानपूरे का स्वर देखने और ठीक करने लगीं।

इस समय सेठ सुचन्द्र घबरा कर उठा और शामियाने के बाहर गया, परन्तु तुरन्त ही लौट आया और आकर अपने स्थान पर बैठ गया।

गणपति को वहाँ न देख मृदुला कुछ चिन्तित थी। इस पर भी उसने वीणा-वादन आरम्भ कर दिया। मालकौंस राग था। मींड और स्वर-कम्पन, बीसियों तारों के स्वरों की झंकार और मालकौंस का स्वर-संग्रह इतनी कुशलता से आरम्भ हुआ कि श्रोतागण मुग्ध हो सुनने लगे।

ज्यों-त्यों समय बीतने लगा। स्वरों की तरंगें उच्च और उच्च ग्राम में चढ़ने लगीं और उनके साथ-साथ लोगों के सिर घूमने लगे। मृदंग से संगत देने वाला असुर अपनी उँगलियों से वह स्फूर्ति दिखा रहा था कि श्रोतागण वाह-वाह किये बिना नहीं रह सके।

अब फिर सुचन्द्र अपने स्थान से उठा और बाहर की ओर चला। इसी समय गणपति पीत तथा चिन्तित मुख लिये शामियाने में आया। उसके पीछे एक और व्यक्ति अति प्रसन्न-वदन और अति सन्तोष-मुद्रा के साथ आता दिखाई दिया। लोग वीणा के सुनने में इतने लीन थे कि उन्हें गण-पति में कोई विशेषता प्रतीत नहीं हुई। न ही उनके पीछे-पीछे आने वाले व्यक्ति की ओर किसी का ध्यान गया।

परन्तु ये दोनों घटनाएँ मृदुला की दृष्टि से बच नहीं सकीं। वह इन दोनों को देख विस्मय में वीणा बजाना भूल गई। उसने वीणा से हाथ उठा लिये। सबका ध्यान टूट गया। संगीत-प्रवाह में यह रोक दो क्षण तक ही रही। मृदुला सचेत हो गई। उसने दोनों हाथ जोड़, दोनों आने वालों को

नमस्कार की और तुरन्त ही पुनः वीणा बजानी आरम्भ कर दी।

श्रोतागणों को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि नगर-वधू के बजाने में विशेष स्फूर्ति आ गई है। उसके स्वर-संग्रह में अधिक माधुर्य उत्पन्न हो गया है। इस संगीत की उत्कृष्ट माधुरी में लोग अपने को इतना विस्मरण कर गये थे कि उनको पता ही नहीं चला कि सेठ सुचन्द्र शामियाने के बाहर गये और नहीं लौटे।

आज मृदुला का वाद्य-वादन, गायन और नृत्य इतना श्रेष्ठ हुआ कि वे लोग भी, जो मृदुला का संगीत सुनने के अभ्यासी थे, वाह-वाह कर उठे।

जब वह गा रही थी,

"अब मैं उन्माद भरी पायो प्रीतम अपनो।"

लोगों ने स्वर्ण-मुद्राएँ, अँगूठियाँ, कंठियाँ उपहार में मंच पर फेंकनी आरम्भ कर दीं। जब तक नृत्य समाप्त हुआ, इन स्वर्ण उपहारों का ढेर लग गया था। नीचे भूमि पर दर्शकों की सबसे प्रथम पंक्ति में बैठा गणपति अपने साथ बैठे उस नव आगन्तुक व्यक्ति को कह रहा था, "वत्स भानुमित्र! यह सब कैसे हुआ?"

"भगवन्! मृदुला देवी का नृत्य तनिक देख लें। फिर चल कर सब बात समझ लेंगे। ऐसा स्वर्गीय अवसर पुनः न जाने कब मिले।"

अब देवधर्मा के रक्त-विहीन होठों पर भी हँसी दौड़ गई।

: ३ :

उत्सव के पश्चात् मृदुला लपक कर मंच से नीचे उतर और भानुमित्र के चरणस्पर्श कर हाथ जोड़ खड़ी हो गई। भानुमित्र इस श्रृंगार में उसे देख विस्मय, उल्लास और उसके सौन्दर्य से चढ़ी मादकता में उसे देखता रह गया।

मृदुला को गणपति के साथ खड़े युवक के चरणस्पर्श करते देख सब लोग विस्मय में उसका परिचय पाने के लिये तीनों को घेर कर खड़े हो गये। मृदुला ने पूछा, "आर्य! कब आये?"

"कल मिलूँगा।"

मृदुला आतुर नेत्रों से उसकी ओर देखती रही। इस पर एक सेठ ने गणपति के समीप पहुँच नम्रता से पूछा, "महाराज! इनका परिचय पाने के लिये सब उपस्थित-गण उत्सुक हैं।"

देवधर्मा ने भानुमित्र की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा और उस ओर से कोई आपत्ति न पा कहा, "आप अवध के महामात्य श्री भानुमित्र जी हैं।"

अवध के महामात्य का नाम सुन और उन्हें मृदुला के नृत्योत्सव में उपस्थित देख, सब विस्मय में हाथ जोड़ नमस्कार करने लगे।

उत्सव के उपरान्त देवधर्मा भानुमित्र को अपने रथ में बैठा अपने निवास-स्थान पर ले गया। वहाँ बहुत से लोग पहले ही उपस्थित थे। वे सब इन दोनों को देख मार्ग छोड़ खड़े हो गये। प्रभा और ऊषा, जो रथ में साथ ही थीं, आवास के भीतरी भाग में चली गईं। देवधर्मा और भानुमित्र बाहर बैठक में जा पहुँचे। बैठते ही भानुमित्र ने कहा, "मुझे कल इस षड्यंत्र का पता मिला तो मैं अपने साथ पन्द्रह सैनिक ले स्वयं चल पड़ा। यहाँ पहुँच मैंने आपकी मुद्रा से लाभ उठाया। उसे दिखा नगरपालक से पचास संरक्षक ले जंगल में भेज दिये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग वहाँ से लौट आये हैं और बाहर खड़े हैं।

"उन लोगों को वहाँ भेजने का प्रयोजन यह था कि योजना के अनुसार आपको कैद कर वहाँ ले जाने का प्रस्ताव था और वहाँ से आपको या तो मल्लराज्य में भेज दिया जाता या आपकी हत्या कर दी जाती। मेरा अनुमान था कि महाप्रभु ने वहाँ उपस्थित रहना था।

"मुझे मेरे एक गुप्तचर ने नगर-द्वार पर मिलना था। वह वहाँ नहीं मिला। इस पर भी मुझे यह तो विदित हो चुका था कि आपको आज सायं बन्दी बनाने की योजना थी। इस कारण मैंने नगरपालक से आपका पता पूछा। उसने सेठ सुचन्द्र का गृह बताया। मैं अपने सैनिकों को ले सेठ साहब के घर पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही मैंने आपके विषय में पूछा। विदित हुआ कि सेठ साहब के एक सेवक के साथ घर के भीतर गये हैं। वहाँ जाने

से मुझे सेठ साहब के सेवकों ने रोका। मैंने बताया कि मुझे गणपति जी को पकड़ कर बौद्ध-विहार में ले जाने की आज्ञा हुई है। इसीलिए ये सैनिक लेकर मैं आया हूँ।

"यह बात चल गई। सेवक मुझे उस आगार में ले गया, जहाँ आपके हाथ-पाँव बाँधे जा रहे थे। ईश्वर का धन्यवाद है कि मैं समय पर पहुँच गया। वे आपको छुपा कर मकान के पीछे खड़े रथ पर बाँधकर, उसी जंगल वाले स्थान पर ले जाने वाले थे। चार सैनिक थे। मेरे सैनिकों ने उनको पकड़ लिया। वहाँ मैंने अपने सैनिक नियुक्त कर दिये और और आपको छुड़ा कर पुनः उत्सव में ले जाना अत्यावश्यक समझा। यदि कहीं आपके लोप हो जाने का समाचार नगर में फैल जाता तो नगर में उपद्रव हो जाना सम्भव था।"

"बहुत विचित्र है। मेरे गुप्तचर यह सब कुछ पता नहीं कर सके। शायद मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ और राज्य-कार्य चलाने के योग्य नहीं रहा। भानुमित्र! तुम्हारा अत्यन्त धन्यवाद है। तुमने मेरी जान ही नहीं बचाई, प्रत्युत वैशाली में भारी रक्तपात होता रोक दिया है।"

"अब हमें जंगल से आये लोगों को बुलाना चाहिये। वे आपके नगर-पालक के भेजे सैनिक हैं।"

देवधर्मा ने समीप लटके घड़ियाल को बजाया। गणपति भवन का मुख्य संरक्षक आया। गणपति ने पूछा,

"ये बाहर कौन लोग हैं?"

"नगरपालक के सैनिक हैं। उनकी आज्ञा से नगर के बाहर विहार के सम्मुख जंगल में शिव-मन्दिर में गये थे। वहाँ से दस सैनिक और एक रथ और एक भिक्षुणी को पकड़ कर लाये हैं।"

"नगरपालक के सैनिकों के नायक को भीतर भेज दो।"

नायक आया तो नमस्कार कर सम्मुख खड़ा हो गया। गणपति ने पूछा, "आप लोग किसकी आज्ञा से शिव-मन्दिर में गए थे?"

"नगरपालक महाराज ने आज्ञा दी थी कि आपकी (भानुमित्र की ओर

उँगली कर कहा) आज्ञा का पालन करूँ। आपने मुझे पचास सैनिक ले शिव-मन्दिर में, जो लोग भी हों, सब को पकड़ कर गणपति के भवन में लाने की आज्ञा दी थी। आपकी आज्ञा से हम सब लोग तैयार बैठे थे। सो तुरन्त घोड़ों पर सवार हो वहाँ जा पहुँचे। वहाँ दस सैनिक एक रथ लिये किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। बहुत लड़ाई नहीं हुई। जब उन्होंने देखा कि हमारी संख्या अधिक है तो उन्होंने हथियार डाल दिए। इनको बन्दी बना लेने के पश्चात् मैंने शिव-मन्दिर की तलाशी ली। मन्दिर के भीतर एक बौद्ध भिक्षुणी को, हाथ-पाँव रस्सी से जकड़ कर बँधे, पड़े पाया। उसके मुख में कपड़ा ठूँसा हुआ था और मुख पर पट्टी बँधी थी। हम उसे भी पकड़ लाए हैं।"

गणपति ने विस्मय में भानुमित्र का मुख देखा। उसने कह दिया कि वह इसके विषय में कुछ नहीं जानता। इस पर गणपति ने नायक से कहा, "पहले उस स्त्री को बुलाओ।"

नायक बाहर गया और अपने सैनिकों से पकड़ी हुई भिक्षुणी को भीतर ले आया। यह नीलमणि थी। इसके एक हाथ में सुदृढ़ रस्सी बँधी थी और वह रस्सी नायक पकड़े हुए था।

नीलमणि ने गणपति के सम्मुख आ केवल मुस्करा दिया। गणपति ने पूछा, "क्या नाम है?"

"नीलमणि!"

"नीलमणि? तुम तो हमारे गुप्तचर विभाग की हो न?"

"हाँ महाराज!"

"तुम कैसे पकड़ी गई हो?"

"पद्मनाभ आज दिन के तीसरे पहर शिव मन्दिर की ओर चल पड़ा तो मैंने समझा कि वहाँ अवश्य कोई बात है। मुझे अपने नायक की सूचना आई थी कि मैं महाप्रभु और पद्मनाभ की देखभाल रखूँ। मैं उसके पीछे-पीछे छुप कर वहाँ पहुँच गई। पद्मनाभ ने महाप्रभु से कुछ बातचीत की और तब महाप्रभु लक्ष्मीदेवी पन्थागार की ओर चले गए। पद्मनाभ

मन्दिर के बाहर निकला तो मैं एक झाड़ी के पीछे छुपी हुई थी। उसकी दृष्टि मेरी ओर पड़ गई। इस पर उसने मुझ छिपी को हाथ से पकड़ झाड़ी से निकाल लिया। वह बोला, "नीलमणि! तुमने यहाँ आकर ठीक नहीं किया। अच्छा! अब रात-भर तुम यहाँ पर कैद रहोगी। प्रातःकाल आकर तुम्हें छुड़ाऊँगा।"

इतना कह उसने मेरे हाथ-पाँव रस्सियों से, जो मन्दिर के कोने में रखी थीं, बाँध कर मुझे भीतर के आगार में डाल दिया। वहाँ मेरे उत्तरीय को फाड़ मेरे मुख में ठूँस दिया और ऊपर से उसी की एक पट्टी बाँध दी। इस प्रकार मुझे वहाँ छोड़ वह चला गया।"

"तुमने वहाँ पर होने वाली घटना की कोई सूचना नहीं भेजी।"

"जब से यह पद्मनाभ वहाँ आया है, तब से महाप्रभु मुझसे तटस्थ रहने लगे थे। इस कारण मुझे बहुत कम बातें पता चली हैं।"

"यह पद्मनाभ कोई बहुत चतुर आदमी प्रतीत होता है।" गणपति ने कहा

इस समय गणपति भवन का मुख्य संरक्षक भीतर आया और बोला, "महाराज! नगरपालक स्वयं आया है। वह अपने साथ एक आदमी को बन्दी बना लाया है।"

"उसे बुलाओ।"

नगरपालक पद्मनाभ को बन्दी के रूप में साथ लाया। गणपति ने पूछा, " इस आदमी को कहाँ पकड़ा है तुमने?"

"चौमुखा के समीप सेठ महेश्वरी के पन्थागार को आग लगाता पकड़ा गया है। जब यह मेरे कार्यालय में लाया गया तो इसने कहा कि इसे तुरन्त आपके सम्मुख उपस्थित किया जाए। मैं इतनी रात गये आपको कष्ट नहीं देता, परन्तु जब इसने आग्रह किया और बताया कि इसमें वैशाली की रक्षा का सम्बन्ध है, तो मैं इसे ले आया हूँ।"

गणपति ने बंदी की ओर देख पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

"मेरा नाम और परिचय तो महामात्य ही देंगे।"

मातृमित्र पद्मनाभ को इस प्रकार फँस गया देख मुस्करा रहा था। उसने गणपति जी को बताया, "यही हमारा गुप्तचर है, जो बौद्ध-विहार में कार्य करता था। इसका नाम पद्मनाभ है। इसने मुझे पूर्ण षड्यन्त्र की सूचना और ब्योरा भेजा था। इसी ने ही मुझसे नगर-द्वार पर मिलना था। अब अपने पकड़े जाने की बात तो यही बताएगा।"

नीलमणि जो अभी वहीं खड़ी थी, विस्मय में अवाक्मुख रह गई। गणपति को भी बहुत विस्मय हुआ। पद्मनाभ का नाम तो वह कई बार सुन चुका था, परन्तु उसका अवध-राज्य का गुप्तचर होना और उसका पूर्ण षड्यन्त्र का पता करना, बहुत ही विचित्र था। इस परिचय के पश्चात् पद्मनाभ ने अपने पकड़े जाने की कहानी सुना दी।

"पहले मेरी नियुक्ति शिव-मन्दिर में की गई थी। पश्चात्, न जाने क्यों, महाप्रभु ने मुझे चौमुखा के पन्यागार में भेज दिया। मुझे यह आज्ञा दी कि मैं पन्यागार में छुपे एक सौ सैनिकों को ले, सेनापति को धोखे से बन्दी बना लूँ। अतएव शिवमन्दिर से चल मैं पन्यागार में पहुँचा। वहाँ पर महाप्रभु की यह आज्ञा पहुँच चुकी थी कि मैं बहुत सी रहस्य की बातों को जान गया हूँ, इस कारण जब उपद्रव आरम्भ हो तो कार्य की सफलता के निमित्त सबसे प्रथम मेरी ही बलि दी जाए। यह मुझे वहाँ एकत्रित सैनिकों के परस्पर वार्तालाप से पता चल गया। मैं पन्यागार के गोदाम में जा पहुँचा। वहाँ बहुत सा तेल-घी पड़ा देख, मैंने पन्यागार को ही जला देने का निर्णय कर लिया। इसमें मेरा प्रयोजन यह था कि वहाँ एकत्रित सैनिक तितर-बितर हो जावें, जिससे उपद्रव होने से रुक जावे।

आग लग गई और पन्यागार जल कर भस्म हो गया; परन्तु गोदाम के संरक्षक ने मुझे गोदाम से भागते देख लिया और मेरे पीछे भाग मुझे पकड़ लिया। वहाँ एकत्रित सैनिक आग में फँस गये और कुछ तो उसमें जल कर भस्म हो गये तथा कुछ अधझुलसी अवस्था में निकले हैं। शेष इस गड़बड़ से इतने भयभीत हुए हैं कि दुम दबा कर अपने-अपने घरों को लौट गए हैं।"

: ४ :

यह ठीक था कि षड्यन्त्र टूट गया। साथ ही यह भी ठीक था कि कोई मुख्य व्यक्ति न तो पकड़ा जा सका, न ही अपराधी सिद्ध हो सका। नीलमणि और पद्मनाभ षड्यन्त्र की रात को ही छोड़ दिये गए थे। दोनों अब वैशाली में पुनः गुप्तचर का कार्य करने के अयोग्य हो गए थे। पद्मनाभ अयोध्या लौट गया। नीलमणि ने भिक्षुणी का बाना छोड़ गृहस्थ स्वीकार कर लिया। वह भी पद्मनाभ के साथ उसकी अविवाहित पत्नी बन अयोध्या चली गई।

महाप्रभु, लक्ष्मीदेवी के पन्थागार में समाचार की प्रतीक्षा में रात-भर बैठा रहा। उसके आयोजन के अनुसार गणपति को पकड़ मार डालने का समाचार रात्रि के दूसरे प्रहर आना चाहिए था। इसके तुरन्त ही पीछे सेनापति के बन्दी कर लिये जाने का समाचार आना था। पश्चात् लक्ष्मीकान्त के गणपति बन पूर्ण राज्य के प्रबन्ध को अपने हाथ में कर लेने की बात थी।

कोई ऐसा समाचार नहीं मिला। प्रातःकाल महेश्वरी के पन्थागार के जल कर भस्म हो जाने का समाचार मिला। सेठ सुचन्द्र के बन्दी हो जाने का समाचार भी मिला और पद्मनाभ तथा नीलमणि के चुपचाप अयोध्या चले जाने की सूचना मिली। महाप्रभु को जब विश्वास हो गया कि सब-कुछ विफल गया है, तो वह अपना दण्ड उठा, पश्चिम् की ओर बौद्ध-विहारों की देख-भाल के लिए चल दिया।

भानुमित्र के वैशाली आने का समाचार पा उसे संसद् की ओर से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर देवधर्मा ने सेठ सुचन्द्र के गृह में अपने पकड़े जाने और फिर भानुमित्र से समय पर पहुँच छुड़ाये जाने का पूर्ण वृत्तान्त बताया। साथ सेठ सुचन्द्र का इस षड्यन्त्र में उल्लेख करते हुए कहा, "सेठ साहब इस समय बन्दी-गृह में हैं और उन पर विद्रोह का अभियोग चल रहा है।"

संसद् के कुछ लोग, जो इस षड्यन्त्र में सम्मिलित थे, भयभीत हो चुपचाप बैठे रहे और जब गणपति के बच जाने और वैशाली में विप्लव होते होते रह जाने पर लोगों ने जयघोष किया तो ये लोग भी डर के मारे सब के साथ हर्ष-प्रदर्शन में सम्मिलित हो गए।

भानुमित्र ने इस सम्मान का उत्तर देते हुए कहा, "वैशाली के प्रतिष्ठित नागरिको! मैं जब अपने देश से चला था तो वैशाली की सेवा करने के विचार से ही चला था; परन्तु यहाँ की घटनाओं के चक्र में पड़, मैं अवध का महामात्य बन गया हूँ। इस पर भी मेरा प्रेम वैशाली से है। कई ऐसे सूत्र हैं, जिनके कारण मैं वैशाली से बँधा हुआ हूँ।

"मेरा उद्देश्य भारत खण्ड में एक सांस्कृतिक समाज को स्थिर रखना है। यदि किसी प्रकार यह सांस्कृतिक ऐक्यता टूट गई तो भारत ऐसे गर्त में गिरेगा, जिससे निकलना कठिन हो जावेगा। इस योजना में यदि कोई वस्तु बाधक है, तो छोटे-छोटे राज्यों का स्वार्थ और परस्पर का वैमनस्य।

"इस समय भारत में एक नवीन संस्कृति की सृष्टि की जा रही है। यह बौद्ध संस्कृति है। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि बौद्ध विचार-धारा भारतीय संस्कृति में संशोधन बन जाए, उसकी स्थानापन्न न बने।

"वर्णाश्रम धर्म हमारी समाज के संगठन का आधार है। इसमें उचित संशोधन होने में ही समाज का भला है। इसके स्थान पर वर्णसंकर समाज की स्थापना एक महान् पतन की ओर अभिमुख होना होगा।

"इस एक संस्कृति के नाते हमें एक-दूसरे का सहायक होना आवश्यक है। मैं इन्हीं भावनाओं से प्रेरित हो यह सब कुछ करने में सबल हुआ हूँ।"

यह दिन वैशाली में भारी समारोह का रहा। ज्यूँ-ज्यूँ गणपति को बन्दी बनाने के प्रयत्न का समाचार और अवध के महामात्य का समय पर पहुँच, इस प्रयत्न को विफल बनाने का समाचार लोगों को विदित होता गया, लोगों में प्रसन्नता की मात्रा बढ़ती गई। सायंकाल होते-होते प्रसन्नता की मात्रा इतनी बढ़ गई कि लोगों ने घर-घर दीपावली कर दी; बाजे बजाये; शंख, घड़ियाल, भेरी, दुंदुभी और नरसिंहों का कोलाहल नगर-

भर में व्यापक हो गया।

नगर में सबसे अधिक दीपावली विनोद-भवन में हुई। सायं समय गणपति महामात्य को रथ में लेकर नगर में घूमता हुआ विनोद-भवन में जा पहुँचा। लोगों को पहले ही आशा थी कि गणपति और महामात्य वहाँ पधारेंगे। इस कारण आधे से अधिक नगर के लोग गणपति को बधाई देने और महामात्य के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने वहाँ एकत्रित हो गए थे। विनोद-भवन के बाहर लोगों की इतनी भीड़ हो गई थी कि उनमें से रथ चलना कठिन था। इससे विनोद-भवन से कुछ अन्तर पर ही गणपति और महामात्य को रथ छोड़ना पड़ा।

बहुत कठिनाई से भीड़ में से लांघते हुए दोनों विनोद-भवन के सम्मुख पहुँचे। उनको विनोद-भवन की बाहर वाली सीढ़ियाँ चढ़, उसके विशाल चौतरे पर खड़े हो हाथ जोड़ नमस्कार करते देख, लोगों ने जय-जयकार बुलाई, 'गणपति देवधर्मा की जय हो। अवध के महामात्य श्री भानुमित्र की जय हो।' इत्यादि।

इस प्रेम-प्रदर्शन को देख भानुमित्र के मन में यह विचार आया कि गणपति का पद लोगों को राजा के पद से अधिक प्रिय है। जनता के इस प्रसन्नता-प्रदर्शन से उसका मन हर्ष से भर गया।

विनोद-भवन के भीतर एक और समारोह की तैयारी हो रही थी। मृदुला ने विनोद-भवन के सब सदस्यों को निःशुल्क भोज दिया था और इस अवसर पर अपना नवीन नृत्य, 'स्वतन्त्र वैशाली' के शीर्षक से देने का वचन दिया था।

जब गणपति और महामात्य भवन में प्रविष्ट हुए तो मृदुला अपनी इक्कीस सर्वांगसुन्दर दासियों सहित उनके स्वागत के लिए खड़ी थी। मृदुला ने पहले गणपति के गले में मुक्ताहार पहनाया, पश्चात् महामात्य के। दोनों हारों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखा था।

पश्चात् स्वयं दासियों सहित उनके आगे-आगे पुष्प बिछाती हुई मार्ग-प्रदर्शन करती हुई चलती गई।

वह उन्हें विनोद-भवन के सबसे बड़े आगार में ले गई। वहाँ आज सब वर्ग के सदस्य एकत्रित हो रहे थे और लगभग एक सहस्र लोगों के लिए भोजन का प्रबन्ध था। दोनों अतिथियों के वहाँ पहुँचते ही आगार के एक ओर ऊँचे मंच पर खड़ी एक सौ एक दासियों ने मंगलगीत गाना आरम्भ कर दिया। भानुमित्र यद्यपि विनोद-भवन में कई बार आ चुका था, परन्तु आज की इसकी सजावट और इस भवन में नगर के सर्वश्रेष्ठ धनी मानियों, योद्धाओं और विद्वानों को एकत्रित देख चकित रह गया।

मंगलगीत के समाप्त होने पर वैशाली का राष्ट्रगीत आरम्भ हुआ। इस समय सब लोग खड़े हो हाथ जोड़, आँखें मूँद श्रवण करने लगे। दासियों ने गाया :—

हे शंकर हर ले पाप सकल,
हम सबल सफल हों काम सदा।
वैशाली शोभे नभ मण्डल,
सविता सी ओजमयी वसुधा॥

तीखी त्रिशूल कर में भयंकर,
हित मानव मन में हो शंकर।
जन शासन पर सत्य सरलता,
ध्वज में सोहें चिह्न सर्वदा॥
वैशाली······

वीर धीर सुभट्ट सब सोहें,
ज्ञानवान तव ही पग जोहें।
कर्म निष्ठ सेठी बहुमानी,
तृप्त शूद्र हो राष्ट्र सम्पदा॥

ऐसा वर दे शंकर भोले,
हम सबल सफल हों काम सदा॥
वैशाली······

राष्ट्रीय गीत के पश्चात् भोज आरम्भ हुआ। जब लोग खा-पी रहे थे

गणपति महामात्य को लेकर लोगों से भेंट करा रहा था।

मृदुला अपने नृत्य के लिए तैयारी करने नेपथ्य में चली गई थी। लोग पंक्तियों में चौकियां लगा बैठे फल, मेवे, मांसादि भुने पदार्थ और मृद्विकासव पी रहे थे। विनोद-भवन की दास-दासियाँ इन भोजन के पदार्थों से उन चौकियों पर रखी सोने-चाँदी की गंगा-जमुनी थालियों को भर रहे थे और लोग अति आनन्दपूर्वक इन उत्तम पदार्थों का रस-स्वादन कर रहे थे। गणपति महामात्य को साथ-साथ लिये नगर के विशेष लोगों का परिचय करा रहे थे, "यह हैं हमारे सेनापति श्री शूरसेन।" महामात्य ने हाथ जोड़ नमस्ते कही तो शूरसेन ने भुने मृग-मांस के लड्डू को चबाते हुए हाथ जोड़ दिये। मुख भरा होने से बोल नहीं सका। गणपति हँस पड़ा। इस पर साथ की चौकी पर बैठे एक सज्जन बोल उठे, "ऐसे समय में तो, महाराज! सेनापति जी से बात करने में अन्याय हो जावेगा।"

समीप बैठे अन्य लोग भी हँसने लगे। गणपति ने इस बोलने वाले का परिचय दे दिया, "यह हैं पं० चन्द्र। हमारे राज्य में अस्त्र-शस्त्र शास्त्री हैं। इन्होंने एक नये प्रकार का कमान बनाया है, जो तीरों के स्थान शत्रु पर अग्नि बरसाता है।"

महामात्य ने हाथ जोड़ उसे भी नमस्ते कर दी। इस समय शूरसेन ने ज्यूँ-त्यूँ कर आसव का एक घूँट पी, मुख के ग्रास को गले के नीचे उतार कहा, "महाराज! खाने में शास्त्री जी भी कम नहीं; परन्तु आज इनको मन्दाग्नि का कष्ट है। इसी से सामने रखे भोजन को देख-देख प्रसन्न हो रहे हैं। सब कुछ सम्मुख रखवा लिया है। न खाते हैं न किसी को खाने देते हैं।"

शास्त्री जी की हेटी हो गई, परन्तु वह पीछे रहने वाले नहीं थे। मांस में से हड्डी उठा और सेनापति की ओर कर बोले, "बाँट तो रहा हूँ। लीजिये आप भी लीजिये।"

इसी प्रकार हँसी-ठट्ठा करते हुए गणपति ने महामात्य से प्रायः सब मुख्य-मुख्य उपस्थित लोगों का परिचय करा दिया। पश्चात् वे दोनों उनके

लिये विशेष बने स्थान पर जा बैठे।

महामात्य ने बहुत कम खाया। गणपति मृदुला के निवास-गृह पर कभी भोजन नहीं करते थे। इस प्रकार जब अन्य लोग खाने-पीने में लीन थे, वे देश की राजनीतिक अवस्था पर विचार कर रहे थे। गणपति का कहना था, "भारत खण्ड में एक सुदृढ़, विशाल चक्रवर्ती राज्य की आवश्यकता है। छोटे-छोटे गणराज्य देश की दुर्बलता में कारण हो रहे हैं।"

"पर आर्य! वह राज्य जिसे जनता का विश्वास प्राप्त हो, स्वयं शक्तिशाली बन जाता है। तो मुख्य कार्य तो जनता का विश्वास प्राप्त करना है।"

"ठीक है वत्स! परन्तु जनता का विश्वास साधन-मात्र है, यह राज्य का ध्येय नहीं हो सकता। विश्वास प्राप्त इस कारण करना है कि जनता से एक महान् उद्देश्य के लिये कार्य लेना है। यदि राज्य की पूर्ण शक्ति समय-समय पर विश्वास प्राप्त करने में ही लगती रहे तो भला उद्देश्य की पूर्ति क्या होगी? गणराज्य पद्धति के दोषों में यह एक है। लोगों को विश्वास-प्राप्ति में ही राज्य की पूर्ण शक्ति व्यय हो जाती है और जब समय आता है कि कुछ निर्माण-कार्य किया जाय तो राज्य निर्बल और निस्तेज हो चुका होता है।

"देखो, अभी पिछला निर्वाचन हुए दो वर्ष ही हुए हैं और आगामी निर्वाचन में अढ़ाई वर्ष रहते हैं। इस पर अभी से उसके लिये दाँव-पेंच चलने आरम्भ हो गये हैं। वास्तव में यहाँ सदैव प्रत्येक कार्य में एक आँख हमारी कार्य की ओर तथा दूसरी आँख आगामी निर्वाचन पर लगी रहती है। प्रायः यह भय लगा रहता है कि अमुक व्यक्ति आगामी निर्वाचन में मेरे विरुद्ध सम्मति न दे दे। ऐसी परिस्थिति में गणराज्यों में सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय और उचित-अनुचित का निर्णय निर्वाचन में मतों के आधार पर होता है, न कि एक अधिकारी की सूझ-बूझ के अनुसार।

"इस के विरुद्ध राजा के राज्य में राजा तो केवल एक प्रबन्धक के रूप में होता है। वह राज्य के धर्म का उल्लंघन नहीं कर सकता। राज्य के मंत्री ही राज्य-कार्य में नीति-निर्माण करते हैं। अन्तर केवल यह रह जाता है कि

राजा के मंत्री राजा ही नियुक्त करता है और गणराज्य में जनता। दोनों में कौन इस कार्य का अधिकारी है, किससे कम भूल होने की सम्भावना है, कौन कब अनुचित कार्य करने को मंत्रियों पर दवाव डाल सकता है और मंत्रियों से भूल हो जाने पर कौन उस भूल को सुधारने में अधिक सबल हो सकता है, ये विषय मनन के साथ सम्बन्ध रखते हैं।

"एक बात मैं अपने अनुभव से बताता हूँ कि यदि लोग धर्महीन हो जावें तो गणराज्य एक राजा के राज्य से अधिक हानिकर और अपने को सुधार करने में कम योग्य होता है।"

इस समय मंच पर से यवनिका उठी और सबका ध्यान उस ओर चला गया। मृदुला देवी ने एक संगीत-नृत्यमय नाटक तैयार किया था, जो खेला जाने लगा। मंगलाचरण हुआ और पश्चात् एक सुन्दरी वैशाली के नाम से प्रकट हुई। वह सुन्दर, कला प्रवीणा, विदुषी और सबल थी। उससे प्रेम करने वाले कई लोग मंच पर आए और वह स्त्री सबका प्रेम ग्रहण करती हुई, सबको अपने प्रेम-जाल में फँसाती हुई, सब से विरक्त और तटस्थ रही। प्रत्येक प्रेमी वैशाली की उपस्थिति में प्रसन्न और अनुपस्थिति में असन्तोष अनुभव करता था। धनी सेठ इस पर धन न्योछावर करते थे। क्षत्रिय इसे अपने शौर्य से प्रसन्न करना चाहते थे और ब्राह्मण इसे अपने कला-ज्ञान और अनुभव से अधिक शृंगारयुक्त और लावण्यमय बनाने का यत्न करते थे। एक-आध शूद्र इसकी सेवा करने में अपना गौरव मानता था।

इस कहानी के आधार पर नृत्य, वार्तालाप और संगीत की रचना की गई थी। वैशाली का अभिनय मृदुला देवी ने किया था, अन्य नायक-नायिकाएँ विनोद-भवन और नगर के अन्य नाटककार लोग थे।

नृत्य इतना लालित्यपूर्ण और संगीत इतना मधुर था कि श्रवण करने वालों को समय के व्यतीत होने का पता नहीं चला। मध्य रात्रि हो चुकी थी और नियम के विरुद्ध तीसरे प्रहर तक यह नाटक चलता रहा।

मृदुला के ग्यारह नृत्य हुए, पाँच लोकगीत हुए। अन्य कलाकारों के

भी नृत्य और गीत हुए। भाँति-भाँति के वाद्य संगीत दे रहे थे।

नाटक का समाप्त सब लोगों के सुन्दरी से रुष्ट हो जाने पर हुआ। सब आशा में थे और सब निराश हुए। अन्त में सुन्दरी एक शूद्र सेवक के साथ मंच से लोप हो गई।

नाटक का रस-स्वादन सब ने किया; परन्तु इसके परिणाम की भयंकरता केवल भानुमित्र के हृदय को चुभी।

सात

०

षड्यन्त्र की भूमि

०

: १ :

प्रचला के विवाह के समाचार से राका को पहले विस्मय हुआ। वह विस्मय प्रचला की रूपरेखा देखकर मिट गया। वह बहुत सुन्दर थी। विस्मय मिट जाने पर उसे दुःख और निराशा हुई। इस निराशा में प्रचला का कहना कि वह सौकन रखने को बुरा न मान एक अच्छी बात समझती है, राका को बहुत बुरा लगा। उसे ऐसा समझ आया कि ऐसी स्त्री से भानुमित्र शीघ्र ही ऊब जावेगा और प्रचला को पृथक् कर देगा। तब तक उसे प्रतीक्षा करनी चाहिए। इतने समय तक वह अविवाहित रहे तो भानुमित्र से विवाह की आशा हो सकती है।

मल्लिका को राका से सहानुभूति थी। इससे वह, जब-जब भी अवसर मिलता था, प्रचला के विषय में पूछती रहती थी और राका की प्रशंसा करती रहती थी। भानुमित्र से सदा प्रचला की प्रशंसा सुन उसे भानुमित्र के कहने पर सन्देह होने लगा। इस कारण प्रचला को बुला, उससे स्वयं बातचीत कर वह वास्तविकता जानने का यत्न करने लगी। उसने एक दिन भानुमित्र से कहा, "आप प्रचला को कभी यहाँ नहीं भेजते।"

"आप जब भी आज्ञा दें वह उपस्थित हो जावेगी। वह स्वयं अभी महारानी जी की सेवा में उपस्थित होने के योग्य नहीं है।"

"क्या है उसे ?"

"उसकी शिक्षा-दीक्षा अभी पूर्ण नहीं हुई।"

"क्या वह उसके जीवन-काल में पूर्ण हो जावेगी, मित्र ?"

"महारानी जी स्वयं अनुमान लगा सकेंगी। वह कल सेवा में उपस्थित हो जावेगी।"

महारानी के सर्वसाधारण से मिलने के लिए नियत समय पर प्रचला आई तो महारानी को वह पहले से अधिक सुन्दर प्रतीत हुई। उस दिन राका भी आई हुई थी। राका दिन-प्रतिदिन संगीत, नृत्य और चित्रकला में उन्नति करती जाती थी। उसने अभी भानुमित्र से विवाह की आशा नहीं छोड़ी थी।

प्रचला हाथ जोड़, झुककर नमस्कार कर एक आसन पर बैठ गई। इस स्त्री-मण्डल में कुछ काल तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। पश्चात् महारानी उठ पड़ी। यह सबको विदा हो जाने की सूचना थी। सब स्त्रियाँ नमस्कार कर जा रही थीं तो प्रचला भी जाने लगी। महारानी ने उसका हाथ पकड़कर ठहरने को कहा। राका जाने लगी तो महारानी ने कहा, "प्रचला बहन से भेंट नहीं करोगी ?"

"क्या जाने, ये पसन्द करेंगी या नहीं ?"

"मैं तो आपको सदैव स्मरण करती रहती हूँ।"

"आपने कभी मिलने की इच्छा की हो, स्मरण नहीं पड़ता।" राका ने कहा।

कुछ झिझकते हुए प्रचला ने यहा, "महामात्य जी कहते थे कि अभी मेरी शिक्षा अधूरी है।"

"ठहरो राका ! अभी महामात्य जी की श्रीमती अल्पाहार करेंगी।" मल्लिका ने कहा।

राका ठहर गई। जब मिलने आई हुई सब स्त्रियाँ चली गईं तो महारानी राका और प्रचला को दूसरे आगार में ले गई। वहाँ एक भूमि पर बिछे कालीन और चादर पर बैठ गईं और इनके सामने सोने-चाँदी की थालियों में फल आहार के लिए रखे जाने लगे। तीनों खाने लगीं।

प्रचला को खाते महारानी जी देखती रहीं। उसके निश्चल बैठने और

बिना बुलाए न बोलने, प्रत्येक अंग को निश्चेष्ट और सुव्यवस्थित ढंग से रखने से उसे प्रतीत हुआ कि प्रचला में अन्तर आ गया है। बात महारानी ने ही आरम्भ की :—

"तो महामात्य जी कहते हैं कि तुम्हारी शिक्षा अभी अधूरी ही है ?"

"हाँ ! महारानी जी, आप तो जानती ही हैं कि विवाह के समय मैं सर्वथा अनपढ़ थी। अब विवाह को छः मास हो गए हैं। मैं व्याकरण पढ़ रही हूँ।"

"साहित्य में क्या पढ़ती हो ?"

"श्री कविवर वाल्मीकि रचित रामायण।"

"कैसी पुस्तक है ?"

"मुझे तो पढ़ने में बहुत अच्छी लगती है।"

"कौन पढ़ाता है तुम्हें ?"

"व्याकरण और साहित्य तो वे स्वयं पढ़ाते हैं। संगीत, नृत्य इत्यादि नगर की प्रसिद्ध नर्तकी कमलिनी सिखाती है।"

"सुनाओ, प्रसन्न रहती हो तुम ?"

"दिन-भर पढ़ने-लिखने में लगी रहती हूँ। सायं उनकी संगत में व्यतीत होती है। कभी-कभी हम भ्रमणार्थ नगर में अथवा सरयू-तट पर भी जाते हैं। फिर नौकर-चाकर हैं। उन पर नियन्त्रण रखना होता है।"

"अभी महामात्य जी ने दूसरा विवाह नहीं किया ?"

प्रचला अर्थ-भरी दृष्टि से राका की ओर देखकर बोली, "मैंने एक दिन उनसे पूछा था तो कहने लगे, 'भारतवर्ष के उच्च परिवारों में स्त्रियाँ पुरुषों को वरती हैं, पुरुष नहीं। वे उस कुमारी के उनको वरने की प्रतीक्षा में हैं।"

"शायद वह कुमारी अब उनको नहीं वरेगी।"

"वे भी कहते थे कि शायद उसे कहीं कोई और श्रेष्ठ वर मिल गया है।"

इससे राका का मुख लाल हो गया। प्रचला ने कहना जारी रखा,

"मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अवध में ही नहीं प्रत्युत् संसार-भर में उनसे बढ़कर और पुरुष मिलना कठिन है।"

राका चुपचाप सुन रही थी। मल्लिका ने ही बातचीत चालू रखी। उसने कहा, "जब वे इतने अच्छे हैं और यह तुम जान गई हो, तब तो तुम उनके दूसरे विवाह को पसन्द नहीं करोगी ?"

"इसमें तो कोई युक्ति नहीं। मेरा अनुभव भी है कि उनके दिन-भर दूसरे काम करने और दूसरे लोगों से सम्पर्क में आने से मुझे कोई हानि नहीं होती। जब दिन-भर के पश्चात् वे मेरे पास आते हैं तो मुझे और भी अधिक प्रिय प्रतीत होते हैं। मैं तो समझती हूँ कि कोई व्यक्ति जितने अधिक लोगों के सम्पर्क में आता है, उतना ही वह अधिक सुसंस्कृत होता जाता है और उसकी संगति उतनी ही अधिक मधुर और आकर्षक होती जाती है।"

"परन्तु प्रबला विवाह का मुख्य कार्य तो·········।"

"हाँ मैं समझती हूँ महारानी जी ! वासना-तृप्ति तो जीवन के बहुत से कामों में एक बहुत ही छोटी और अल्पकाल की बात है। पूर्ण जीवन का एक सहस्रवां भाग भी यह नहीं बनती। जीवन का शेष समय तो अन्य अनेकों समस्याओं के सुझाव, अनेकों सुख-दुःख के अनुभवों और परस्पर संगत से लाभ उठाने में व्यय होता है। इन सब बातों में यदि दो साथियों के स्थान तीन हो जावें तो हानि के स्थान लाभ ही होगा, जीवन अधिक मधुर हो जावेगा।

"परस्पर का भोग इतना अधिक नहीं जितना दोनों का मिल कर संसार का भोग होता है। संसार बहुत लम्बा-चौड़ा है। इसका दो के स्थान पर तीन भोग करें तो, किसी को घाटा नहीं रहेगा।"

मल्लिका यद्यपि इस युक्ति से सन्तुष्ट नहीं हुई थी परन्तु वह देखती थी कि एक से अधिक विवाह करने की प्रथा संसार में प्रचलित है। इसमें एक बात उसे और पता चली थी कि देश में लड़कियों की संख्या लड़कों से अधिक है। ऐसी स्थिति में समाज में दो प्रथाओं का चल जाना स्वाभाविक

है। एक बहु पत्नी रखने की प्रथा है और दूसरे गणिकाओं का बाहुल्य होना। समाज में नियम बनाने वाले दोनों में से किस प्रथा को श्रेष्ठ मानें, एक विकट प्रश्न था। विवाह से बहु पत्नी रखने पर परिवारों में, जिनके पास खाने-पहरने को पर्याप्त नहीं, वैमनस्य उत्पन्न होने की सम्भावना है और अधिक गणिकाओं के रहने की प्रथा से तो समाज में ही दुर्व्यवस्था उत्पन्न होने की सम्भावना है। इन दोनों में कौन सी बात उचित और कम हानिकार है, बतानी बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी सुगम नहीं।

इससे मल्लिका प्रचला को कुछ उत्तर नहीं दे सकी। इस वार्तालाप का राका पर भारी प्रभाव हुआ। वह सोचने लगी कि स्त्रियों में क्यों अपनी सौकनों से द्वेष उत्पन्न हो जाता है। क्या साधारण स्त्रियों में यह द्वेष की भावना सत्य है अथवा प्रचला में यह प्रेम की भावना। यदि तो यह मानें कि प्रेम अथवा द्वेष मन की अवस्था पर निर्भर है तो वह अवस्था तो सर्वत्र सब अवस्थाओं में हो सकती है। द्वेष तो भाई-भाई, भाई-बहन, दो नागरिकों और किन्हीं भी दो व्यक्तियों में हो सकता है! इस पर भी वे सम्बन्ध तो जोड़े ही जाते हैं। फिर एक पति की दो पत्नियों में द्वेष होने में कोई विशेष कारण नहीं होना चाहिए।

एक बात वह देख रही थी कि उसे अयोध्या-भर में भानुमित्र की तुलना में कोई पुरुष दिखाई नहीं देता था। वह सोचती थी कि क्या एक अच्छे पति का आंशिक भोग अच्छा है अथवा एक निकृष्ट पति का पूर्ण भोग।

उस रात वह इन्हीं विचारों में सो नहीं सकी। इसके पश्चात् सोते-जागते, खाते-पीते अथवा स्नान करते, पढ़ते अथवा संगीत का अभ्यास करते, भानुमित्र से विवाह की समस्या उसके सम्मुख उपस्थित रहती।

एक बात बार-बार उसके मन में आती थी कि प्रचला दिन-प्रति-दिन संगीत, कला और ज्ञान-विज्ञान में उन्नति कर रही है। इससे उसकी आशा कि भानुमित्र अपनी गँवार स्त्री से ऊब जाएगा विलुप्त होने लगी।

इसके कुछ दिन पश्चात् भानुमित्र वैशाली में बौद्ध षड्यन्त्र तोड़कर

और वहाँ अनुपम मान-प्रतिष्ठा पा कर लौटा। इससे राका ने मन में निश्चय कर लिया कि भानुमित्र जैसे पति को वह चार अन्य उपपत्नियों के साथ भी उपमा देगी और किसी साधारण व्यक्ति की अकेली पत्नी न बनेगी। यह निर्णय उसका अन्तिम हो गया।

इस पर एक घटना और घटी। एक सायंकाल वह अपने आगार में संगीत का अभ्यास कर रही थी कि पं० मैलन्द् वहाँ आ उपस्थित हुआ। राका पिताजी को देख चुप रह गई और उसने तान-पूरा सम्मुख भूमि पर रख दिया। पंडित जी ने कहा, "गाओ, गाओ बेटी!"

परन्तु राका ने तान-पूरा नहीं उठाया और कहा, "आप कुछ चिन्तित प्रतीत होते हैं।"

"हाँ! इसी कारण तुमसे बात करने आया हूँ। आज महाराज का एक विश्वस्त सेवक यह समाचार लाया है कि महारानी के बच्चा न होने से वे चिन्तित हैं। उनकी इच्छा है कि एक और विवाह कर लें।"

राका इस बात को सुन अवाक् मुख रह गई। पण्डित मैलन्द् अपने मन की बात कहता गया, "महारानी मल्लिका इसमें आपत्ति नहीं उठा रहीं। महाराज ने अपने मन्त्री-मण्डल से भी राय की है और मन्त्री-मण्डल ने इसका विरोध नहीं किया, प्रत्युत् महामात्य ने महाराज की बात का समर्थन किया है।"

फिर कुछ विचार कर और गम्भीरता से राका के मुख पर देखते हुए पण्डित मैलन्द् ने कहना जारी रखा, "महाराज के सेवक का यह कहना है कि महाराज को बहुत प्रसन्नता होगी यदि तुम उनको वरो।"

इतना कह मैलन्द् पण्डित अपनी लड़की के विवर्ण हुए मुख को देखता रहा। राका कितनी ही देर तक चुपचाप बैठी इस परिस्थिति पर विचार करती रही। मैलन्द् पंडित उत्तर की प्रतीक्षा में बैठा रहा।

अन्त में राका ने डबडबाई आँखों से पिता की ओर देखते हुए कहा, "पिता जी! मैंने अपने वर का निश्चय कर लिया है। मैं महामात्य की पत्नी बनना स्वीकार कर चुकी हूँ।"

"तुम किसी से वचन दे चुकी हो क्या ?"

"नहीं ! अपने मन में निर्णय कर चुकी हूँ ।"

"कब से ?"

"आपके आने से एक घंटा पूर्व ।"

"तो अभी उस निर्णय पर पुनरावलोकन कर सकती हो या नहीं ?"

"नहीं पिता जी ! अब हो गया है ।"

"तो फिर रो क्यों रही हो ?"

"अपने समय पर निर्णय कर लेने की प्रसन्नता में ।"

"ओह ! तुम भानुमित्र को महाराज पर उपमा देती हो ?"

"हाँ पिता जी !"

"परन्तु जानती हो एक समय महारानी मल्लिका ने महाराज को भानुमित्र पर उपमा दी थी ?"

"जानती हूँ । साथ ही यह भी समझती हूँ कि अब उन्हें अपने अन्तरात्मा में अपने किये पर पश्चाताप लग रहा होगा ।"

"यह अनुमान ही तो है ।"

"हाँ, परन्तु अकाट्य युक्ति पर आधारित अनुमान प्रमाण माना जाता है ।"

मैलन्द चुप कर रहा ।

: २ :

अगले दिन राका महारानी मल्लिका को मिलने गई । पृथक् में उनसे भेंट कर बोली, "महारानी जी ! मैंने निर्णय कर लिया है कि महामात्य जी की द्वितीय पत्नी बन उनको वरूँ ।"

"सत्य ?" मल्लिका विस्मय में और कुछ नहीं कह सकी । कुछ काल चुप रह अपने चित्त को स्थिर कर उसने पूछा, "राका बहन ! तुम्हें महाराज का संदेश मिला है क्या ?"

"हाँ महारानी जी ! परन्तु मेरा निर्णय यही है ।"

"तो तुम महाराज से महामात्य को अधिक अच्छा समझती हो ?"

"अच्छे और बुरे का प्रश्न नहीं है। मैं आरम्भ से ही उन्हें प्रेम करती हूँ। बीच में उनके विवाह कर लेने से मेरे मन में संशय उत्पन्न हो गया था, परन्तु धीरे-धीरे संशय दूर हो गया है। महीनों के गम्भीर विचार से मैं प्रचला के विचार की ही हो गई हूँ।"

जब मल्लिका ने राका का निर्णय महाराज को बताया तो वे विस्मय में डूब गए। उनके मन में ईर्ष्या होने लगी। मल्लिका ने कहा, "यह सब कर्मों की गति है, महाराज ! एक समय था कि आपने भानुमित्र को पछाड़ा था, आज उसने आपको पछाड़ अपना बदला ले लिया है।"

मुरहारी विक्रम मन-ही-मन भानुमित्र को अपने से अधिक प्रेम का पात्र बन गया देख क्रुद्ध हुआ था, परन्तु भानुमित्र की लोकप्रियता देख वह चुप था। भानुमित्र अयोध्या के लिए एक अत्यावश्यक व्यक्ति बन गया था।

मल्लिका ने कहा, "महाराज ! आपके लिए कोई अन्य पत्नी, आप के पुत्र की माता, ढूँढनी होगी।"

एक दिन मैलन्द पंडित राका को लेकर महामात्य के भवन में आये और राका ने भानुमित्र के गले में जयमाला डाल दी। इस घटना का समाचार डरते-डरते दासियों ने प्रचला को दिया तो उसने पूछा, "मैलन्द जी की लड़की ? कहाँ है इस समय ?"

"रानी जी ! नीचे बैठकघर में है। पंडित जी उनके विवाह के लिए तिथि का निश्चय कर रहे हैं।"

दासियों का अनुमान था कि घर में कलह प्रारम्भ होगी। परन्तु उनके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब प्रचला समाचार सुनते ही बैठक घर में जा पहुँची और राका के समीप बैठ उसके गले में बाँह डाल कर बोली, "भगवान् का सौ-सौ बार धन्यवाद है कि तुम मेरे आशय को समझ सकी हो।"

विवाह के अवसर पर भानुमित्र ने अपने वृद्ध माता-पिता को बुला भेजा। अयोध्या से सेवक भेजे गये, जो उन्हें रथ में बैठा कर काश्मीर से ले

आये ।

विवाह के पूर्व एक बृहत् यज्ञ किया गया, जिसमें सैकड़ों ब्राह्मण एक पखवाड़े तक वेदपाठ करते रहे । सहस्रों लोगों को अन्न-अनाज बाँटा गया और वस्त्र दिये गए ।

पं० मैलन्द ने अपनी पूर्ण सम्पत्ति इस अवसर पर दे डाली । एक छोटा-सा अंश राका को दे दिया और शेष एक वेद विद्यालय की स्थापना के लिए दान कर दिया । पंडित जी का अपना विशाल भवन था । वहाँ इस विद्यालय का कार्य आरम्भ हो गया । पंडित जी ने स्वयं वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर हरिद्वार के लिए प्रस्थान कर दिया ।

विवाह के अवसर पर गणपति देवधर्मा, अपनी स्त्री और लड़कियों के साथ अयोध्या में आया । नगर-वधू मृदुला ने एक बहुत बढ़िया पहिरावा और भूषण भानुमित्र की स्त्री के लिए भेजे । मल्ल राज्य का गणपति, मगध देश का राजदूत और अंग-बंग से सद्भावना मण्डल आये । पाञ्चाल, हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, किन्नर राज्य, असुर राज्य और कोंकण देश से शुभ संवाद आए ।

अयोध्या में पाँच दिन तक भारी समारोह रहा । मल्लिका, इस अवसर पर, अयोध्या तथा पूर्ण अवध में हर्षोत्सव होते देख, चकित थी । वह समझ गई थी कि राज्य-पदवी से भी अधिक योग्यता की पदवी है । उसे कभी-कभी भानुमित्र का त्याग खटकने लगा । वह समझती थी कि उसने वह जीवन की एक भारी भूल की थी ।

प्रचला के गर्भ स्थित हो चुका था और वह पाँचवें मास में जा रही थी । प्रचला से एक वर्ष से भी अधिक पूर्व मल्लिका का विवाह हुआ था । विवाह के समय वह प्रचला से अधिक आयु की थी । इस पर भी उसके बच्चा होने के कोई लक्षण प्रतीत नहीं होते थे ।

भानुमित्र के माता-पिता आये तो उन्हें अपने पुत्र को एक विशाल राज्य का महामात्य और दो स्त्रियों का स्वामी देख अति प्रसन्नता हुई । उसकी माँ अपनी पतोहुओं को प्यार कर अति हर्षित अनुभव करती थी ।

: ३ :

गणपति की हत्या का षड्यंत्र विफल होने पर महाप्रभु की महिमा बौद्ध क्षेत्र में भी बहुत कम हो गई। सारनाथ में बौद्ध मंडली का अधिवेशन हुआ और भारत खण्ड के भिन्न-भिन्न भागों से आये हुए बौद्ध भिक्षुकों और विहारों के प्रबन्धकों ने महाप्रभु के कार्य की तीव्र आलोचना की।

इस अधिवेषन में उपस्थित लोगों ने भारी संख्या में महाप्रभु के सांसारिक बातों में और फिर राजनीति की बातों में हस्तक्षेप को अनुचित समझा। भगवान् शाक्य मुनि गौतम ने विरक्ति के मार्ग का दिग्दर्शन किया था, इस से महाप्रभु के कार्य को बौद्ध मत के विपरीत माना गया।

प्रायः ऐसा होता है कि एक रोग अनेक अन्य रोग उत्पन्न कर स्वयं नष्ट हो जाता है। उसका अस्तित्व नहीं रहता, परन्तु उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न रोग अपने दुष्परिणाम प्रकट करते रहते हैं।

यही बात भगवान् बुद्ध से चलाये निवृत्ति मार्ग से उत्पन्न हुई। प्रारम्भ में तो भगवान् ने संसार का त्याग, संसार के दुःखों का अन्त करने को चलाया। उन्होंने स्वयं संसार का त्याग किया और जो कोई भी उनके सम्पर्क में आया उससे संसार छुड़ा दिया। राजा-महाराजाओं को अथवा भिखारियों को, खेतों में हल चलाने वाले किसानों को अथवा दुकानों पर बैठे व्यापार करते सेठियों को, बालक-बालिकाओं को, अथवा वृद्ध स्त्री-पुरुषों को, विवाहित अथवा अविवाहित युवक-युवतियों को सबको संन्यास का मार्ग लेने की प्रेरणा दी। शाक्य मुनि गौतम के व्यक्तित्व और तपस्या के प्रभाव से नगरों के नगर उजड़ कर विहार बन गये।

इसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। गौतम बुद्ध का व्यक्तित्व नहीं रहा था। परिणाम यह हुआ कि युवक-युवतियाँ भिक्षु बनने के उपरान्त, सब प्रकार के प्रतिबन्धों के होने पर भी, वासनाओं से अधिक काल तक मुक्त नहीं रह सकीं। बौद्ध धर्म में सहनशीलता की विशेष महता होने के कारण, वासनाओं में लिप्त हो जाने वाले भिक्षुओं को यह समझ कर सहन कर लिया जाता था कि बेचारे पथ के भटके हुए निर्वाण-पथ के राही दया के पात्र हैं

न कि दंड के।

बौद्ध धर्म की एक और प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। ब्राह्मण धर्म का खण्डन करते-करते ब्राह्मणों का खण्डन आरम्भ हो गया। क्षत्रिय राजा-महाराजा ब्राह्मण धर्म के पक्षपाती होने से, वे भी निन्दनीय हो गये। मनुष्य-मात्र की समानता का अर्थ यह निकला कि संस्कृत, साहित्य, कला, ज्ञान, विज्ञान से हीन शूद्र और वैश्य अपने को ब्राह्मण तथा क्षत्रिय पद के अधिकारी मानने लगे। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म ब्राह्मण और क्षत्रियों का विरोधी पक्ष बन गया। इस प्रकार एक शृंखला में बँधी समाज टूक-टूक हो गई।

साक्य मुनि गौतम तो संसार में दुःखों की शान्ति के लिए मनुष्य-मात्र की समानता और संसार से निवृत्ति का प्रचार करता रहा और इन दोनों बातों की प्रतिक्रिया यह हुई कि शूद्र और वैश्य अपने को ब्राह्मण-क्षत्रियों से ऊँचे मानने लगे और वासना में लिप्त होना विवशता मानी जाने से, क्षम्य हो गई।

जब सांसारिक लोगों ने देखा कि संन्यासी लोग भी वासना में फँसे हैं, तो उन्होंने भोग-विलास को अपना अधिकार माना। साथ ही क्षत्रिय और ब्राह्मणों के राज्य का विरोध वैश्यों और शूद्रों में बढ़ गया।

वैशाली का उपगणपति लक्ष्मीकान्त भी महाप्रभु से चलाए षड्यंत्र में सम्मिलित था, परन्तु वह उसके विफल होने पर पकड़ा नहीं गया। वह बाल-बाल बच गया। इस पर भी उसे अपने इस षड्यंत्र में सम्मिलित होने पर पश्चाताप नहीं हुआ। प्रत्युत् भानुमित्र की प्रशंसा और प्रतिष्ठा होते देख मन में अति क्षुब्ध हुआ।

उसके मन से मैल नहीं गया। वह स्वयं वैशाली का गणपति बनना चाहता था। यदि महाप्रभु से चलाया षड्यंत्र सफल हो जाता तो वह गण-पति बन जाता। परन्तु ऐसा न हो सका। इस पर व्यापारिक बुद्धि रखने के कारण उसने असफल हुए षड्यंत्र की त्रुटियों को जांचकर पुनः गणपति बनने के प्रयत्न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

उसने दो बातों को स्पष्ट समझ लिया—एक भानुमित्र का वैशाली के पड़ौसी राज्य में महामात्य होना, दूसरा गणपति देवधर्मा की जन-साधारण

में ख्याति। दोनों पर कुठाराघात करने का निश्चय कर वह वैशाली का राज्य पलटने का यत्न करने लगा।

अयोध्या के लिए उसकी योजना थी कि वहाँ उपद्रव खड़ा कर भानुमित्र को इतना बदनाम किया जाए कि महाराज उसको निकाल दें। इसके पश्चात् वैशाली में षड्यंत्र किया जा सकता है।

वैशाली की संसद् के चुनाव में अभी दो वर्ष शेष थे। उस समय के लिए तैयारी का निश्चय कर लक्ष्मीकान्त ने कार्य आरम्भ कर दिया। वह चाहता था कि निर्वाचन के पूर्व अयोध्या के महामात्य को अपमानित कर निकाल दिया जावे। इस अर्थ उसने वैशाली से कुछ स्वार्थी सेठियों को एकत्रित कर अपना आशय सम्मुख रख दिया। उसने कहा—

"वैशाली के महाजनों! क्षत्रिय और ब्राह्मणों के राज्य का अन्त कर हमें वैश्यों और शूद्रों का राज्य स्थापित करना है।"

एक ने पूछा, "इससे क्या लाभ होगा?"

"इससे देश का धन, जो हम पैदा करते हैं, व्यर्थ में मूछों पर ताव दे-देकर सुरापान में व्यय नहीं होगा।"

"पर हम लोग भी तो सुरापान करते हैं?"

"हम धनोपार्जन भी तो करते हैं। हमें व्यय करने का अधिकार है।"

"किन्तु दादा!" उस व्यक्ति का कहना था, "वे लोग राज्य की रक्षा के लिए अपना रक्त पानी की भाँति बहा देते हैं।"

"वह हमारे युवक भी कर देंगे।"

बात सरल प्रतीत हुई और षड्यंत्र की नींव रख दी गई। लक्ष्मीकान्त का कहना था, "वैशाली में तो निर्वाचन में अपने प्रतिनिधि अधिक भेजने चाहियें। वह उस समय ब्राह्मणों और क्षत्रियों को धन देकर उनका मत मोल लेने से हो सकेगा। एक बार यदि हम संसद् में बहुमत में आ गये तो फिर हम विधान में परिवर्तन कर सेना में अक्षत्रियों को भर्ती कर अपना राज्य स्थिर कर लेंगे। परन्तु यह तब तक नहीं हो सकेगा, जब तक भानुमित्र अयोध्या का महामात्य है। वह बहुत ही चतुर नीतिज्ञ है और देवधर्मा के

मित्र का पुत्र होने से हमारी दाल नहीं गलने देगा। इससे वैशाली की संसद् के आगामी निर्वाचन से पूर्व हमें उसे अयोध्या से निकलवाना है।"

लक्ष्मीकान्त की युक्ति पर सब उपस्थितगण वाह-वाह करने लगे। धन एकत्रित किया गया। लक्ष्मीकान्त ने एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रा इस कार्य के लिए स्वयं दीं। अन्य लोगों ने भी भारी-भारी धन-राशियें गिनवा दीं। पश्चात् धन एकत्रित करने का कार्य गुप्त रूप से वैशाली और अयोध्या के अन्य सेठियों के हाथ में जा पहुँचा।

एक मास के भीतर दस लक्ष स्वर्ण-मुद्रा एकत्रित हो गईं। लक्ष्मीकान्त इस योजना का नेता चुना गया और कार्य आरम्भ हो गया।

: ४ :

अवध के महाराज मुरहारी विक्रम भानुमित्र के राका से विवाह के पश्चात् भानुमित्र से खिंचे रहने लगे थे। चमुचूड़ महाराज को मन्त्रणा देने वाला था। महाराज एकान्त में चमुचूड़ से कहते, "महामात्य के रहते हमें कोई सुन्दर कन्या वरेगी क्या?"

"बात कुछ ऐसी ही प्रतीत होती है, महाराज! सुना है वैशाली की नगर-वधू मृदुला भी हमारे महामात्य से प्रेम करती है। संसार की सब सुन्दर लड़कियाँ महामात्य के चरणों में अपने को न्योछावर करने के लिए उद्यत हैं। मगध-राज की छोटी लड़की सुकन्या के प्रेम-पत्र महामात्य के पास आते-जाते हैं।"

"मैं नहीं जानता कि अब क्या करूँ? भानुमित्र का प्रजा पर इतना प्रभाव है कि यदि उसे निकाल दूँ तो यहाँ विप्लव हो जावेगा।"

"इस प्रकार नहीं, महाराज! हमें महामात्य को पहले बदनाम करना चाहिए। उसे चोर और देशद्रोही सिद्ध करना चाहिए। तब ही हम उसको निकाल सकेंगे।"

इस पर भी महाराज और उनके मन्त्री चमुचूड़ कोई ऐसा उपाय और अवसर नहीं ढूँढ सके, जिससे भानुमित्र को निन्दनीय ठहरा सकें। मन्त्री-

मण्डल में भानुमित्र दिन-प्रतिदिन अधिक-और-अधिक लोकहित के कार्यों के निश्चय कराता जाता था। एक दिन देश के पचास स्थानों पर रुग्णालय खुलवा दिये और उनमें तक्षशिला से योग्य वैद्यों को लाकर नियुक्त करवा दिया। फिर एक दिन मैलन्द पंडित के भवन में स्थापित वेद विद्यालय को एक विश्वविद्यालय का रूप देने के लिए काशी से विद्वान् ब्राह्मणों की नियुक्ति कर दी। अयोध्या में पशु-चिकित्सालय खुलवा दिये। देश-भर की सड़कें खुली और सुदृढ़ करवा दीं। व्यापार पर कर कम कर दिया। आय पर कर तो था, परन्तु अन्य पड़ोस के देशों से बहुत कम।

महाराज जब इन योजनाओं का विरोध करते तो भानुमित्र पूछता, "महाराज! क्या ये ठीक काम नहीं हैं?"

"ठीक तो हैं महामात्य! परन्तु इनके लिए धन कहाँ है?"

"धन तो अर्थ-मन्त्री बताएँगे।"

अर्थ-मन्त्री कहता, "धन तो इतना है कि हम एक-दो राज्य खरीद सकते हैं।"

महाराज शान्त हो जाते। इस प्रकार कार्य चल रहा था कि एक दिन हस्तिनापुर का एक सेठी-परिवार तीर्थयात्रा करता हुआ अयोध्या पधारा। वह राज्य के पंथागार में ठहरा था। उस परिवार में एक सेठ सुमेर, करोड़पति, उसकी स्त्री, एक युवा कन्या और दो छोटे-छोटे बालक थे। सुमेर एक दिन राज्य-सभा में अपनी युवा लड़की और धर्मपत्नी सहित उपस्थित हुआ। महाराज की आँख में लड़की चढ़ गई। उन्होंने मल्लिका से इस विषय में बातचीत की। मल्लिका को आपत्ति नहीं थी। अतएव कुछ वार्तालाप के पश्चात् विवाह की बात निश्चय हो गई। होने वाली महारानी का नाम पद्मावती था।

सेठ सुमेर ने अयोध्या में एक बहुत बड़ा भवन ले लिया और उसमें विवाह का प्रबन्ध करने लगा। महाराज के विवाह पर व्यय करने के लिए मन्त्री-मण्डल ने पाँच लाख स्वर्ण-मुद्रा स्वीकार कीं और विवाह बहुत धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। स्वाभाविक रूप में भानुमित्र ने अपने विवाह से

अधिक सजधज और दान-दक्षिणा का प्रबन्ध कर दिया। एक बार तो मुरहारी विक्रम को यह विश्वास हो गया कि उसकी प्रजा उससे प्रेम करती है।

विवाह के कुछ दिन पश्चात् एक समाचार भानुमित्र को पटरानी मल्लिका की दासियों ने दिया कि नई महारानी ने मल्लिका को डाँटा है। पटरानी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। चुपचाप अपने आगार में चली गई।

इसके कुछ दिन उपरान्त महाराज के साथ मन्त्री-मण्डल में मल्लिका के स्थान पद्मावती आई। उसी दिन मन्त्री-मण्डल में यह निश्चय हुआ कि महारानी पद्मावती के पिता को राजा की पदवी दी जावे और नाम-मात्र की एक जागीर उसके छोटे भाई को दी जावे।

इसके पश्चात् एक दिन मल्लिका और महाराज में मनमुटाव हो गया। इसमें कारण विदित नहीं हुआ।

इन सब बातों से भानुमित्र आँखें मूँदे हुए नहीं था। उसने प्रचला को समझा-बुझाकर मल्लिका से मिलने भेजा। प्रचला मल्लिका से मिल पूर्ण परिस्थिति का पता कर लाई। उसने भानुमित्र को बताया, "नई महारानी मल्लिका से महाराज की भेंट नहीं होने देती। मल्लिका के लिए महल में ऐसे आगार नियत कर दिये हैं, जहाँ आते और जाते हुए नवीन महारानी के सेवकों से देखा जाना अनिवार्य होता है। पटरानी जी के पास केवल दो सेविकाएँ हैं और मेरा विचार है कि उनमें भी एक पटरानी पर गुप्तचर का काम करती है।"

"महारानी मल्लिका ने कुछ विशेष बात कही है?" भानुमित्र ने पूछा।

"वे मेरे और राका के परस्पर सम्बन्ध के विषय में पूछती थीं।"

"और तुमने क्या बताया है, प्रचला?"

"मैंने बताया कि हम इकट्ठे भोजन करती हैं। इकट्ठे पूजा-पाठ और स्वाध्याय करती हैं। इकट्ठे संगीत का अभ्यास करती हैं। इकट्ठी सोती और जागती हैं। आपके मन में कभी यह विचार नहीं आया कि मैं या राका बहन, छोटी-बड़ी हैं अथवा अच्छी-बुरी हैं।"

"तो इसका क्या प्रभाव हुआ मल्लिका देवी पर?"

"वे अभी तो इतनी दुःखी हैं कि दूसरों के विषय में सोच-समझ भी नहीं सकतीं।"

: ५ :

उक्त समाचार पाने के पश्चात् भानुमित्र कई दिन तक गम्भीर विचार में पड़ा रहा। इन दिनों वह इस परिवर्तन में कारण देख रहा था। अभी वह किसी निर्णयात्मक परिणाम पर नहीं पहुँच सका था कि एक दिन महाराज ने मन्त्री-मण्डल के सम्मुख एक प्रस्ताव उपस्थित कर दिया। प्रस्ताव था कि सरयू के तट पर, अयोध्या से दो कोस उत्तर की ओर जंगल में बौद्ध-विहार के स्थापन की स्वीकृति दी जाए। इस प्रस्ताव के उपस्थित किये जाने के समय महारानी पद्मावती मन्त्री-मण्डल की बैठक में उपस्थित थीं।

इस प्रस्ताव का विरोध भानुमित्र ने किया। उसका कहना था कि स्वर्गीय महाराज ने यह स्वीकृति इस कारण प्रदान नहीं की थी कि अल्प-आयु के बालक और बालिकाएँ भिक्षु बना लिए जाते हैं। इससे देश के लोगों का चरित्र गिरता जाता है।

महाराज का कहना था, "पूर्ण भारत खण्ड में विहार खुल रहे हैं। हम काल की गति से पृथक् रहकर सुरक्षित नहीं रह सकते।"

"परन्तु महाराज! सुरक्षा का प्रश्न नहीं है। यह मानवता की माँग है कि हम कोमल विचारों वाले कुमारों और कुमारियों की दूषित विचार-धारा से रक्षा करें।"

इस पर महारानी बोल उठीं, "तो क्या महामात्य बौद्ध विचारधारा को दूषित समझते हैं?"

"कम-से-कम बालक-बालिकाओं को अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध और स्त्रियों को अपने पति की इच्छा के विरुद्ध संसार छोड़ भिक्षु बनने को श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता।"

"क्या एक स्त्री को अपने विचारानुकूल अपने भविष्य को सुधारने की स्वीकृति नहीं दी जा सकती?"

"देखिये देवी जी! जातीय हित यह है कि स्त्री रूपी धन सुरक्षित और स्वस्थ रहे। जातीय हित में ही व्यक्तिगत हित सुरक्षित रहता है। युवा स्त्रियों के अधिक संख्या में भिक्षुणी बन जाने से जाति का अहित है। हम इसकी स्वीकृति नहीं दे सकते।"

"यह तो अन्याय हो गया, महामात्य?"

"नहीं देवी जी! एक कोमल पौधे के चारों ओर लोहे की बाड़ लगाना उस पर अन्याय करना नहीं प्रत्युत् न्यायोचित है।"

"स्त्रियाँ कोमल पेड़ नहीं हैं, महामात्य!"

"धर्म-शास्त्र लिखने वाले इन्हें कोकल ही नहीं प्रत्युत् मूल्यवान् भी मानते हैं। इसका सबसे अधिक मूल्य भावी समाज की माँ होना है। हम न तो इन्हें बाँझ होने देंगे, न ही कठोर, हृदयहीन, स्वार्थरत, इत्यादि।"

महारानी पद्मावती निरुत्तर हो गईं। परन्तु महाराज ने कहा, "देखिये मंत्री वर्ग! हमारी प्रजा में बौद्ध भी हैं और हम न्याय इसी में समझते हैं कि उन लोगों के धर्म गुरुओं के रहने को विहार स्थापित होने की स्वीकृति दे दी जाए।"

"यह ठीक है," भानुमित्र ने फिर कहा, "परन्तु आर्य प्रजा से न्याय की माँग यह है कि अल्प आयु के बालक-बालिकाओं और स्त्री-वर्ग को उनके संरक्षकों की स्वीकृति के बिना भिक्षु बनना दंडनीय हो।"

महाराज ने बात को टालते हुए कहा, "ऐसा नियम बनाना एक पृथक बात है। इस समय तो हम केवल विहार स्थापित हो सकने की स्वीकृति दे रहे हैं।"

इसके पश्चात् कुछ और कहने को स्थान नहीं था। भानुमित्र को आद्योपान्त सब कुछ संशयात्मक प्रतीत होने लगा। उसने मंत्री-मंडल से बाहर आते ही अपने भवन में प्रस्थान किया। अपने गृह में पहुँच उसने अपने को एक आगार में बंद कर लिया और आज्ञा कर दी कि उस दिन वह किसी से नहीं मिल रहा।

उसी आगार में उसने भोजन किया और सोया। अगले दिन वह

अपने बालों को संवारता हुआ दर्पण में मुख देख रहा था कि प्रचला और राका उसके पीछे आ खड़ी हुईं। दोनों का प्रतिबिम्ब दर्पण में देख भानुमित्र हँस पड़ा और घूम कर उनसे पूछने लगा, "बहुत लम्बे मुख हो गये हैं मेरी दोनों धर्मपत्नियों के ?"

"आपकी कल रात की आज्ञा मिली, तो हम विचार करने लगीं कि क्या कारण था उसका। जब कुछ समझ नहीं आया तो रात-भर अनुमान लगाती रही हैं। इससे सो नहीं सकीं। प्रातःकाल जब श्रीमान् जी का द्वार खुला तो दर्शन के लिये उपस्थित हुई हैं।"

"ओह ! तो न सो सकने से मुख उतर गये हैं ?"

"और चिन्ता से भी।" राका का उत्तर था।

"चिन्ता कैसी थी ?" भानुमित्र ने बालों में कंघा फेरते हुए पूछा।

"यही कि आपका शरीर रुग्ण है अथवा मन।"

भानुमित्र हँस पड़ा और पूछने लगा, "तो क्या रुग्ण प्रतीत हुआ है ?"

"शरीर तो स्वस्थ प्रतीत होता है।" राका ने मुख पर हाथ की पीठ रख देखते हुए कहा।

"तो अवश्य मन रुग्ण है। बालों का इतने उत्साह से संवारना भी तो यही प्रकट करता है।" प्रचला का कहना था।

"हाँ देवियो ! पर अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ। कल एक गणित के प्रश्न का उत्तर प्रतीत नहीं कर सका था। रात-भर उसको समझने का यत्न करता रहा हूँ।"

"तो उत्तर पा गये हैं, आर्य ?"

"हाँ देवी !"

भानुमित्र ने पूर्ण योजना बनाकर ही आगार का द्वार खोला था। उसने स्नानादि के उपरान्त निश्चिन्त हो योजना पर काम आरम्भ कर दिया। कुछ ही दिनों में उसके गुप्तचरों ने सूचना दी कि महारानी पद्मा-वती के भाई को जो छोटी-सी जागीर मिली है, वह सैनिक अड्डा बन रहा

है, जहाँ नगर के और आसपास के गाँवों के छोटे वर्ण के लोगों को अस्त्र-शस्त्र-शिक्षा दी जाने लगी है।

फिर उस भवन में, जो महारानी पद्मावती के पिता ने उसके विवाह के लिए लिया था, अनेकों प्रकार के लोग वैशाली से आते-जाते हैं और उन लोगों में और महारानी में अटूट सम्पर्क बना हुआ है।

सब से अधिक विस्मयजनक बात यह विदित हुई कि पद्मावती के पिता सेठ सुमेर के नाम का कोई भी व्यक्ति हस्तिनापुर में नहीं रहता था।

भानुमित्र प्रतिदिन प्रातःकाल कुछ प्रश्न बनाता था। वे प्रश्न गुप्तचरों को उत्तर प्रतीत करने के लिए दे दिए जाते थे। जब उत्तर आता था तो वह एक पुस्तक में लिख लिया जाता था।

एक दिन उसने गुप्तचरों को कहा कि महारानी पद्मावती के पिता को ढूँढा जाए। वह वैशाली में होगा। जिन लोगों ने सेठ सुमेर को देखा था, वे भारी संख्या में वैशाली भेजे गये और एक सप्ताह के भीतर सूचना मिली कि सेठ लक्ष्मीकान्त के भवन में वह व्यक्ति प्रायः आता-जाता देखा गया है।

यह बात भी उसी पुस्तक में लिख ली गई। परन्तु अगली आज्ञा यह हुई कि उसका वास्तविक नाम-धाम प्रतीत किया जाए। यह बात कुछ अधिक कठिन थी। इसके लिए अयोध्या का एक सेठ चन्द्रमोहन तैयार किया गया। वह वैशाली गया और उसने सेठ लक्ष्मीकान्त से मित्रता उत्पन्न की। पश्चात् अपनी लड़की का विवाह लक्ष्मीकान्त के लड़के से करने की बात चला दी। लड़की देखने की बातचीत होने लगी तो अयोध्या के सेठ ने कहा कि दो सप्ताह तक वह अयोध्या जावेगा, तो लड़की को लेकर वैशाली आवेगा। इस प्रकार उसकी लक्ष्मीकान्त से घनिष्टता बढ़ने लगी।

चन्द्रमोहन के साथ सदा चार चोबदार रहते थे। वे गुप्तचर विभाग के लोग थे, जिन्होंने सेठ सुमेर को लक्ष्मीकान्त के भवन में देखा था।

सेठ सुमेर वैशाली से बाहर गया हुआ था। इस कारण कई दिन तक तो सफलता नहीं मिली। पहले ही दिन, जब सुमेर लौटा, तो चन्द्रमोहन

के चोबदारों ने निश्चित संकेत कर दिया। चन्द्रमोहन ने सुमेर के विषय में लक्ष्मीकान्त से पूछा, "आपका परिचय क्या है?"

"ये हमारे मित्र हैं। बहुत जीवट के आदमी हैं।"

चन्द्रमोहन ने इतने ही उत्तर से सन्तोष प्रकट कर हाथ जोड़कर नमस्कार कर दी। पश्चात् दोनों में बातें होने लगीं। सेठ चन्द्रमोहन ने कहा, "आप तो कोई बहुत भले पुरुष प्रतीत होते हैं। मैं तो एक साधारण-सा व्यक्ति हूँ। परन्तु सेठ लक्ष्मीकान्त जी ने अपार कृपा कर मेरी लड़की का विवाह अपने लड़के से स्वीकार कर लिया है। मैंने लड़के को बहुत धन देना भी स्वीकार किया है। तभी तो, आप जैसे सज्जनों से भेंट हो रही है। हम वैश्यों में धन का उपार्जन ही तो मुख्य बात है। हमारा संसार इसी के भरोसे चलता है। मैं लड़की के विवाह पर पाँच लक्ष स्वर्ण-मुद्रा देने का विचार रखता हूँ।"

पाँच लक्ष स्वर्ण-मुद्रा का उल्लेख ही बात थी, जिसके लिए चन्द्रमोहन ने इतनी भूमिका बाँधी थी। सुमेर की इससे आँखें खुल गईं। साथ ही उसने समझा कि यह कोई मूर्ख आदमी है। उसे ठगने के लिए उसने पूछा, "आपका शुभ नाम क्या है?"

"चन्द्रमोहन! श्रीमान्, हमारे गंगा में जहाज चलते हैं। एक करोड़ से कम सम्पत्ति नहीं है।"

"यहाँ आपका आना कैसे हुआ?"

"मगध-देश के महाराज सिंहवर्मा ने गान्धार की एक दासी को मोल लिया है और उसके रूप पर इतने मुग्ध हुए हैं कि उसको असली एक सहस्र मुक्ता की माला देने का वचन दिया है। महाराज की आज्ञा है कि एक ही रूप, रंग और तोल के एक सहस्र मोती एकत्रित किये जाएँ और वह मैं कर रहा हूँ। लगभग आठ सौ मुक्ता एकत्रित कर चुका हूँ। इसके लिए मुझे भारत खण्ड के बीसियों बड़े-बड़े नगरों में जाना पड़ा है। वैशाली में भी इस कारण टिका हूँ।"

"उस मुक्ताहार का क्या दाम होगा?"

"मैं अभी तक पाँच लाख स्वर्ण-मुद्रा व्यय कर चुका हूँ। मेरा विचार है कि नौ लाख स्वर्ण-मुद्रायें उस हार का मूल्य होनी चाहिएं।"

सुमेर ने तुरन्त अपनी मन की बात कह डाली, "पर सेठ साहब! आप यहाँ आये तो विनोद-भवन भी देखा है या नहीं ?"

"नहीं, मेरा वहाँ परिचित कोई नहीं।"

"मैं जो हूँ। चलिये आपको ले चलता हूँ।"

: ६ :

सेठ चन्द्रमोहन और उसको भेजने वाला भानुमित्र समझता था कि वैशाली में विनोद-भवन एक ऐसी संस्था है, जिससे गुप्त कार्य करने वालों को सचेत रहना चाहिये। भानुमित्र ने समय कुसमय के लिये मृदुला के नाम एक पत्र चन्द्रमोहन को दे रखा था। वह पत्र उसकी जेब में था।

दोनों विनोद भवन के सेट्ठियों के आगार में जा पहुँचे। वहाँ सुमेर ने मद्य मंगवाई और द्यूत-क्रीड़ा का सामान मँगवा भेजा। चन्द्रमोहन ने कहा भी कि वह जूआ नहीं खेलता। इस पर भी सुमेर आग्रह करता गया।

विनोद भवन की एक दासी वहाँ आ बैठी और जब वे जूआ खेलने लगे तो उनको मद्यपान कराने लगी। दाव छोटे-छोटे लगाए जा रहे थे। इस पर भी जो जीतता, वह जीत का चौथा भाग दासी को देता जाता था। एक बार सुमेर ने कहा भी, "सेठ साहब! यह दो-दो रजत मुद्रा से क्या खेलते हैं। सौ-सौ स्वर्ण मुद्रा का दाव लगाइये।"

सुमेर का विचार था कि चन्द्रमोहन को नशा हो गया है, परन्तु यह उसकी भूल निकली। चन्द्रमोहन सुमेर से अधिक चैतन्य था। उसने प्रत्यक्ष में यही प्रकट करते हुए कि वह नशे में है, कहा, "बात तो ठीक है। करोड़-पति के लिए दो रजत-मुद्रा का दाव लज्जा की बात है। लो मैं सौ स्वर्ण मुद्रा का दाव लगाता हूँ। यह लो सौ स्वर्ण मुद्रा मेरी। तुम भी निकालो सौ स्वर्ण-मुद्रा।"

सुमेर के पास फूटी कौड़ी भी नहीं थी। उसने अभी दस रजत मुद्रा

चन्द्रमोहन से जीती थीं। इससे उसने कहा, "आप चलिए। मैं हारूँगा तो दे दूँगा।"

"यह बात व्यापार में तो चल सकती है, पर जूए में नहीं। तो सुमेर जी! आपके पास स्वर्ण मुद्रा नहीं है। इस पर भी आप मेरे से स्वर्ण मुद्राओं से जूआ खेलना चाहते हैं। मुझे स्वीकार है, परन्तु यहाँ किसी को बन्धक बना दो।"

"बन्धक?" सुमेर ने माथे पर त्योरी चढ़ा कर कहा, "आप मेरा अपमान करते हैं, सेठ जी!"

चन्द्रमोहन ने अपनी स्वर्ण मुद्रा उठा कर जेब में डाल लीं और बोले, "रजत मुद्रा से ही काम चलेगा।"

"नहीं! अब मैं आपसे नहीं खेलूँगा।"

चन्द्रमोहन ने उस दासी को एक स्वर्ण मुद्रा देते हुए कहा, "आपको व्यर्थ कष्ट दिया है। आप जा सकती हैं।"

दासी ने गोटें एकत्रित करनी आरम्भ कर दीं।"

सुमेर ने देखा कि सोने की चिड़िया उड़ी जाती है। इससे बोला, "द्यूत क्रीड़ा न सही। पर हम मित्र तो रह सकते हैं?"

"निस्सन्देह। मैंने मित्रता छोड़ी नहीं।" इतना कह चन्द्रमोहन ने दासी से पूछा, "क्या कुछ भोजनार्थ मिल सकता है यहाँ?"

"मिलेगा। क्या खाएँगे? मिठाई, मांस-मछली, दाल-भाजी? मद्य और मंगवाऊँ?"

"सब कुछ और संगीत। कोई बहुत अच्छा गाने वाली।"

दासी मुस्कराई और बोली, "कितना धन आप इस समय व्यय कर सकते हैं?

"धन की कमी नहीं। केवल यह देखना है कि वैशाली में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी के भवन में क्या-क्या प्राप्य है?"

सुमेर पुनः बोल उठा, "सेठ महानुभाव! यहाँ जेब खाली हो जावेगी।"

"ज्ञेत्र बहुत लम्बी-चौड़ी है, सुमेर जी ! जाओ देवी। यदि नगर-वधू के दर्शन हों तो केवल दर्शन-मात्र के एक सौ स्वर्ण मुद्रा दे सकता हूँ।"

"आपकी प्रार्थना देवी से कहलवा देती हूँ।" इतना कह दासी द्यूत-क्रीड़ा का सामान उठाकर ले गई। उसके चले जाने पर सुमेर ने कहा, "आप मेरे साथ खेलने में तो कंजूस बन गए पर अब केवल दर्शन-मात्र के लिए एक सौ स्वर्ण मुद्रा दे रहे हैं।"

"भाई ! मुझे द्यूत क्रीड़ा रुचिकर नहीं। परन्तु विनोद भवन में आकर सुन्दरी के दर्शन बिना चला जाऊँ तो शोक होगा।"

"परन्तु इस छोटी-सी धनराशि के लिए मेरा तो उस दासी के सम्मुख अपमान कर दिया है न ?"

"मैंने अपमान के भाव से नहीं कहा था। वह तो व्यापार की बात थी। अब आप खाइये, पीजिये और आनन्द करिये। आपको दाम नहीं देना पड़ेगा। मैं सब कुछ दे दूँगा।"

इस समय सेवक और कई सेविकाएं भोजन का सामान लेकर आ गईं। उसी आगार में भूमि पर गाने वाली के लिए पृथक् आसन लगने लगा। तानपूरा, मृदङ्ग, वीणा स्वर होने लगे। चन्द्रमोहन के सम्मुख सुगन्धि-पात्र लगा दिया गया और सुरा सोने-चाँदी की सुराहियों में लाकर रख दी गई।

आगार में लगे दीपगुच्छ के सब दीप जला दिये गए। इससे दिन के समान प्रकाश हो गया। सेवक, जब सब कुछ तैयार हो गया, तो आगार के बाहर हो गए। इस समय सुमति आई और वीणा का स्वर देखने लगी।

सबसे अन्त में मृदुला आई। सुमेर ने उठकर स्वागत किया तो चन्द्रमोहन भी उठ खड़ा हुआ। नमस्कार हुई और सब बैठ गए। मृदुला चन्द्रमोहन के समीप आसन पर बैठ गई। चन्द्रमोहन ने सुन रखा था कि नगर-वधू बहुत सुन्दर है और संगीत-कला में अति प्रवीण है। इससे उसने कहा, "देवी ! जैसा सुना था, वैसा ही आपको पाया है। मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि आपके दर्शन हुए हैं। हाँ ! एक बात है। मेरे पास

अयोध्या के एक विख्यात सेठ की हुंडी है। क्या आप उसके अभी तुड़वाने का प्रबन्ध कर सकती हैं?"

"देखूँ।" मृदुला ने अयोध्या का नाम सुन सतर्क हो कहा।

चन्द्रमोहन ने भानुमित्र का पत्र लपेटा हुआ मृदुला के हाथ में दे दिया। मृदुला ने उसे खोला और नीचे भानुमित्र के हस्ताक्षर पहचान, उसे पुनः.लपेटकर अपनी अँगिया के भीतर डालते हुए कहा, "इन सेठजी को तो मैं भी जानती हूँ। इसके तुड़वाने का प्रबन्ध हो जावेगा।"

सुमेर को अचम्भे में अपनी ओर देखते हुए चन्द्रमोहन ने कहा, "सेठजी! यह दो सहस्र स्वर्ण-मुद्रा की हुंडी है। मैंने सोचा कि कहीं आज के विनोद में धन का टोटा न पड़ जाय इस कारण इसका धन मँगवाने के लिए दे दी है।" सुमेर इतना धन लुटता देख चकित रह गया।

मृदुला ने सुरा का पात्र भर-भरकर सेठों को देना आरम्भ कर दिया और सुमति वीणा बजाने लगी।

सुमेर ने खूब पेट भरकर खाया और सुरापान किया। चन्द्रमोहन अब सचेत हो गया था। उसने थोड़ा खाया और बहुत ही कम सुरा पी। परिणाम यह हुआ कि अभी सुमति कल्याण ही बजा रही थी कि सुमेर अचेत हो भूमि पर लेट गया।

मृदुला ने भेद-भरी दृष्टि में चन्द्रमोहन की ओर देखते हुए कहा, "मैं इस हुंडी के रुपये का प्रबन्ध अभी कर देती हूँ। आप यहीं बैठिये।"

सुमति गाती गई। चन्द्रमोहन गायन सुनता रहा। शीघ्र ही मृदुला आई और चन्द्रमोहन से बोली, "हुंडी पर आपके हस्ताक्षर चाहिएँ। आप इधर आइये।" चन्द्रमोहन उठ मृदुला के पीछे हो लिया। मृदुला उसे एक आगार में ले गई, वहाँ कोई दूसरा नहीं था। वहाँ पहुँच खड़े-खड़े ही उसने पूछा, "सेठ साहब! क्या मतलब है इस नाटक का?"

"देवी! यह मेरा साथी कोई भारी ठग प्रतीत होता है। कुछ महीनों की बात है कि यह एक सुन्दर लड़की लेकर अयोध्या में पहुँचा और उसका बाप बन लड़की का विवाह अयोध्या के महाराज से कर आया है। ऐसा

प्रतीत होता है कि लड़की अर्थात् नवीन महारानी कुछ षड्यन्त्र करने लगी हैं।"

मृदुला ने कुछ सोचकर बताया, "यह सुमेर श्री लक्ष्मीकान्त का, जो यहाँ के उपगणपति हैं, कोई निर्धन सम्बन्धी है। उन्हीं के कारोबार में काम करता है।"

"आप यदि यह मालूम कर दें कि इसकी कितनी सन्तान हैं और महारानी अवध इसकी लड़की है या नहीं तो बहुत कृपा होगी।"

"अवध के महामात्य जी के लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।"

: ७ :

भानुमित्र की सूचना-पुस्तक तैयार हो गई। इसको पूर्ण करने में तीन मास और एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा लग गई, परन्तु सेठ सुमेर का पूर्ण षड्यन्त्र दर्पण की भाँति स्पष्ट हो गया।

महामात्य ने इस सब रहस्य को अवध के महाराज को बताना व्यर्थ समझा। स्त्री के काम-बाणों से पीड़ित मनुष्य विवेक खो बैठता है। और उस समय महाराज अवध-नरेश की यही अवस्था हो रही थी।

महामात्य ने इस षड्यन्त्र को तोड़-फोड़ देने की पूर्ण योजना बना डाली थी और उसने इस पर कार्यवाही आरम्भ कर दी थी। इस बीच में मल्लिका की अवस्था और बिगड़ गई। महाराज नवीन महारानी के साथ रथ पर घूमने जाते थे, उसके साथ मृगया के लिए जाते थे और सार्वजनिक राज्यसभाओं में उसी को साथ लेकर उपस्थित होते थे। मल्लिका ने अपनी दुर्व्यवस्था का वृत्तान्त लिखकर एक सेवक के हाथ राजमाता के पास भेजा तो नवीन महारानी ने उस पत्र को बीच में ही रोक लिया। जो दासी पत्र लेकर गई थी, उसने बताया, "मैं जब राजमाता के महल की ओर जा रही थी तो छोटी महारानी जी की दासियाँ मुझे पकड़कर उनके सम्मुख ले गईं। वहाँ मेरी तलाशी ली गई और चिट्ठी लेकर महारानी ने पढ़ी। पश्चात् मुझे कहा कि जाओ अपनी मालकिन से कह दो कि उन्हें महाराज की निन्दा

करने की स्वीकृति नहीं।"

मल्लिका इस सूचना से आग-बबूला हो गई। इससे उसने महाराज के पास उपस्थित हो अपनी स्थिति को जानने का यत्न करने का निश्चय कर लिया। जब महाराज रानी पद्मावती के आगार में थे, वह वहाँ जा पहुँची। दासियाँ भागकर आगे निकल छोटी महारानी को सूचना देना चाहती थीं, परन्तु मल्लिका ने उन्हें डाँटकर रोका और उन्हें एक तरफ हटा आगार में जा पहुँची। महारानी महाराज की गोदी में बैठी उनसे कल्लोल कर रही थी। मल्लिका को देखते ही पद्मावती क्रोध से लाल-पीली हो उठकर खड़ी हो गई और पूछने लगी :—

"यहाँ किस लिए आई हो?"

"महाराज से निवेदन करने।"

"क्या है?" महाराज ने भृकुटि तान पूछा।

"क्या मैं यहाँ महाराज की महारानी हूँ या एक कैदी?"

"महारानी।"

"तो मेरा पत्र राजमाता के नाम क्यों रोक लिया गया है?"

"किसने रोका है?"

"बहन पद्मावती ने।"

"अच्छा। पत्र! कहाँ है वह? तनिक हमें दिखाओ तो।"

"उसमें महाराज की निन्दा लिखी है।"

"यह झूठ है, महाराज! उसमें ऐसी कोई बात नहीं।"

"पद्म प्रिये! हमें दिखाओ। हम निर्णय करेंगे।"

"वह मैंने फाड़कर फेंक दिया है। उसे देखते ही मुझे क्रोध चढ़ आया था।"

"तो मल्लिका रानी!" महाराज ने कहा, "तुम और लिख दो। हम पढ़ लेंगे।"

"अब मैं लिखने की आवश्यकता नहीं समझती। मैं स्वयं राजमाता के पास जा रही हूँ।"

"तो वहाँ जाकर इनकी निन्दा करोगी ?"

"राजमाता का स्नेह अपने पुत्र से असंदिग्ध है। वे मूर्ख नहीं, जो इनकी निन्दा सुन चुप रहेंगी।"

इतना कह मल्लिका आगार के बाहर निकल आई। उसने सुना कि पद्मावती दासियों को कह रही है, "पकड़ लो इस दुराचारिणी को।" साथ ही उसने महाराज को कहते सुना, "जाने दो, जाने दो।"

एक दासी ने, जो पद्मावती के मायके से साथ आई थी, मल्लिका को रोकने का यत्न किया तो मल्लिका ने अपने पूरे बल से एक चपत उसके मुख पर लगाई। इसके पश्चात् किसी का भी साहस नहीं हुआ कि मार्ग रोक सके और वह राजमाता के आगार में पहुँच गई।

जब से बड़े महाराज का देहान्त हुआ था, राजमाता अपना समय ईश्वर-भक्ति और वेद-पुराणादि शास्त्रों के पढ़ने में व्यय करती थीं। एक नौकरानी रसोई बनाने के लिए और एक नौकरानी अन्य कार्यों के लिए रखी हुई थी और वे महल के अपने भाग से बाहर कभी नहीं जाती थीं।

जब मल्लिका उनके सम्मुख उपस्थित हुई तो वे बोलीं, "आ गई हो बेटी ? आओ। अब तुम यहाँ मेरे पास ही रहोगी। तुम्हें वापस जाने की आवश्यकता नहीं।"

"तो माता जी ! आप जानती हैं........।"

राजमाता ने बात बीच में ही काटकर कहा, "सब कुछ जानती हूँ। मैं नित्य भगवान् से प्रार्थना किया करती थी कि वे तुम्हें सुमति दें कि तुम स्वयं यहाँ मेरे पास आ जाओ। वहाँ तुम्हारे जीवन जाने का भय है।"

मल्लिका यह सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पा द्रवित हो उठी। उसके आँसू बहने लगे। उसने घुटनों के बल हो अपना सिर राजमाता के चरणों पर रख दिया। राजमाता ने उसे उठा गले से लगा लिया। पश्चात् आशीर्वाद दे अपनी नौकरानी से मल्लिका के पहनने के वस्त्र इस आगार में मंगवा लिये।

एक दिन मल्लिका ने राजमाता से कहा, "आपकी छोटी बहू महाराज

से भूल करवा रही है। सुना है वे बौद्ध विहार के गृह-प्रवेश संस्कार में सम्मिलित होने जा रहे हैं।"

"पर बेटी! उन्हें रोकना मंत्री-मंडल का काम है, मेरा नहीं।"

"तो आप महामात्य से पूछें कि वे महाराज को एक ऐसे कार्य से, जिससे प्रजा के उन पर रुष्ट होने की सम्भावना है, क्यों मना नहीं करते?"

"बेटी! यह काम हमारा नहीं है।"

"आप महामात्य को आज्ञा नहीं दीजियेगा, माता जी! केवल एक ऐसे विषय पर, जिसका सम्बन्ध आपके परिवार से है, पूछने में क्या हानि है?"

राजमाता मान गईं। महामात्य को बुलाया गया और उनसे बौद्ध-विहार के विषय में पूछा गया। महामात्य ने कहा, "माता जी! यह और अन्य बहुत से कार्य मंत्री-मंडल से सम्मति लिए बिना हो रहे हैं।"

राजमाता इस बात को सुन अवाक् रह गईं। बहुत काल तक वह महामात्य का मुख देखती रहीं। पश्चात् कुछ सोचकर बोलो, "तो महामात्य! क्या यह तुम्हारा कार्य नहीं कि महाराज को इस मिथ्या मार्ग पर चलने से रोको।"

"यह महारानी पद्मावती जी के सहयोग के बिना नहीं हो सकता। इसी कारण तो मंत्री-मंडल की बैठकों में अयोध्या की महारानी को स्थान मिला हुआ है। आजकल मंत्री-मंडल बिना महाराज और महारानी के ही अपना कार्य कर रहा है।"

"भानुमित्र बेटा!" राजमाता ने व्याकुल हो कर कहा, "तुम बुद्धिमान और चतुर हो। एक बार पहले भी तुमने इस परिवार की रक्षा की थी। अब फिर मैं याचना करती हूँ कि कुछ उपाय करो।"

"राजमाता की जैसी आज्ञा हो। मैं अभी तक तो राज्य की रक्षा के उपाय सोच रहा था, परन्तु यदि आपकी यही आज्ञा है तो राज्य के साथ राज-परिवार के विषय में भी उपाय करूँगा।"

"हाँ बेटा! राज-परिवार के लिये ही कह रही हूँ। राज्य और राज-परिवार दोनों परस्पर सम्बद्ध बातें हैं।"

"परन्तु माता जी ! इस बात के लिये यदि छोटी महारानी जी को बंदी बनाना पड़ा तो ?"

"बंदी ? क्यों ?"

"अपराधी लोग बंदी बनाये जाते हैं, माता जी !"

"तो उस पर कोई अभियोग चलाओगे ?"

"चाहिए तो अभियोग चलाना। भारी अपराध किया है महारानी जी ने। परन्तु यदि मेरा बस चला तो बिना जनता में बात प्रकट किये, मैं उन्हें बन्दी कर लूँगा। जो लोग अपने को धर्म से भी ऊपर समझते हैं, उनके साथ धर्म से अतिरिक्त उपायों से व्यवहार किया जाता है।"

"मुझे तुम पर विश्वास है, भानुमित्र ! तुम जो करोगे उचित ही करोगे। कब तक मैं तुम्हारी योजना का परिणाम जानने की आशा करूँ ?"

"माता जी ! मैं भगवान् नहीं हूँ। यत्न कर रहा हूँ। प्रत्येक बात में समय लगता है और जो सहज पकता है वह मीठा होता है।"

भानुमित्र को समझ आया कि राजमाता उसकी सहायता करेंगी।

इस समय एक और घटना घटी। एक शिष्ट परिवार की एक बालिका और एक बालक बौद्ध-भिक्षु हो गए। परिवार के मुखिया ने न्यायालय में प्रार्थना कर दी कि उसके बच्चों को बौद्ध विहार से छुड़ाया जावे।

न्यायाधीश ने विहार के प्रभु को आज्ञा दी कि वह न्यायालय में उपस्थित हो उत्तर दे कि वे बच्चे कहाँ हैं ?

बौद्ध प्रभु ने न्यायालय में उपस्थित होने से न कर दी। इस पर न्यायाधीश ने महामात्य से राय की कि वह क्या करे। महामात्य ने सम्मति दी कि महाराज से पूछा जावे। महाराज ने आज्ञा दे दी कि बौद्ध प्रभु को बलपूर्वक पकड़ लिया जावे और बच्चों को विहार से पकड़, मँगवाकर उनके माता-पिता को वापस कर दिया जावे।

न्यायाधीश और अन्य मन्त्री-गणों को महाराज से, जो बौद्ध-मत के अनुकूल प्रतीत होते थे, इस आज्ञा की आशा नहीं थी। महामात्य ने न्यायाधीश से कहा कि अभी कुछ दिन तक महाराज की इस आज्ञा का

पालन न किया जावे। मन्त्री-मण्डल इस विषय पर विचार कर उचित उपाय बतावेगा।

महामात्य का विचार था कि महाराज से इस आज्ञा के दिलवाने में कोई गूढ़ रहस्य और नीति की बात है। इस कारण वह इसमें कारण को जानने के लिये उग्रता से विचार करने लगा।

अगले दिन उसने अपने गुप्तचरों को बौद्ध प्रभु के न्यायाधीश की आज्ञा न मानने पर नागरिकों का मत जानने के लिए भेज दिया। समाचार विस्मय-जनक मिले। बौद्ध उपासक तो राज्य की और महामात्य की निन्दा करते थे। वे कहते थे कि महामात्य की सम्मति से ही महाराज ने प्रभु को पकड़ने की आज्ञा दे दी है। वह ब्राह्मण है और बौद्धों का शत्रु है। उच्च वर्णों के लोग कहते थे कि महामात्य ने बौद्ध विहार के एक सेवक की लड़की से विवाह कर लिया है, इसीसे वह न्याय-बुद्धि खो बैठा है। बहुत योग्य होता हुआ भी वह न्याय-पथ को छोड़ बैठा है। अब न्यायाधीश को बौद्ध-प्रभु को पकड़ने से मना कर रहा है।

पूर्ण सूचना भानुमित्र ने मन्त्री-मण्डल के सम्मुख रख दी। इस मन्त्री-मण्डल की बैठक में महाराज और महारानी पद्मावती भी उपस्थित थे। महाराज कहते थे कि एक क्षण के लिए भी उन बच्चों का विहार में रहना ठीक नहीं। महारानी महाराज के कहने का समर्थन ही नहीं प्रत्युत् विहार के प्रभु पर अभियोग चलाने के लिए कहती थी। पूर्ण मन्त्री-मण्डल चुप था। केवल महामात्य कह रहा था, "हमारे राज्य में कोई ऐसा नियम नहीं, जिसके अनुकूल हम किसी अल्प-आयु के व्यक्ति को संन्यासी होने से रोक सकें।"

महाराज भानुमित्र के इस विरोध से छटपटा रहे थे। महारानी ने कहा, "मैं महामात्य से पूछना चाहती हूँ कि क्या महाराज व्यवस्था नहीं दे सकते?"

"नहीं," महामात्य का कहना था, "धर्म में व्यवस्था महाराज नहीं दे सकते। महाराज तो धर्म का पालन करते हुए प्रजा से धर्म-पालन करवा सकते हैं।"

"हम इस बात को नहीं मान सकते।" महारानी का कहना था।

"मैं आपके धर्म-विरुद्ध किसी भी काम में सहायक नहीं हो सकता।"

महाराज महामात्य के हठ से घबरा उठे। परन्तु बात अभी महारानी ने ही की, "क्या आप ऐसे बालकों के संन्यासी हो जाने को ठीक समझते हैं ?"

"महारानी जी ! नहीं।"

"तो फिर आप महाराज की आज्ञा में बाधा क्यों खड़ी कर रहे हैं ?"

"धर्म के नियमों में मैं परिवर्तन नहीं कर सकता। काशी से धर्म-शास्त्री बुलाए जायँ और उन्हें इस विषय में व्यवस्था देने को कहा जाय। यदि वे यह व्यवस्था दें कि किसी भी अल्पायु के बालक को संन्यास की प्रेरणा देना अपराध है, तब ही हम विहार के प्रभु को दण्ड दे सकते हैं।"

"यह बहुत लम्बी बात है। इसमें तो बहुत समय लगेगा और तब तक राज्य में विप्लव हो सकता है।"

"न्यून-से-न्यून इस कार्य में दो सप्ताह लगेंगे। यह धर्म-शास्त्रियों की परिषद् यहाँ के स्थान काशी जी में बुलाई जा सकती है।"

"तो हमारी आज्ञा है," महाराज ने सभा से उठते हुए कहा, "यह परिषद् शीघ्रातिशीघ्र बुला ली जावे और इस विषय पर व्यवस्था ली जावे।"

"नहीं !" महारानी ने महाराज का हाथ पकड़कर बैठाते हुए कहा, "उन बालकों को तुरन्त छुड़ा लिया जावे और व्यवस्था का कार्य पीछे होता रहेगा।"

महामात्य ने महारानी के आदेश का कुछ उत्तर नहीं दिया।

आठ

•

युक्ति का बल

•

: १ :

अयोध्या में श्री रघुनाथ जी का मन्दिर है। इसमें नागरिकों की सभाएँ लगा करती थीं। मन्दिर सर्वथा पत्थर का बना है। चौंतरा चढ़कर एक खुला मैदान है, जिस पर घास लगी है। नगर की पञ्चायत यदि सायंकाल लगती तो इस मैदान में और यदि ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न को होती अथवा शीतकाल में रात को होती, तो मैदान लांघकर एक विशाल भवन में बैठती थी। वर्ष में दो-तीन बार से अधिक यह मन्दिर प्रयोग में नहीं आता था।

हाँ, कुछ दिनों से एक साधू बाबा मैदान के बीचोंबीच पञ्चाग्नि तप कर रहा था और उसके पास दिन-रात लोगों का जमघट लगा रहता था। ज्येष्ठ मास में खुली धूप में पञ्चाग्नि तपने वाले साधू की महिमा नगर में फैलते देर नहीं लगी। प्रत्येक सायंकाल पाँच-दस हजार लोगों का जमघट होने लगा।

उपस्थित लोगों में प्रायः महात्मा जी से उपदेश की याचना करते रहते थे। कभी, जिस दिन, महात्मा जी की कृपा होती तो वे उपदेश भी देते और उपस्थित लोगों की शंकाओं का समाधान भी करते।

इसी बीच में बौद्ध विहार में अल्प-आयु के बालकों के भिक्षु हो जाने का झगड़ा आरम्भ हो गया। नागरिकों का, पहले तो न्यायाधीश की ओर ध्यान गया। पश्चात् बौद्ध विहार के प्रभु की ओर, तदनन्तर महाराज की

ओर और अब महामात्य की ओर।

जब किसी के किये कुछ नहीं हुआ तो लोगों में असन्तोष उबल पड़ा। इस समय तपस्वी बाबा की महिमा का प्रचार हो रहा था। एक सायंकाल लोग एकत्रित हुए तो एक आदमी ने महाराज से पूछ ही लिया,

"आप बौद्ध हैं या आर्य ?"

"मैं मनुष्य हूँ।"

"बाबा ! इसका अर्थ नहीं समझे हम।"

"मनुष्य मननशील प्राणी है। अतएव मनुष्य होने के नाते मैं वही करता हूँ, जिसे मेरी बुद्धि मानती है। मेरा किसी भी मत-मतान्तर से सम्बन्ध नहीं।"

"तो महाराज ! आपका इन बालकों के विषय में क्या मत है, जिन्हें बौद्ध भिक्षु बना लिया गया है ?"

"मैं समझता हूँ यह ठीक नहीं हुआ।"

"तो अवध-नरेश का यह कहना ठीक है कि बालकों को छुड़ा दिया जाए ?"

"हाँ, परन्तु कौन छुड़ाए ? प्रश्न यही है।"

"तो कौन छुड़ाए ? क्या राज्य को यह छुड़ाने का कार्य नहीं करना चाहिए ?"

"मत-मतान्तरों के झगड़ों में राज्य को, तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि हस्तक्षेप अत्यावश्यक न हो जाय। इस अवस्था में बौद्ध विहार वालों को बालकों को छोड़ देना चाहिए।"

"यदि वे न छोड़ें तो ?"

"उनको पर्याप्त अवसर देना चाहिए ताकि उनको सुबुद्धि मिल सके।"

"यदि उनको सुबुद्धि न आवे तो ?"

"तो उन्हें विवश किया जावे।"

"कैसे ?"

"नगर के लोग बलपूर्वक विहार में घुस जावें और बालकों को लाकर

उनके माता-पिता के पास पहुँचा दें।"

"राज्य को यह कार्य करने पर विवश क्यों न किया जावे ?"

"जिसमें दोष है, उसे सुधारना चाहिए न कि तीसरे व्यक्ति को।"

"इससे तो दुर्व्यवस्था फैल जावेगी।"

"दुर्व्यवस्था को दूर करने के लिए यह आवश्यक है।"

"राज्य के सैनिक ऐसा करने से हमें रोकेंगे।"

"परन्तु यदि हम महाराज को विवश करेंगे, तब तो सैनिक हमारा कचूमर ही निकाल देंगे।"

"तो क्या किया जाय ?"

"एक नागरिकों की पञ्चायत बुलाई जावे। उसमें विचार किया जाय कि विहार वाले बालकों को वापस करें, अथवा न। यदि बालकों का वापस होना ठीक है, तो विहार वालों को बालक वापस करने पर विवश किया जावे।"

तपस्वी बाबा का सुझाव नगर-भर में प्रचारित हो गया। स्थान-स्थान पर गोष्ठियाँ होने लगीं और उनमें गरमा-गरम वाद-विवाद छिड़ गया। धीरे-धीरे बाबा का कहना नगर के पञ्चों के कान में भी पड़ा और बड़ी पञ्चायत बुलाने का विचार होने लगा।

: २ :

नगर की प्राचीर के साथ-साथ शूद्रों और निर्धनों के आवास थे। उनमें प्रायः लोग बौद्ध मतावलम्बी थे। दिन-भर काम करते और सायंकाल उपासनाओं में सम्मिलित होते थे। कभी-कभी कोई बौद्ध भिक्षु भी उनमें आता, उपासना में सम्मिलित होता तथा उन्हें उपदेश दिया करता था।

नगर की हलचल से वे भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। अल्प-आयु के बालक-बालिकाओं के भिक्षु होने का प्रश्न उनके सम्मुख भी उपस्थित हो रहा था।

भिक्षु लोग जो उन्हें उपदेश देने आते थे, वे तो यही कहते थे कि सब

को स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि जो मार्ग चाहें वे स्वीकार करें, परन्तु उपासकों में इस विषय पर मतभेद हो रहा था।

एक बटुक चर्मकार कई मास से वैशाली से आकर बसा हुआ था। वह बालकों को बिना उनके माता-पिता की स्वीकृति के भिक्षु बनाने का विरोध करता था।

बटुक चमड़ा रंगने का कार्य करता था और अपने कार्य में इतना चतुर था कि दूर-दूर से लोग उसका माल खरीदने आते थे। उसके पास धन भी अच्छा-खासा था, परन्तु उसकी स्त्री और बाल-बच्चे नहीं थे।

जब लोग उससे पूछते, "बटुक दादा! विवाह नहीं कराया?" तो वह लम्बा साँस ले चुप रह जाता।

बटुक के पड़ोस में एक चन्दू जूते सीने वाला रहता था। चन्दू की स्त्री और छोटी बहन काम करती थीं और चन्दू चौधरीपन करता था। जब बटुक चमड़ा रंग, बेचने के लिए खालें मकान के दरवाजे के बाहर लटकाता, तो चन्दू की बहन ललचाई आँखों से उनकी ओर देखा करती थी। जितने भी चमड़ा रंगने वाले उस मुहल्ले में रहते थे, इतना नरम और बढ़िया माल नहीं बना सकते थे।

एक दिन बटुक मकान के द्वार पर गम्भीर विचार में पड़ा हुआ बैठा था कि चन्दू की बहन, फिरकी, एक खाल को देखने लगी। बटुक ने उसे पहले भी कई बार खालों को देखते हुए देखा था। आज उसका ध्यान भंग हुआ तो उसने पूछ ही लिया, "खरीदती भी हो या देखती ही हो?"

"खरीदनी तो है पर खाल पूरी जो बेचते हो।"

"तो पूरी खाल ही खरीद लो।"

"दाम कहाँ से लाऊँ?"

बटुक सोचने लगा कि क्या निर्धनों को बढ़िया काम नहीं करना चाहिये? इस पर उसने पूछा, "जितनी बढ़िया खाल है, उतना बढ़िया काम करने वाले को मैं टुकड़े कर भी बेच सकता हूँ।"

"काम तो हम बहुत बढ़िया करते हैं दिखाऊँ लाकर?"

"हाँ।"

वह अपने घर गई और दो जोड़े जूते उठा लाई और बटुक को दिखा-कर बोली, "यह छोटी महारानी के लिए बनाए हैं।"

बटुक ने जूतों को देखा। सिलाई इत्यादि बहुत बढ़िया की गई थी। वास्तव में महारानी जी के योग्य ही बने थे। जूतों को देखकर बटुक ने कहा, "जब तुम इतने बढ़िया जूते बना लेते हो तो तुम्हारे पास पूरी खाल खरी-दने को दाम क्यों नहीं?"

"दाम नहीं हैं। भला कितने की दोगे यह खाल?"

"बीस रजत मुद्रा की।"

"वैसे तो सस्ती है। पर हमारे पास तो इतना भी नहीं है।"

"अच्छा, एक बात करो। पूरी खाल ले जाओ और दाम धीरे-धीरे कर दे देना।"

फिरकी विस्मय में मुख देखती रह गई। फिर बोली, "मैं अपनी भाभी से पूछ आऊँ?"

बटुक मुस्करा दिया और फिरकी जूते ले चली गई। कुछ ही काल पश्चात् वह आई और दो रजत मुद्रा बटुक के सम्मुख रख बोली, "शेष फिर दे दूँगी।"

यह बात नगर में बच्चों के भिक्षु बनने पर आन्दोलन होने से कई मास पहले की थी। तब से लेकर इस काल तक बटुक की ख्याति पूर्ण शूद्र श्रेणी में फैल चुकी थी। चन्दू जो चर्मकारों का चौधरी था, बटुक का घना मित्र बन चुका था। कभी-कभी फिरकी के विवाह के विषय में भी बटुक से चर्चा कर चुका था।

बटुक कह दिया करता था, "तुम मेरी कितनी आयु समझते हो? भाई! मेरी आयु पैंतीस वर्ष की है। मैं सत्रह वर्ष का था, जब मेरा विवाह हुआ था। मैं पच्चीस वर्ष का था, जब मेरे तीन बालक थे। तीनों लड़के। उस समय मेरी स्त्री ने एक दिन कहा कि वह बौद्ध भिक्षुणी बनेगी। मैंने पूछा 'क्यों?'

"तो बोली 'बच्चे जनते-जनते मैं थक गई हूँ।'

'पर मैं तो नहीं थका।' मेरा कहना था।

'तो तुम और विवाह कर लो।' उसका उत्तर था।

"मैंने बहुत समझाया, परन्तु वह नहीं मानी और एक दिन सिर मुँडा वैशाली के एक विहार में चली गई। मैंने बच्चों को पालपोस कर बड़ा किया। जब मैं पैंतीस वर्ष का हुआ तो सबसे बड़ा लड़का पन्द्रह वर्ष का था, उससे छोटा तेरह का और सबसे छोटा ग्यारह वर्ष का था। कुछ महीनों से मेरी स्त्री, जो भिक्षुणी हो चुकी थी, अपने लड़कों से मिला करती थी और एक दिन वे तीनों सिर मुँडा उसके साथ हो लिये।

"मैं इतना उदास हुआ कि वैशाली छोड़ अयोध्या चला आया। अब विवाह को जी नहीं चाहता।"

"परन्तु भाई बटुक! फिरकी कहती है कि वह तुमसे विवाह करेगी।"

"और अगर मैं न मानूँ तो?"

"तो कहती है कि भिक्षुणी हो जावेगी।"

"यह क्या बीमारी चली है? समझ में नहीं आता। एक भिक्षुणी बनी इसलिए कि उसको विवाह सुखाया नहीं। दूसरी बनने जा रही है इसलिए कि उसका विवाह होता नहीं।"

"तो बताओ भाई बटुक! क्या विचार है तुम्हारा?"

"कुछ सोचकर बताऊँगा। तुम्हारी बहन की आयु बहुत छोटी है।"

बटुक से एक दिन फिरकी ने भी बात की। वह उसके पास से खाल लेने आई थी। खाल खरीदते समय सदैव यह होता था कि बटुक दाम इतना कम बताता कि फिरकी झगड़ा कर ही नहीं सकती थी।

आज फिरकी ने कह दिया, "कल मोटे जूतों के लिये खाल मोल लेने गई थी, तो वह नगौरा मुझ से विवाह की बात भी करता गया और दाम भी दुगना माँगता गया। उस मोटे भद्दे चमड़े के पच्चीस रजत माँगता था और तुम इस बढ़िया के बीस रजत मांगते हो।"

"वह ठीक ही तो करता है फिरकी! तुम्हारा घर बनाने के लिए ही

तो धन बटोर रहा है।"

"और मेरे भाई को लूट कर ही। फिर मैं उससे विवाह नहीं करूँगी।"

"तो किससे करोगी?" बटुक ने मुस्करा कर पूछा।

"नहीं बताऊँगी।" फिरकी ने आँखों की कनखियों से देखते हुए कहा।

"नहीं बताओगी तो मैं भी दाम अधिक मागूँगा।"

"मैं जानती हूँ कि तुम ऐसा नहीं करोगे। तुम 'भले मनें' हो।"

बटुक हँस पड़ा और वह खाल, जो उसने पसन्द की थी, लपेट कर उसे देते हुए पूछने लगा, "दाम अभी दोगी या धीरे-धीरे।"

"बीस रजत ही तो माँगे हैं न? यह लो।"

"हाँ बीस, अगर बता दो कि विवाह किससे करोगी, नहीं तो पचीस।"

"तो मैं पचीस दूँगी। देखूँ, तुम किस प्रकार लेते हो?"

फिरकी ने बीस की एक ढेरी रख दी और पाँच पृथक्। बटुक ने पूछा, "तो तुम नहीं बताओगी?"

फिरकी आँखें नीचे किये खड़ी रही। बटुक ने बीस रजत उठा लीं और पाँच को वहीं छोड़ मकान के भीतर रखने चला गया। जब वह बाहर आया तो फिरकी पाँच रजत उठाकर ले गई थी और उस स्थान पर जहाँ पाँच रजत रखे थे, कोयले से 'बटुक' लिख गई थी।

: ३ :

जब तपस्वी बाबा उच्च वर्ण के लोगों को कह रहा था कि राज्य से झगड़ा करने के स्थान बौद्धों से झगड़ा करना उचित है, वहाँ बटुक छोटे वर्ण के लोगों से कह रहा था कि बौद्ध विहार वाले अल्प आयु के लोगों को भिक्षुक बना ठीक नहीं करते। जिस दिन रघुनाथ जी के मन्दिर में नगर की पंचायत बैठी, उसी दिन विहार के प्रभु छोटे वर्ण वालों में यह प्रचार करने आए थे कि उनके अधिकार की, कि जो एक बार भिक्षु धर्म-ग्रहण कर

ले उसे यह धर्म छोड़ने के लिए कोई विवश न करे, रक्षा की जाए।

जब प्रभु भदन्त 'धम्म वत्त' अपने उपासकों को कह रहा था कि उसे भय है कि उच्च वर्ण वाले विहार पर धावा बोल, उन बालक-भिक्षुओं को बलपूर्वक ले जावेंगे और उपासकों को चाहिये कि विहार की रक्षा के लिए विहार में आ जावें, तो बटुक उठ कर भदन्त 'धम्म वत्त' से पूछने लगा, "भगवन्! भिक्षु कोई क्यों बनता है?"

"निर्वाण मार्ग पर द्रुत गति से चलने के लिए।"

"एक दस वर्ष का बालक निर्वाण के अर्थ क्या समझेगा?"

"समझे अथवा न समझे। इससे हमारा सम्बन्ध नहीं।"

"आपने उससे सम्बन्ध तो बनाया है। उसे रहने को स्थान दिया है, खाने को भोजन और पहनने को कपड़े दिये हैं। देखिये, भगवन्! बालक-बालिकाओं के संरक्षक उनके माता-पिता हैं। उनकी आज्ञा तथा रुचि के बिना आपको उन्हें ऐसे मार्ग पर नहीं ले जाना चाहिये। क्यों भैया चन्दू! यदि तुम्हारी फिरकी अथवा भैया मक्कु! तुम्हारा मोहन भिक्षु बनना चाहें तो तुम क्या कहोगे?

"मैं पूछता हूँ कि कौन माता और पिता हैं, जो चाहेंगे कि उनका बालक उनकी वृद्ध अवस्था में उन्हें छोड़ भिक्षु हो जावे।"

बटुक और चन्दू की बौद्ध उपासकों में भारी महिमा थी। इस से और फिर अपने ही बालकों पर समस्या को लागू कर, भदन्त धम्म वत्त को, प्रायः सब उपासकों ने कह दिया, "महाराज! उन दोनों बच्चों को, जिनके विषय में झगड़ा है, अपने आप उनके माता-पिता के घर पहुंचा दीजिए। यही धर्म है।"

रघुनाथ के मन्दिर में तपस्वी बाबा ने कहा, "नगर पञ्चो! मैं आपको कहता हूँ कि लोक-मत में बहुत बल है। आज आपने जो यह निर्णय किया है कि उन बालकों को उनके माता-पिता की इच्छा के विपरीत कोई ले जा नहीं सकता, अपना प्रभाव जमाये बिना नहीं रह सकता। जनता में जनार्दन विराजमान होता है।"

यह निश्चय हो गया कि अगले दिन प्रातःकाल नगर के लाखों नर-नारी, बालक-बालिकाएँ उन बच्चों को, जो भिक्षु हो गए हैं, वापस लेने के लिये जाएँ। रघुनाथ जी के मन्दिर से यह यात्रा आरम्भ होनी थी।

निश्चित दिन से पूर्व की रात्रि में अयोध्या से दो कोस के अन्तर पर विहार में बौद्ध भिक्षु मंडल, इस नई परिस्थिति पर विचार करने बैठा। भदन्त धम्म वत्त उपासकों से बातचीत कर लौट आया था और भिक्षु मंडल को बता रहा था, "उपासकों में एक बटुक है। वह वैशाली से आया है और कहता है कि उसकी युवा पत्नी और तीन कुमार पुत्र भिक्षु बन गए हैं। वह उपासकों को कह रहा है कि वे इस विषय में हमारी सहायता न करें। उसने मुझसे कहा है कि मैं दोनों बच्चों को उनके माता-पिता के घर पहुँचा दूँ।"

इस सूचना के पश्चात् एक भिक्षु ने रघुनाथ जी के मन्दिर की कथा वर्णन कर दी और बताया कि प्रातःकाल लोग तपस्वी बाबा के नेतृत्व में विहार पर धावा बोल देंगे। पूर्ण नगर इस प्रयोजन से यहाँ आवेगा।

इस पर विचार-विनिमय आरम्भ हुआ। भिक्षुओं में तीन मत थे। कुछ लोग यह कह रहे थे कि सब भिक्षु-भिक्षुणियां उन बालकों को साथ ले, विहार छोड़ किसी दूर स्थान पर जंगल में चले जावें। जब लोगों का क्रोध शान्त हो जावे तो फिर लौट आवें।

दूसरे मत के लोग वे थे, जो चाहते थे कि विहार में डट कर बैठे रहें। प्रातः जब लोग आवें तो बालकों को बीच में कर उनके चारों ओर लेट जावें। लोगों की भीड़ उन्हें कुचल कर ही बालकों तक पहुँच सके। उन्हें अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्राण त्याग देने चाहियें।

इन दोनों पक्षों के बीच का एक तीसरा मत था। ये लोग चाहते थे कि अभी महामात्य के पास पहुँच कर रक्षा किये जाने की प्रार्थना की जावे। इस मत के लोगों का कहना था कि महाराज ने तो आज्ञा दे दी है कि बल-पूर्वक बालकों को छुड़ाया जावे। इससे महाराज के पास जाने से लाभ नहीं। महामात्य बालक भिक्षुओं के छुड़ाने को धर्म से नियमानुकूल नहीं

मानता। इसलिये उससे कहा जाए कि राज्य में व्यवस्था स्थिर रखने के लिये लोगों को राज्य का कार्य स्वयं करने से रोका जाए।

बहुमत इस पक्ष का निकला। अतएव भदन्त धम्म वत्त और दो अन्य भिक्षु महामात्य के भवन पर जा पहुँचे। महामात्य अभी जागता था। उसे जब सूचना मिली तो वह बटुक और तपस्वी बाबा से गुप्त गोष्ठी कर रहा था। भदन्त धम्म वत्त के आगमन की बात सुन वह उन दोनों को वहाँ छोड़, बाहर के आगार में आ भिक्षुओं से, उनके इस समय आने का कारण पूछने लगा।

धम्म वत्त ने पूर्ण परिस्थिति का वर्णन कर कहा, "हम अपने नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए राज्य से सैनिक सहायता चाहते हैं।"

महामात्य ने कहा, "नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए नागरिकों के कर्तव्य पालन करने पड़ते हैं।"

"वह हम करते हैं।"

"मेरे विचार में तुमने किसी एक के लड़के और लड़की को भ्रम में डाल कर पथ-भ्रष्ट कर दिया है।"

"वे अपनी इच्छा से गये हैं, भगवन्!"

"अल्पायु के बालकों की इच्छा उनके माता-पिता की इच्छा में ही होती है। यदि ऐसा न मानें तो कोई भी व्यसनी बालकों को खाने-पीने का लालच दे, उनको घर से भगा कर ले जा सकता है।"

"पर हम तो उनको अच्छे मार्ग की ओर ले जाना चाहते हैं।"

"आज नगर भर के लोग आपके इस कहने को नहीं मानते।"

"राज्य क्या कहता है?"

"राज्य लोक-मत को मानता है और उनका प्रतिनिधित्व करता है।"

"चाहे लोकमत भूल ही हो।"

"लोकमत भूल हो तो उसको सेना से नहीं दबाया जा सकता। उसे सुधारने के लिए शिक्षा से लोगों की मनोवृत्ति बदलने की आवश्यकता है।"

"पर भगवन्! अब मत बदलने के लिए तो समय नहीं है। प्रातः ही तो लोग हम पर बलात्कार करने जा रहे हैं।"

"मेरी सम्मति है कि बालकों को वापस कर दो। पश्चात् लोगों को अपने मत के अनुकूल करने के लिए प्रचार करो। शायद दस-बीस वर्ष में आप लोगों को अपने मत के अनुकूल बना सकेंगे। तब ही आप बालक-बालिकाओं को भिक्षु बनायें तो ठीक है।

"यह तो अन्याय है, भगवन्!"

"किस का? और किस पर?"

"राज्य का, हम पर।"

"राज्य प्रजा के दो पक्षों में निष्पक्ष रहेगा।"

"तो बहु-संख्या वाले अल्प-संख्यकों पर अत्याचार करेंगे।"

"दुर्भाग्य यह है कि राज्य अल्प-संख्यकों को अत्याचार करता पाता है। इस पर भी यह राज्य का सौजन्य है कि अपने विचारों का पालन कराने के लिये सेना का प्रयोग नहीं कर रहा।"

"हम उस भीड़ के सम्मुख अपने प्राण न्योछावर कर देंगे।"

"ऐसा करना दुराग्रह होगा। इसे कोई भी बुद्धिमान प्रशंसनीय नहीं मानेगा।"

भिक्षुक लोग लौट गये और पुनः विहार में विचार-विनिमय हुआ। भदन्त धम्म वत्त ने सूर्य निकलने से पूर्व दोनों अल्पआयु के भिक्षुओं को तपस्वी बाबा के पास मन्दिर में पहुँचा दिया।

भिक्षु लोगों से बात कर महामात्य पुनः तपस्वी बाबा और बटुक के पास जा पहुँचा। उसने उनको कहा, "मैं समझता हूँ कि आपका काम अयोध्या में समाप्त हो गया है। इस पर भी आपको एकदम यहाँ से नहीं जाना चाहिए। लोगों को किसी प्रकार से भी और किसी भी अंश में सन्देह नहीं होना चाहिए कि आप गुप्तचर विभाग के लोग हैं। इसलिए आप अब आराम से यहाँ से विदा हो जावें और फिर हवा में विलीन हो जावें।"

इस पर बटुक ने कहा, "पर आर्य! एक झगड़ा और खड़ा हो गया है। चन्दू चौधरी की बहन मुझसे प्रेम करने लगी है और वह मेरे जाने पर बहुत झगड़ा करेगी।"

"तो उससे विवाह कर लो।"

वटुक ने कुछ घबराकर कहा, "वैसे तो लड़की जूते सीने में बहुत चतुर है; परन्तु महाराज! मेरी पहली स्त्री और बच्चे भी तो हैं।"

महामात्य की हँसी निकल गई। पश्चात् कुछ विचार कर कहा, "चन्दू से कहो कि तुम विवाह नहीं कर सकते। तुम्हारी आयु और उसकी आयु में बहुत अन्तर है।"

"मैंने कहा था। इस पर वह लड़की भिक्षुणी बन जाने को कहती है। बेचारी की जवानी खराब जाएगी।"

"अच्छा तो एक बात करो। हमारे एक सेवक का लड़का हरद्वारी है। उसको मैं तुम्हारे पास भेजूँगा। तुम उसके विवाह की बात कर दो। यदि वह मान जायगी तो हम पाँच सौ रजत उसको देंगे। यह तुम अपने नाम से दे देना।"

"यत्न करूँगा, महाराज!"

"कुछ भी हो, एक बात तुम लोगों को समझ लेनी चाहिए कि राज्य-कार्य नीतिपूर्वक चलाने के लिए दो-चार क्या, सहस्र-दो-सहस्र की जवानी व्यर्थ जाने का शोच नहीं किया जा सकता। देखो, तुमने जो कार्य बौद्ध-उपासकों में किया है, उससे कई हजार लोगों की हत्या होती-होती बच गई है। कल यदि वे लोग विहार की रक्षा के लिए चले जाते तो प्रायः सब मारे जाते। नगर की भीड़ में राज्य के सैनिक भी नागरिकों के रूप में जा रहे थे। कल एक भारी हत्याकाण्ड होता-होता बच गया है। उसकी तुलना में एक लड़की का दिल टूटता है या नहीं कोई महत्ता नहीं रखता।

: ४ :

भानुमित्र को अचला, एक गँवार लड़की और राका, एक साधारण पुरोहित की लड़की से विवाह करते देख प्रभा को भारी निराशा हुई थी। वह अपनी अवस्था पर महीनों ही चिन्तन करती रही। वह कुरूप थी और बुद्धि भी साधारण रखती थी। जब उसने अपना मार्ग निश्चय कर

लिया तो उस मार्ग का अवलम्बन करने के लिए महीनों ही साहस बाँधती रही। उसने संसार से विरक्त हो जाने का निश्चय कर लिया। उसकी बहन विदुषी थी, इससे गृहस्थ-सुख न पाने पर भी साहित्य में इतना लीन रहती थी कि उसे संसार बोझल प्रतीत नहीं होता था। वह स्वयं न तो संगीत सीख सकी थी, न ही कोई अन्य कला। पढ़ी-लिखी भी अधिक नहीं थी। व्याकरण अधूरा ही रह गया था। उसे विश्वास हो गया था कि उसके लिए संसार अन्धकारमय है। इससे उसने इसे छोड़ देने का निश्चय कर लिया था।

एक दिन प्रातःकाल ही वह भवन से निकल बौद्ध विहार में जा पहुँची। यह संसार छोड़ने का सुलभ उपाय था। वहाँ विहार के प्रभु भदन्त 'सत्त वत्त' से मिलकर उनके चरणों पर अपना शीश रख, दीक्षा माँगने लगी, "मैं भगवान् बुद्ध की शरण में आई हूँ।"

"आओ बेटा! धर्म की शरण में आवो। संघ की शरण में आवो।" प्रभु ने कहा। पश्चात् उपदेश दिया। सिर मुँडवाकर उसे श्वेत उत्तरीय पहनने को दे दिया।

उसी दिन सायंकाल देवधर्मा को पता चला कि प्रभा भिक्षुणी हो गई है। वैशाली में बौद्ध-मतावलम्बियों की यह भारी जीत थी। इसके अतिरिक्त लक्ष्मीकान्त गणपति से बहुत तना हुआ था। वह नगर और बाहर भारी तैयारी कर रहा था। लक्ष्मीकान्त बौद्ध था। इस पर भी गणपति यह देख रहा था कि जनता उसके अपने पक्ष में अधिक है और यदि अगले निर्वाचन में जनमत लिया गया तो वह ही पुनः निर्वाचित होगा। परन्तु जब उसे प्रभा के विहार में चले जाने की सूचना मिली तो उसे भारी निराशा हुई। प्रभा सज्ञान थी और बौद्धों पर किसी अल्प आयु के बालक को भ्रम में डालकर ले जाने का लाञ्छन नहीं लग सकता था।

केवल देवधर्मा को ही नहीं, प्रत्युत् पूर्ण नगर और देश में यह विदित हो गया कि गणपति की लड़की बौद्ध भिक्षुणी हो गई है। इससे देशभर के बौद्धों ने खुशियाँ मनाईं। लक्ष्मीकान्त ने तो अपने भवन पर दीपमाला की।

देवधर्मा की स्त्री सुनीला तो यह समाचार सुन अधमरी-सी हो गई। वह शोक में पलंग पर लेटी तो उठ नहीं सकी। ऊषा अपने माता और पिता दोनों को ढाढस बँधाती रहती थी।

इस पर भी देवधर्मा अपने कार्य में वैसे ही लीन रहता था, जैसे पहले और अपने मुख पर अपने अन्तरात्मा के कष्ट की रेखा भी झलकने नहीं देता था।

कई दिन व्यतीत हो चुके थे और बात पुरानी हो गई प्रतीत होती थी कि भिक्षुणी प्रभा नगर में भिक्षा करने आई। किसी की प्रेरणा से अथवा बिना कारण प्रभा गणपति भवन के पिछले द्वार पर, जो विष्णु वीथिका में खुलता था, जा खड़ी हुई और उसने पुकारा, "बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि।"

द्वारपाल ने पहचान लिया और यह कह, "भिक्षुणी! ठहरो। अन्न लाता हूँ।" भीतर माता जी को समाचार देने भाग गया। एक क्षण-भर में घर में कोहराम मच गया। ऊषा, ऊषा की माँ, नौकर-नौकरानियाँ, घर में अन्य टिके सम्बन्धी सब द्वार पर भागे हुए आये। कोई हाथ में मुट्ठी-भर अनाज, कोई अञ्जुली में मिठाई, कोई वस्त्र और कोई स्वर्णादि भूषण ही लिए हुए वहाँ पहुँच गया।

माँ ने जब लड़की को इस कुरूप वेश में देखा तो रोने लगी। उसका हाथ भिक्षा देने के लिए उठा हुआ रुक गया। प्रभा ने भिक्षा का झोला आगे बढ़ाते हुए कहा, "भिक्षां देही, देवी!"

माँ को यह स्वर अति अप्रिय लगा। यह सुन वह अचेत हो वहीं लेट गई। कुछ लोगों ने भिक्षा उसके झोले में डाल दी। कुछ लोग अपनी स्वामिन् को सचेत करने में लग गए। प्रभा भिक्षा ले माँ की अवस्था की ओर ध्यान दिये बिना चली जाने वाली ही थी कि गणपति समाचार पा स्वयं वहाँ आ पहुँचा। उसने वहाँ पहुँच क्षणभर में पूर्ण परिस्थिति को समझ लिया। उसने दासियों को प्रभा की माँ की ओर संकेत कर कहा, "इसे उठा भीतर ले चलो।"

प्रभा जो अभी भी भूमि की ओर देख रही थी, पिता का स्वर पहचान, एक क्षण रुक बोली, "भिक्षां देही, भन्ते !"

प्रभा का रूखा स्वर सुन गणपति क्रोध से पागल हो गया। उसने क्रोध से थर-थर काँपते हुए कहा, "ओ छोकड़ी ! यह क्या ढोंग बना लिया है तुमने ?"

प्रभा ने शान्ति से कहा, "बुद्धं शरणं गच्छामि......।" इससे आगे गणपति नहीं सुन सका। उसने प्रभा के हाथ से झोला छीन भूमि पर पटक दिया और उसको बाँह से पकड़कर घसीटता हुआ घर के भीतर ले गया। वहाँ से अन्तःपुर में, उसकी माँ के आगार में ले जाकर उसको पटक दिया।

वहाँ उसकी माँ अभी भी अर्ध चेतनावस्था में भूमि पर लेटी हुई थी। प्रभा जहाँ भूमि पर पटकी गई थी, वहीं बैठ भूमि की ओर देखती रही और मुख में, "बुद्धं शरणं गच्छामि' रटती रही। यह उसके फड़कते होठों से स्पष्ट हो रहा था।

"उठो सुनीला !" गणपति का कहना था। सुनीला ने लेटे-लेटे ही आँखें खोलीं और फिर मूँद लीं। इस पर गणपति ने प्रभा को कहा, "प्रभा ! उठो और कपड़े बदल लो। यह गणपति की लड़की को शोभा नहीं देते।"

प्रभा नहीं उठी। इस पर गणपति ने वहाँ सुनीला की सेवा-शुश्रूषा करती कुछ दासियों को आदेश दिया, "इसे अपने आगार में ले जाओ और इसे बहुत बढ़िया वस्त्र पहिनाओ। ले जाओ और देखो यह भाग न जाए।"

दासियों ने प्रभा को उठने के लिए कहा, परन्तु वह वहीं बैठी, 'बुद्धं शरणं गच्छामि' की रट लगाती रही। यह देख गणपति ने आज्ञा दी, "इसे बलपूर्वक ले जाओ और ये वस्त्र उतार रेशमी वस्त्र पहिना दो। जाओ।"

दासियों ने वैसे ही किया। गणपति ने ऊषा को उनके पीछे भेजते हुए कहा, "देखो बेटी ! यह परिवार की मान-प्रतिष्ठा का प्रश्न है। प्रभा के पास जाओ और उसे समझाओ। यदि वह न समझे तो उसे मेरे आने तक जाने मत देना।"

परिचारिकों को सुनीला की देखभाल करने के लिये कह, गणपति अपने काम पर चला गया।

: ५ :

गणपति समझता था कि किसी लड़की को उसके माता-पिता से पूछे बिना भिक्षुणी बनाना एक अनधिकार चेष्टा है। परन्तु लक्ष्मीकान्त के लोग कह रहे थे कि गणपति ने एक बौद्ध भिक्षुणी को बलपूर्वक अपने घर में बन्दी कर घोर अपराध किया है। लक्ष्मीकान्त के दल के लोग जनसाधारण के मनोद्गारों को भड़का रहे थे।

रात को गणपति जब विनोदभवन में पहुँचा तो लोग उसकी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से अथवा माथे पर त्योरी चढ़ा देखने लगे। देवशर्मा समझ गया कि अवस्था बिगड़ रही है। विनोदभवन वैशाली की शिष्ट जनता के मनोभावों का मापदंड था। इस पर भी वह सीधा सामने को देखते हुए चलता गया। वह भवन के सबसे बड़े आगार में पहुँचा तो उसे देखते ही वहाँ के लोग, जो उसी के विषय में वादविवाद कर रहे थे, चुप कर गये। इतने में एक नर्तकी 'तरणी' आई और नाच आरम्भ हो गया। वहाँ कुछ देर ठहर गणपति बाहर निकल आया। वह भवन से बाहर निकल अपने निवास-स्थान को लौटने ही वाला था कि किसी ने पीछे से उसके कन्धे पर कोमलता से हाथ रख दिया और कहा, "आप जा रहे हैं ?"

गणपति ने घूम कर देखा। मृदुला थी। उसने कहा, "हाँ ! क्यों ?"

"आप मेरे आगार में नहीं आइयेगा ?"

"मेरा चित्त आज एक उलझन में फँसा हुआ है।"

"उसी के विषय में कुछ निवेदन है।"

"तो चलो।"

दोनों ऊपर की छत पर चले गये। मृदुला उन्हें अपने आगार में ले गई। उन्हें आसन पर बैठा, स्वयं सम्मुख भूमि पर बैठ गई। वह कहने लगी, "बहन प्रभा के विषय में क्या सोचा है आपने ?"

"अभी कुछ निश्चय नहीं कर सका।"

"मेरी सम्मति है आज रात ही उसे बहन ऊषा और माता जी के साथ वैशाली से बाहर भेज देना चाहिये। कल का दिन बहुत भयंकर होगा।"

"कैसे जाना है मृदुला! तुमने?"

"आपके आने से पूर्व यहाँ बातचीत बहुत आवेश में चल रही थी। लोगों को इतने आवेश में मैंने पहले कभी नहीं देखा।

"मैं अपनी पूर्ण सम्पत्ति विश्वस्त सैनिकों के हाथ अयोध्या भेज रही हूँ। लक्ष्मीकान्त आज संसद् के सदस्यों को खूब खिला-पिला रहे हैं। सुना है कल आप पर अविश्वास का प्रस्ताव चलने वाला है।"

इस समाचार से गणपति और भी गम्भीर विचार में पड़ गया। कुछ देर तक दोनों चुपचाप विचार करते रहे। आखिर शान्ति, मृदुला ने भंग की, "मैं अपना चार वर्ष का वेतन और न्योछावर का धन दो रथों में पचास सैनिकों की संरक्षा में प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में भेज रही हूँ। आप प्रभा आदि को मध्य रात्रि से पूर्व ही भेज दें। मैं चाहती हूँ कि दोनों इकट्ठे न जावें।"

"धन्यवाद, मृदुला देवी!" गणपति ने केवल इतना ही कहा और बिना और कुछ कहे विनोदभवन से बाहर निकल आया।

गणपति जब घर पहुँचा तो, ऊषा और माँ के समझाने से, प्रभा कुछ कुछ मान गई थी। उसने भिक्षुओं के कपड़े उतार अपने रेशमी कपड़े पहन लिए थे। पिता को आया देख प्रभा ने भूमि की ओर देखना आरम्भ कर दिया। देवधर्मा ने उसे चुप बैठे देख कहा, "प्रभा! देखो मैं भली भाँति जानता हूँ कि तुम्हारा बौद्ध धर्म पर विश्वास नहीं है। यह तो तुमने अपनी कठिनाई को आँखों से ओझल करने के लिए भिक्षुणी बनना स्वीकार किया था। मैं कहता हूँ, इस प्रकार तुम्हारी कठिनाई दूर नहीं होगी।"

"क्या कठिनाई है मेरी, पिता जी?" प्रभा ने वैसे ही आँखें नीची किये हुए पूछा।

"तुम्हारा विवाह नहीं हो रहा।"

"विवाह तो हो जाता यदि भगवान् ने रूप दिया होता।"

"या कुछ बुद्धि दी होती। रूप की कमी तो पूरी नहीं हो सकती, परन्तु तुम्हारी बुद्धि की कमी की पूर्ति करने का यत्न करूँगा। यदि तुम मेरी राह पर चलो तो तुम्हारा विवाह बहुत अच्छे वर से हो जावेगा।"

"जैसे ऊषा बहन का हुआ है।" प्रभा ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा।

"ऊषा ने उस मागधी को स्वयं वरा था। हमसे पूछा नहीं था। तुमने भी भानुमित्र को हमसे राय किये बिना वरने का यत्न किया था। भानुमित्र उस मागधी की भाँति धूर्त और असत्यवादी नहीं था। इससे तुम्हारी दुर्दशा वैसी नहीं हुई, जैसी ऊषा की हुई है। अब तुम्हारे लिए मैं यत्न करूँगा। तुम मेरा कहना मान लेना, इसमें तुम्हें सुख मिलेगा।"

प्रभा चुप रही। देवधर्मा ने उसे अपने अनुकूल देख कहा, "अब तुम तीनों तैयार हो जाओ। तुम लोगों को अभी एक घड़ी-भर में अयोध्या के लिए प्रस्थान करना होगा।

सुनीला ने पहले तो जाने का प्रयोजन पूछा तो देवधर्मा ने केवल इतना कहा कि प्रभा का सूर्योदय से पूर्व यहाँ से चला जाना उचित है। इस पर वह लड़कियों को भेज स्वयं वहाँ रहने का हट करने लगी, परन्तु देवधर्मा ने जब कुछ डाँटकर कहा तो तीनों तैयार हो गईं।

मध्यरात्रि से पूर्व एक रथ पाँच सैनिकों के साथ वैशाली के उत्तर द्वार से निकल गंगापुरी की ओर चला।

रात गणपति ने गुप्तचर विभाग के लोगों को नगर के भिन्न-भिन्न स्थानों पर खड़ा कर दिया, जिससे यदि कहीं कुछ भी अनियमित बात देखें तो तुरन्त समाचार दें।

: ६ :

अगले दिन संसद् में बहुत आवेश और क्रोध के लक्षण दिखाई दे रहे थे। गणपति के आने से पूर्व, वे सब सदस्य जो वैशाली में उपस्थित थे, संसद् भवन में पहुँच चुके थे।

जब गणपति आया तो चारों ओर से सदस्य गर्जना करने लगे, "त्याग-

पत्र दे दो, त्याग-पत्र दे दो।"

गणपति सिर ऊँचा किये हुए भवन में आ मंच पर चढ़ अपने आसन पर बैठ गया। लोग अभी भी अपने स्थान पर खड़े हो त्याग-पत्र माँग रहे थे। कुछ काल पर्यन्त गणपति चुपचाप उन लोगों को अपना क्रोध प्रकट करने का अवसर देता रहा। पश्चात् खड़ा हो, हाथ के संकेत से सब को चुप कराने लगा। लोग नियमानुकूल गणपति का वक्तव्य सुनने के लिए अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। गणपति ने कहा :

"वैशाली में धर्म का राज्य है। प्रत्येक विषय पर हमारी धर्म पुस्तक में व्यवस्था दी गई है। यहाँ पर किसी को भी किसी के विरुद्ध न्यायालय में प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार प्राप्त है। न्यायाधीश पूर्णरूप से स्वतन्त्र हैं। वे प्रत्येक विषय की जाँच करते हैं। अभियुक्त की सफ़ाई भी लेते हैं और पश्चात् निर्णय देते हैं। कई सौ वर्ष से किसी न्यायाधीश को अन्याय करते नहीं देखा गया और कभी भी न्यायालय के निर्णय का उल्लंघन, चाहे वह किसी के विरुद्ध हो, नहीं किया गया।

"ऐसी अवस्था में केवल-मात्र हल्ला करने से आप किसी को दोषी सिद्ध नहीं कर सकते। देखिये! यदि गणपति के विरुद्ध आपने कुछ करना है तो उसके लिए नियम है। एक प्रस्ताव संसद् के मन्त्री के पास आना चाहिए। मन्त्री प्रस्ताव भेजने वाले को अपनी माँग सिद्ध करने के लिए अवसर देता है। संसद् में उसे अपनी बात समझानी पड़ती है। गणपति को भी अधिकार प्राप्त है कि उस पर लगाए लाञ्छनों का उत्तर दे। यदि गणपति की बात संसद् को स्वीकार न हो तो गणपति त्याग-पत्र दे देता है। यदि गणपति पर अभियोग लगाने वाले की बात संसद् न माने तो उसे, और गणपति के विरुद्ध निर्णय देने पर गणपति को न्यायालय में जाकर अपना अभियोग उपस्थित करना पड़ता है। यदि न्यायालय अभियोग लगाने वाले सदस्य को झूठा कहे और संसद् ने उसको सत्य माना हो तो संसद् तोड़ दी जाती है और नई संसद् का चुनाव होता है और यदि न्यायालय गणपति को दोषी माने तो न्यायालय उसको दण्ड देता है।

"यह हमारा विधान है। क्या आप इसके विरुद्ध, अर्थात् बिना मेरे पर कोई अभियोग लगाए और बिना मेरा उत्तर सुने मुझे पदच्युत करना चाहते हैं ? आप इस विधान और नियम को भंग न करें अन्यथा वैशाली नाश को प्राप्त होगी।"

इस समय एक सदस्य ने उठकर कहा, "कल वैशाली के गणपति ने एक बौद्ध भिक्षुणी को बलपूर्वक अपने गृह में बन्दी बना लिया था। यह हमारे विधान में दी गई स्वतन्त्रता के विरुद्ध है। प्रत्येक नागरिक को अपना धर्म चुनने का अधिकार है। गणपति ने एक नागरिक के इस अधिकार का हनन कर भारी अपराध किया है। इसलिए हम चाहते हैं कि गणपति अपना पद त्याग दें, जिससे न्यायालय में उन पर अभियोग चलाया जा सके।"

इस प्रस्ताव का समर्थन अनेकों सदस्यों ने उठकर और 'पद त्याग दो' कहकर किया।

इस लाञ्छन का उत्तर गणपति ने दिया। उसने कहा, "मेरी लड़की प्रभा मेरी इच्छा के विरुद्ध भिक्षुणी बन गई थी। जिस भिक्षु ने उसे बिना मुझसे जाने कि मेरी इच्छा से वह गई है अथवा नहीं, दीक्षा दी है, उसने अपराध किया है। मैंने तो उसके अपराध को सुधारने का यत्न किया है।

"आप लोगों को विदित होना चाहिए कि स्त्रियों के विषय में हमारा वैशाली का विधान चुप है। साथ ही हमारे विधान में यह भी लिखा है कि इसका आधार मनु महाराज का धर्म-शास्त्र है ? मनु ने स्त्रियों को पुरुषों के संरक्षण में रखा है। इससे किसी व्यक्ति को, संरक्षक की स्वीकृति के बिना, उससे संरक्षित वस्तु को ले जाना अपराध है न कि उस वस्तु को संरक्षक के संरक्षण में ले लेना।

"मैंने धर्मानुकूल आचरण किया है। एक बात यहाँ और समझ लेने की आवश्यकता है। प्रभा को मैं विहार से पकड़कर नहीं लाया। वह मेरे घर आई थी और मैंने उसे अपनी वस्तु समझ वहाँ रख लिया है। मैंने उसे बौद्ध मत छोड़ने को नहीं कहा। केवल-मात्र मैं उसे अपनी संरक्षा में रखना चाहता हूँ, जिसका मुझे धर्म ने अधिकार दिया है।"

गणपति के वक्तव्य से प्रस्तावक का पक्ष पहले से तो दुर्बल हो गया परन्तु बहुमत अभी भी उसके साथ ही था। इसके पश्चात् लक्ष्मीकान्त ने मत लेने की माँग की। वह समझता था कि यदि कुछ और लोग गणपति के पक्ष में कहने लगे तो उसके रात को विनोद-भवन में खिलाए का प्रभाव लुप्त हो जावेगा। इससे उसने कहा, "इस विषय पर अधिक वादविवाद न कर मत ले लिया जावे।" गणपति इस फन्दे में फँस गया और मतगणना की आज्ञा दे दी। प्रस्ताव के पक्ष में एक सौ पाँच और प्रस्ताव के विरोध में एक सौ मत मिले। अभिप्राय यह हुआ कि पाँच मत से गणपति को अपना पद-त्याग करना पड़ा। इस समय गणपति को समझ आया कि उसने मत जल्दी लेने में भूल कर दी है। पश्चात् नये गणपति का चुनाव हुआ। लक्ष्मीकान्त का नाम बहुत भारी मत से स्वीकार हो गया।

देवधर्मा ने अपने पद की मुहर लक्ष्मीकान्त को देते समय यह कहा, "मैं अपने साथ न्याय किये जाने की माँग न्यायालय में करने जा रहा हूँ।"

: ७ :

देवधर्मा संसद् भवन से बाहर निकला तो उसने देखा कि वैशाली के लोग भारी संख्या में वहाँ और उसके अपने आवास के मध्यवर्ती मैदान में खड़े हैं। देवधर्मा को संसद् से बाहर निकलते देख लोगों ने हल्ला मचाना आरम्भ कर दिया :—

"गणपति को दण्ड दो। गणपति को दण्ड दो।"

लोगों में विद्रोह की भावना देख नगर-पालक, नगर-रक्षकों का एक दल लिए हुए संसद् के बाहर उपस्थित था। देवधर्मा को संसद् भवन से बाहर निकले देख आगे आ उसने पूछा, "क्या आज्ञा है?"

"श्रीमान्!" देवधर्मा ने दुःखित स्वर में कहा, "मैं अब गणपति नहीं रहा। इससे आज्ञा नहीं दे सकता। अब तो एक नागरिक के रूप में सुरक्षा की भिक्षा माँग सकता हूँ।"

नगर-पालक यह सुनकर चकित रह गया। इस पर भी लोगों की

आँखों में खून देख और अपने पर देवधर्मा की कृपाओं का स्मरण कर बोला, "ठीक है, चलिये आपको घर तक पहुँचा दूँ।"

उसने संरक्षकों को आज्ञा दे दी, "श्रीमान् देवधर्मा को सुरक्षापूर्वक उनके घर तक पहुँचा दो और वहाँ उनके भवन की रक्षा करो। और भी रक्षक-दल के लोग आपकी सहायता के लिए वहाँ भेज देता हूँ।"

संरक्षकों ने देवधर्मा को चारों ओर से घेर लिया और भीड़ में से ले जाने लगे। भीड़ बहुत बड़ी थी और लोग संरक्षकों का घेरा तोड़ देने के लिए यत्न कर रहे थे। परन्तु संरक्षकों ने खड्ग नंगे कर लिए और समीप फड़कने वालों को घायल किये बिना नहीं छोड़ते थे। लोगों ने जब देखा कि देवधर्मा को ऐसे दण्ड नहीं दिया जा सकता तो उन्होंने दूर से ईंटें और पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये। इससे संरक्षक घायल होने लगे। देवधर्मा की भी कनपटी पर एक पत्थर लगने से घाव हो गया। इस समय गणपति भवन पर खड़े संरक्षकों ने भीड़ की इस कार्यवाही को देख लिया। उनके नायक ने आज्ञा दी कि कमान ले ईंट-पत्थर फेंकने वालों पर तीरों की बौछार करो। इससे बीसियों एक-एक बौछार से घायल होने लगे। पचास संरक्षकों की एक टुकड़ी ने ईंट-पत्थर फेंकने वालों पर तीर फेंके और दूसरे पचास की टुकड़ी ने उन लोगों पर तीरों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी, जो गणपति भवन के भीतर खड़े देवधर्मा पर आक्रमण कर देने की तैयारी कर रहे थे। इनके तीरों ने भीड़ में भगदड़ मचा दी और घायल-सा हुआ गणपति भवन के चौंतरे पर आकर खड़ा हो गया। वहाँ से संरक्षकों ने उसे भवन के भीतर कर, वनभ को चारों ओर से घेर लिया और तीरों की बौछार से भीड़ को तितर-बितर करने लगे।

इस समय नगर-पालक को, जो अभी भी संसद् भवन के बाहर खड़ा था, लक्ष्मीकान्त की आज्ञा मिली कि सब संरक्षकों को तुरन्त नगर के भीतर चौमुखे के मैदान में एकत्रित कर दिया जावे। नगर-पालक लक्ष्मीकान्त के पास पहुँच बोला, "श्रीमान्! लगभग एक लाख नागरिक देवधर्मा जी का मकान घेरे हुए खड़े हैं। वहाँ और संरक्षकों को सहायतार्थ भेज रहा हूँ। इस कारण ये

एकत्रित नहीं हो सकते।"

इस पर लक्ष्मीकान्त ने कहा, "यह कोई काम नहीं। मैं गणपति के अधिकार से आज्ञा देता हूँ कि सब संरक्षक एकत्रित करो।"

नगर-पालक ने वैसी ही आज्ञा कर दी। परिणाम यह हुआ कि भीड़, जिसमें भगदड़ मच रही थी, एकाएक संरक्षकों को अपने कमान कन्धों पर रखते देख एक क्षण के लिए तो विस्मित हुई परन्तु शीघ्र ही समझ गई कि संरक्षक उनके पक्ष में हो गए हैं और लोगों पर तीर छोड़ने बन्द कर यहाँ से टल रहे हैं। इससे वे भागते-भागते ठहर गए। जब सब संरक्षक एकत्रित हो चुपके से पिछली वीथिका में से नगर के चौमुखे की ओर चले गए तो भीड़ पुनः लौट पड़ी और गणपति भवन पर ईंट-पत्थरों से आक्रमण करने लगी। इस समय कोई कहीं से तेल तथा आग जलाने का सामान ले आया। तुरन्त भवन को आग लगा दी गई।

गणपति भवन प्रायः लकड़ी का बना था। देखते-देखते जलकर भस्म हो गया और यह बात नगर में फैल गई कि देवधर्मा, परिवार सहित, अपने भवन में जलकर भस्म हो गया है।

जिन लोगों ने देवधमा के मकान को आग लगाई थी। उनकी अवस्था ऐसी थी, जैसे सिंह के मुख में नर-रक्त लग जाए। कुछ काल तक तो लोग गणपति भवन को जलता देखते रहे। पश्चात् किसी ने कह दिया कि ब्राह्मणों ने व्यर्थ का पाखण्ड बना रखा है। इन्हें मारकर नगर से भगा दो। परिणाम यह हुआ कि लाखों की भीड़ टुकड़े-टुकड़े हो नगर-भर में फैल गई और वहाँ कहीं भी इक्का-दुक्का ब्राह्मण मिला, उसको अपमानित कर उसका सिर खड्ग द्वारा शरीर से पृथक् कर दिया।

यह काण्ड दिन के तीसरे प्रहर तक चलता रहा। इस समय नगर-पालक और नगर-संरक्षकों को एकत्रित कर लक्ष्मीकान्त यह सन्देश देता रहा कि वह गणपति बन गया है, देवधर्मा ने वैशाली की दुर्दशा कर रखी थी, अयोध्या वालों को, जो हमारे शत्रु हैं, यहाँ बुला हमसे सम्मानित कराया। इन्हीं सब कारणों से जनता ने उसे दण्ड दिया है। उसे अपने

पूर्ण परिवार के साथ वैशाली को अपमानित करने का दण्ड मिला है।

दिन के तीसरे प्रहर जब नगर-पालक चौमुखे के मैदान से अवकाश पा नगर में गया तो ब्राह्मणों और क्षत्रियों के मकानों को जलते देख, उसकी आँखों से क्रोध में रक्त उतर आया। नगर भवन में पहुँच उसने तुरन्त एक दूत के हाथ लक्ष्मीकान्त को नगर की पूर्ण परिस्थिति लिखकर भेजी और आज्ञा माँगी।

वह दूत गणपति के पास पहुँचा या नहीं, कहा नहीं जा सकता, परन्तु वह लौटकर नहीं आया। इतने में नगर भवन के सम्मुख कुछ सेट्ठियों के युवक कुछ ब्राह्मण-स्त्रियों को घेर अपमानित करते दिखाई दिये। यह देख उससे नहीं रहा गया। उसने अपने संरक्षकों को बुला समझाया, "हम लोग लोगों को यह हत्याकाण्ड करते रोकेंगे तो सम्भव है गणपति हमें ऐसा करने से मना करें। यह सब हत्याकाण्ड सेट्ठी लोग और नीच वर्ण के लोग कर रहे हैं। इससे मैं कहता हूँ कि हम लोग क्षत्रिय और ब्राह्मणों की रक्षा, जिनकी संख्या नगर में कम है, करना चाहें तो यह राज्य का पहरावा उतार, नागरिकों के पहरावे में जाकर सुगमता से कर सकते हैं। जो ऐसा करना चाहते हैं, मैं उन्हें आज्ञा देता हूँ कि वे जा सकते हैं और अपने भाइयों की रक्षा कर सकते हैं।"

अन्य क्षत्रिय कुमारों ने भी जब यह अनर्थ होते देखा तो स्वयं ही अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र ले छोटी-छोटी मण्डलियों में निकल पड़े और सायं होते-होते नगर में घमासान मच गई। क्षत्रियों को लड़ने का स्वभाव था और ढंग आता था। इससे सायं समय तक युद्ध का वेग बदल गया।

कुछ शूद्रों ने विनोद-भवन पर भी आक्रमण कर दिया था, परन्तु गणपति की ऐसी इच्छा नहीं थी। इस कारण उन्होंने एक सेना-नायक को इस भवन की रक्षा करने का आदेश दे दिया। भवन के चारों ओर सेना खड़ी हो गई।

: ८ :

मृदुला यह तो आशा कर रही थी कि बौद्ध उपासक गणपति भवन

पर आक्रमण कर प्रभा को बलपूर्वक ले आवेंगे, परन्तु जो कुछ उसने दिन-भर देखा, वह उसकी आशा से बहुत अधिक था।

उसकी दस दासियाँ उसे पल-पल के समाचार लाकर दे रही थीं। जब उसे पता मिला कि गणपति-भवन जलाकर भस्म कर दिया गया है और गणपति परिवार सहित उसमें था, तो उसके मुख से मुस्कराहट निकल गई। वह जानती थी कि देवधर्मा का परिवार तो रात में ही चला गया था और गणपति-भवन से गुप्त मार्ग नगर की प्राचीर से बाहर तक जाता है। वह स्वयं भी अपने को निर्भय पाती थी क्योंकि विनोद-भवन से भी भूमि के नीचे-नीचे से एक गुप्त मार्ग नगर से बाहर जंगल तक जाता था।

अतएव उसने जब सुना कि नगर में युवा सेठियों ने ऊधम मचाना आरम्भ कर दिया है तो उसने विनोद-भवन का फाटक बन्द करवा दिया और सब सैनिकों को, जो उस भवन की रक्षा के लिए वहाँ पर थे, अपने-अपने तीर कमान ले भवन की छत्त पर चढ़, भवन की रक्षा का आदेश दे दिया।

जितनी दासियाँ वहाँ थीं, उन सब को उसने कहा, "डरो नहीं। यदि भवन के नाश करने में विद्रोही सफल हुए तो तुम सब बच सकती हो। यहाँ से एक गुप्त मार्ग बाहर निकलने का है।"

परन्तु ऐसा अवसर नहीं आया। दो प्रहर तक तो छत्तों पर बैठे सैनिक अपने तीरों से भीड़ को दूर रखते रहे। तब तक सैनिक सहायता आ गई और लोग भयभीत हो भाग खड़े हुए। फिर सायंकाल होते-होते क्षत्रिय युवकों ने सेठियों को ढूँढ-ढूँढकर मारना आरम्भ कर दिया।

लक्ष्मीकान्त ने संसद् के सदस्यों को अपने गणपति बनने के उपलक्ष्य में विनोद-भवन में आमन्त्रित किया हुआ था। जो लोग पिछले दिन लक्ष्मीकान्त से खा-पीकर अपना मत उसके पक्ष में दे आये थे, सब उसके घर एकत्रित हो गए और फिर सब मिलकर विनोद-भवन की ओर चल पड़े।

वहाँ सैनिकों की रक्षा में विनोद-भवन को देख, उसने सेना-नायक को उत्साहवर्धक वचन कहे और अपने साथियों सहित विनोद-भवन के चौतरे

पर चढ़ बन्द फाटक को खटखटाने लगा।

मृदुला की एक दासी ने, ऊपर की छत्त पर की उस खिड़की में खड़े हो, जो फाटक के ऊपर थी और जिसमें से चौंतरे पर खड़े लोग दिखाई देते थे, पूछा, "कौन है ?"

"गणपति भीतर आना चाहते हैं।" किसी ने उत्तर दिया।

"क्या प्रयोजन है ?"

"विनोद-भवन में क्या प्रयोजन हो सकता है।"

"आज नगर में पर्याप्त विनोद हो रहा है। उसके लिए यहाँ आने की आवश्यकता नहीं।"

"गणपति आज्ञा देते हैं कि विनोद-भवन खोल दिया जाय।"

"उनसे कह दो कि गणपति की आज्ञा मानना नगर-वधू के कर्तव्यों में नहीं है।"

"परन्तु विनोद-भवन वैशाली-जनपद की सम्पत्ति है। वह कोई व्यक्ति-विशेष अपने पास रख नहीं सकता।"

"देवी ने इसकी रक्षा का भार अपने पर लिया है और वे आज इस समय इसको खोलना सुरक्षित नहीं समझतीं। यदि आप चले नहीं जाएँगे, तो देवी इस भवन की रक्षा करने वाले संरक्षकों को आप लोगों पर तीर चलाने की आज्ञा दे देंगी।"

दासी को इस प्रकार युक्तियुक्त बातें करते देख लक्ष्मीकान्त आग-बबूला हो रहा था। इस कारण उसने ऊँचे स्वर में कहा, "मैं तुम्हें बन्दी करने की आज्ञा देता हूँ।"

"आज्ञा लिखकर दीजिए फिर देखूँगी कि उसका पालन करना आवश्यक भी है या नहीं।"

इस समय कुछ सैनिक, जो सेनापति की आज्ञा से वहाँ खड़े थे और सेट्ठी-पुत्रों की करतूतें सुन-सुनकर क्रोध से लाल-पीले हो रहे थे, यह तकरार सुन हँसने लगे। किसी ने कहा, "चुप रहो मूर्खो! यह गणपति स्वयं हैं।"

"पर हम तो उस स्त्री की बातों पर हँस रहे हैं।"

"उसके सिर पर मौत खेल रही है।" गणपति के एक साथी ने कहा।

"यही तो हँसने की बात है कि एक स्त्री भी सेठियों को खरी-खरी सुना सकती है। मौत से भी नहीं डरती।"

इससे आग-बबूला हो गणपति ने अपने साथियों को कहा, "छोड़ो इसे। अब नई नगर-वधू आवेगी तो आप लोगों को भोज दूँगा।"

यह कहकर लक्ष्मीकान्त चल पड़ा और उसके साथी उसके साथ ही चले गए।

घर पर पहुँच गणपति ने देखा कि सेनापति वहाँ बैठा है। लक्ष्मीकान्त कुछ लज्जित हो पूछने लगा, "क्या है शूरसेन? क्या बात है?"

मध्याह्न काल से मैं इस प्रतीक्षा में था कि नगर में हो रहे हत्या-काण्ड को रोकने के लिए आप सेना बुलाएँगे। आपके आदेश की सायंकाल तक प्रतीक्षा कर आपसे मिलने आया था और यह सुन चकित रह गया कि गणपति विनोद-भवन में गए हैं।"

"अब तो नगर में शान्ति है।" गणपति ने कहा।

"ऐसी शान्ति, जैसी पूर्ण लकड़ी जल जाने पर कोयला बन जाने से उत्पन्न होती है।"

"तो क्या सब वैशाली जल गई है?"

"मेरा निवेदन है कि गणपति अपने भवन की सबसे ऊपर की छत पर चढ़कर देखें तो मेरे कहने का अर्थ समझ सकेंगे।"

"देखो शूरसेन!" गणपति ने बात बदलकर कहा, "इतनी भारी भीड़ के साथ झगड़ा करने से लाभ ही क्या है। यदि उन पर सैनिक छोड़ देता तो मैं समझता हूँ अधिक लोग मारे जाते। मैं बदनाम हो जाता और कुछ लाभ भी न होता।"

"परन्तु, श्रीमान! नगर में अन्याय होता रोकना क्या आपका काम नहीं? आपने देवधर्मा जी की हत्या होने दी और उसको रोकने का यत्न भी नहीं किया। यदि आप दो सौ सैनिकों को बुला भेजते तो एक नेक और बुद्धिमान आदमी की जान बच जाती और वह किसी समय वैशाली के काम

आ सकता था।"

"देवधर्मा के कुकर्म बहुत थे और जनता उसे अपने कुकर्मों का फल देना चाहती थी। जनता भगवान् का स्वरूप है। मैं उसकी इच्छा में बाधक कैसे हो सकता था?"

इस मीमांसा को सुन शूरसेन चकित रह गया। उसने अधिक बात करनी उचित नहीं समझी। उसने समझ लिया कि यह पद के मद में मति-हीन हो रहा है। इससे चुपचाप उठा और हाथ जोड़ नमस्कार कर विदा हो गया।

शूरसेन तो चला गया, परन्तु रात-भर क्षत्रिय युवकों ने सेठियों के धन से भरपूर आगारों को लूटा और फिर आग लगाई। मध्यरात्रि तक तो लक्ष्मीकान्त आनन्द में रहा। जो कुछ हानि उस समय तक वैश्य-समाज की हुई थी, वह गणनातीत थी। परन्तु इस समय के पश्चात् तो सेठियों के मुहल्ले-के-मुहल्ले ही जलने लगे और लोग रोते तथा माथा पीटते हुए गणपति के द्वार के बाहर आ हल्ला करने लगे। इस प्रकार बेघर और बेसामान हुए लोगों की संख्या इतनी हो गई कि लक्ष्मीकान्त का चुपचाप घर में सो रहना असम्भव हो गया। वह घर से बाहर आया तो लोगों को रोते और माथा धुनते देख पूछने लगा, "क्या हुआ है?"

इन लोगों में बहुत से उसके परिचित थे। उन्होंने कहा, "सेना किस लिए रखी है तुमने? क्षत्रियों के पुत्रों ने हमें लूट लिया है और हमारे मकानों को जला डाला है।"

"तुम लोग इतनी भारी संख्या में हो और फिर शूद्रों की संख्या भी तो कुछ कम नहीं है। क्षत्रिय तो आटे में नमक भी नहीं। तुम्हें उनसे मार खाते लज्जा आनी चाहिए। मैं तो यही समझा बैठा था कि तुम लोग क्षत्रिय और ब्राह्मणों को लूट रहे हो।"

एक ने क्रोध में कहा, "ब्राह्मणों को लूटने में क्या मिलता है। पुस्तकें और पत्तल-दूने, रोटी खाने के लिए। पूर्ण नगर के ब्राह्मण लूटने पर एक महाजन के धन के बराबर भी तो नहीं होते।"

एक और ने कहा, "श्रीमान्! क्षत्रिय लड़ना जानते हैं। अकेला भी खड्ग ले किसी सेट्ठी के घर में घुस जाता है तो बाप और सात बेटे दुम दबाकर भाग जाते हैं। अपनी स्त्रियों को भी उसकी दया पर छोड़ जाते हैं।"

इस कथा को सुन लक्ष्मीकान्त का हृदय काँप उठा। उसने तो इससे विपरीत समझा था।

वैशाली की पाँच लाख की जनता में तीन लाख वैश्य थे, एक लाख शूद्र थे और केवल एक लाख ब्राह्मण और क्षत्रिय थे। उसका विचार था कि उसने चार लाख का संगठन कर लिया है और ये चार लाख एक लाख को नगर से भाग जाने पर विवश कर देंगे। उसे अब विदित हुआ कि चार लाख तो केवल भेड़-बकरियाँ हैं।

उसने तुरन्त एक प्रतिहार को सेनापति के पास भेजा कि उसे बुला लाए। एक पल-भर में प्रतिहार लौट आया और उसने कहा, "सेनापति घर पर नहीं हैं।"

इस पर गणपति ने सेनापति के नाम आज्ञा लिखकर भेजी—"नगर में विद्रोह को शान्त करने के लिए सेना का प्रयोग किया जावे और विद्रोह करने वालों को मौत के घाट उतार दिया जावे।"

यह आदेश उपसेनापति को सेना के शिविर में सूर्योदय के समय मिला। उसने उत्तर में लिख भेजा कि सेना-नायकों को नगर में शान्ति स्थापित करने की आज्ञा दे दी गई है। सेनापति रात-भर नगर में शान्ति स्थापित करने में लगे रहे हैं।

अगले दिन मध्याह्न तक नगर में शान्ति हो गई थी। एक चौथाई नगर जलकर राख हो गया था और लगभग एक लाख वैश्य और शूद्र-समाज के लोग बेघर हो राज-मार्गों पर आ पड़े थे। शूरसेन ने बिना गणपति से आज्ञा पाए रात्रि में ही शान्ति का कार्य आरम्भ कर दिया था। विद्रोह और परस्पर की लूटमार तो रात तीसरे प्रहर ही बन्द हो गई थी। परन्तु आग बुझाने का कार्य अगले दिन सायंकाल तक चलता रहा।

गणपति बहुत चिन्ता से सेनापति की खोज करवा रहा था। दिन के

तीसरे प्रहर तक आग बुझाने का कार्य करते-करते, थककर चूर हो, वह राज-मार्ग पर ही एक पत्थर के चौंतरे पर आराम करने बैठा तो सो गया। वहाँ गणपति के प्रतिहारों ने उसे ढूँढ निकाला। वे उसे जगा गणपति के भवन में ले गए। वहाँ लक्ष्मीकान्त नगर के प्रबन्ध में लगा हुआ था। उसने इस प्रबन्ध के सम्बन्ध में सबसे प्रथम आज्ञा यह दी थी कि मुख्य न्यायाधीश को पद से पृथक् कर उसके स्थान पर एक सेट्ठी-पुत्र निर्मलचन्द्र को नियुक्त कर दिया जाए। उसे आज्ञा-पत्र दे मुख्य न्यायाधीश का कार्य करने को कह दिया। इसके पश्चात् नगर-पालक के स्थान पर एक अन्य सेट्ठी युवक को नियुक्त कर दिया। उसे चिन्ता सेनापति की थी। उसको भय था कि कहीं नगर में शान्ति स्थापित करने के पश्चात् वह अपना ही राज्य स्थापित न कर ले। अतएव जब सेनापति उसके सम्मुख उपस्थित हुआ तो गणपति ने पूछा, "सेनापति! रात-भर कहाँ रहे हैं?"

"नगर में विद्रोह शान्त करने में व्यस्त रहा हूँ।"

"इसके लिए तो आपको आज्ञा प्रातःकाल दी गई थी। आप उससे पहले ही अपने-ही-आप यह कार्य करने लगे।"

"एक वैशाली के नागरिक के नाते वैशाली की रक्षा अत्यावश्यक समझ अपना कर्तव्य-पालन करने चला गया था।"

"परन्तु यहाँ आप पर इस बात का अभियोग लगाया जा रहा है कि आप अपने सैनिकों के साथ सेट्ठियों की धन-सम्पत्ति लूटते रहे हैं।"

"यह झूठ है।"

"इसका निर्णय न्यायाधीश करेंगे। अभी आप राज्य के बन्दी हैं।"

शूरसेन को कैद कर, बन्दीगृह में भेज दिया गया और नगर में लक्ष्मीकान्त का राज्य स्थापित हो गया। अब सेट्ठी लोगों को, क्षत्रियों पर क्रोध निकालने का पुनः अवसर मिला। जहाँ कहीं कोई क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण का अच्छा सा मकान दिखाई देता, वहाँ राज्य के संरक्षक चले जाते। उस घर के मालिक को पकड़ बन्दी बना देते और घर पर सेट्ठी लोग अधिकार कर लेते।

बन्दी लोगों को न्यायालयों में उपस्थित किया जाता, परन्तु न्यायाधीश भी प्रायः सेट्ठी लोग हो गये थे। अतः सब बन्दियों को मृत्यु-दंड दे दिया जाता था।

: ६ :

जब अयोध्या में आर्य-बौद्ध झगड़ा लोगों ने राज्य के हस्तक्षेप के बिना ही समाप्त कर लिया तो अवध की नवीन महारानी को पसन्द नहीं आया। अतएव महामात्य को राज्य-प्रासाद में बुलाया गया।

भानुमित्र अपनी नीति की सफलता से प्रसन्न हो प्रज्ञला, राका और अपने पुत्रों के साथ वन-विहार के लिये जाने की तैयारी कर रहा था। प्रज्ञला के लड़के की आयु दो वर्ष की थी और राका के लड़के की एक वर्ष की। वन में अयोध्या से पाँच कोस के अन्तर पर एक स्वच्छ जल की पुष्करिणी थी। वहाँ दो रथों पर तम्बू लगाने के लिए पहले ही भेजे जा चुके थे और तीसरे रथ पर महामात्य अपने परिवार सहित जाने की तैयारी कर रहा था। इस समय उसे महाराज का बुलावा मिला। उसने अपनी दोनों स्त्रियों को यह कह कि वह अभी आता है, वे तैयार रहें, स्वयं राजप्रसाद की ओर चला गया।

महाराज और महारानी पद्मावती उसकी प्रतीक्षा में बैठे थे। महामात्य नमस्कार कर सम्मुख खड़ा हो गया। महाराज ने कहा, "महामात्य बैठो!" और एक रिक्त आसन की ओर संकेत कर दिया।

महामात्य बैठा तो बात महारानी ने आरम्भ कर दी, "सुना है आर्य-बौद्ध झगड़ा समाप्त हो गया है।"

"हाँ, महारानी जी! महाराज के प्रताप से बौद्ध विहार वालों को सुमति आगई।"

"परन्तु, महामात्य! आप पर यह दोषारोपण लगाया जा रहा है कि आपने बौद्ध प्रभु को कैद कर लेने की धमकी दी थी, जिससे डर कर यह बात हो गई।"

"मैंने तो किसी को धमकी नहीं दी, केवल आपके प्रताप से ही भयभीत हो बौद्ध लोगों ने आपकी इच्छा की पूर्ति कर दी।"

"परन्तु हम इससे संतुष्ट नहीं हैं।"

"तो क्या आज्ञा है महाराज की?"

"बौद्ध प्रभु धम्म वत्त को पकड़ कर न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया जावे। उसने भारी अपराध किया है।"

"वह तो महाराज काशी के शास्त्रियों की व्यवस्था के पश्चात् ही किया जा सकेगा।"

"वह व्यवस्था कब तक मिल जावेगी?"

"दो तीन मास लग जाने तो सुगम हैं। कभी-कभी एक व्यवस्था लेने में वर्षों लग जाते हैं।"

"तब तो यह व्यवस्था लेने की बात ही व्यर्थ हो जाती है।"

"तब तक हम प्रथा से कार्य ले सकते हैं। यह प्रथा अब जनता ने बना डाली है। हमें इससे लाभ उठाना चाहिये।"

"हमें इससे सन्तोष नहीं हो रहा।"

"महाराज! इस विकट संसार में प्रत्येक बात प्रत्येक के सन्तोष की कैसे हो सकती है? मुझे आज्ञा दीजिये। सेवक की रानियाँ वन-भ्रमणार्थ जाने को तैयार खड़ी हैं।"

महारानी यह सुन क्रुद्ध हो गई और उसके माथे पर त्योरी चढ़ गई। महाराज ने इसे देख लिया और पूर्व इसके कि वह कुछ कहती, महाराज ने स्वयं पूछ लिया,

"इस भ्रमण से कब लौटेंगी रानियाँ और राजा जी।"

"दो दिन तक वहाँ ठहरने का विचार है।"

इतना कह महामात्य बिना महारानी के कथन की प्रतीक्षा किये उठ, नमस्कार कर बाहर निकल आया।

परन्तु वन-विहार के लिये जाना नहीं बना। महामात्य जब अपने निवास-स्थान पर पहुँचा तो तीन धूरि से लथपथ रथ और साठ के लग-

भग वैशाली के सैनिक द्वार पर खड़े दिखाई दिये। महामात्य ने प्रतिहारों से, जो निवास-गृह के द्वार पर खड़े थे, पूछा, "कौन आया है ?"

"गणपति की लड़कियाँ और उनकी माता जी।"

"तीन रथों में ?"

"नहीं श्रीमान्! दो रथों में तो मृदुला देवी का सामान था।"

"मृदुला देवी का!" महामात्य ने अचम्भे में पूछा और फिर वह भीतर चला गया। प्रभा को सिर मुँडाये खड़े देख उसका हृदय धक-धक करने लगा। परन्तु जब उसने पूर्ण कथा सुनी और मृदुला की दासी से, जो उसके कोश के साथ आई थी, दिये मृदुला के पत्र को पढ़ा, तो तुरन्त अपने मन को दृढ़ कर अपने कर्तव्य पर मनन करने लगा। उसने वन-विहार के लिए जाना स्थगित कर दिया और प्रचला को मृदुला का समान सुरक्षित रखने तथा अतिथियों की आवभगत करने के लिए कह, अपने कार्यालय में चला गया। वहाँ जा उसने गुप्तचरों के मुखिया को, जो वैशाली से समाचार लाया करते थे, बुलाया और उन्हें प्रभा के बौद्ध-भिक्षुणी बन जाने के समाचार को न बताने का कारण पूछा। गुप्तचरों के मुखिया ने कहा, "श्रीमान् जी अयोध्या की बातों में बहुत व्यस्त थे और प्रभा के भिक्षुणी बन जाने को कुछ महत्व की बात नहीं समझा गया।"

"सबसे अन्त में क्या समाचार आया है ?"

"अभी-अभी एक गुप्तचर आया है और अपनी बात वहाँ कार्यालय में लिखवा रहा है।"

"उसे यहाँ बुला लाओ और देखो जो भी समाचार वहाँ से आवे, वह सर्व प्रथम मुझे मिलना चाहिये। कार्यालय में पीछे जावेगा।"

वैशाली से आया गुप्तचर महामात्य के सम्मुख उपस्थित हुआ तो उसने पूछा, "वहाँ से कब चले थे ?"

"कल मध्याह्न के कुछ पीछे।"

"नगर का क्या हाल है ?"

"सेट्ठियों ने विद्रोह कर दिया है। गणपति और उनके परिवार के

लोग गणपति-भवन में जला दिये गए हैं। संसद् ने गणपति पर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दिया और जब वे संसद् से घर की ओर लौट रहे थे तो नगर के विद्रोहियों ने उन्हें घेर लिया। नगर-संरक्षक उनकी रक्षा करते रहे और उन्हें अपने भवन तक ले गये, परन्तु वे घायल हो चुके थे। इस समय संरक्षक भी लोगों के साथ मिल गये और गणपति जी को उनके भवन के भीतर भेज भवन को आग लगा दी।

"इस समय, मैं वहाँ से भेज दिया गया था और बिना रात को सोये पड़ाव पर घोड़े बदलता हुआ यहाँ आ पहुँचा हूँ।"

उसको यह कह कि "वैशाली से आने वाले दूतों को तुरन्त यहाँ भेजो" महामात्य ने उसको भेज दिया। पश्चात् अवध के सेनापति वीरभद्र को बुलाया और पूछा, "वीरभद्र! आठ प्रहर में हम कितनी सेना एकत्रित कर सकते हैं?"

"किस स्थान पर?" सेनापति का प्रश्न था।

"अपनी वैशाली से लगती सीमा पर।"

"अर्थात् गंगा के इस पार?"

"हाँ।"

सेनापति ने कुछ सोच कर उत्तर दिया, "एक लाख के लगभग।"

"और यदि समय दो दिन का मिले तो?"

"तो डेढ़ लाख।"

"सेना के गंगा पार करने के क्या साधन हैं?"

"दस नावों के पुल हमारे पास तैयार रहते हैं, जो यदि हम चाहें तो एक प्रहर में डाल सकते हैं।"

"इनके भोजन और स्थान का प्रबन्ध कैसे होगा?"

"श्रीमान्! सेना का यह प्रबन्ध सब ठीक है। आज्ञा मिलनी चाहिए।"

"तो ठीक है। कुछ काल में आपको आज्ञा मिलेगी। उस आज्ञा पर आप कुछ थोड़े सैनिक गंगा-तट पर भेज वैशाली-मार्ग से एक कोस

ऊपर दस नावों के सेतु डलवा दें। इसके पूर्व गंगाघाट के पार गंगापुरी सैनिक नागरिकों के पहरावे में अभी से भेजने आरम्भ कर दो। जिस समय में एक सहस्र पुल डालने की आज्ञा हो, उसी समय इस तट से संकेत किया जावे, जिससे गंगापुरी के सब लोग और वहाँ पर वैशाली के सैनिक घेरा डाल बन्दी कर लिए जावें। वहाँ से किसी को भी वैशाली न जाने दिया जावे।

"यह कार्य कल रात्रि को होगा। उसी रात सेतु बाँध देने चाहिएँ और ऐसा प्रबन्ध हो कि परसों प्रातःकाल सेना उस पार जाकर डेरे डाल दे। सायंकाल तक डेढ़ लाख से ऊपर सैनिक पार चले जाने चाहिएँ।

"तैयारी आरम्भ कर दो। मैं महाराज की अनुमति लेने जा रहा हूँ।"

सेनापति इस सब का प्रयोजन नहीं समझ सका। एक बात वह समझता था कि जब से भानुमित्र महामात्य बना था, सेना को सुदृढ़ करने का यत्न कर रहा था। इसका अभिप्राय वह मगध-देश पर आक्रमण की तैयारी समझता था। आक्रमण हुआ वैशाली पर, जो अवध का मित्र-राज्य समझा जाता था। इस पर भी वीरभद्र ने तुरन्त सब सैनिक टुकड़ियों को पूर्णरूप से कूच के लिए तैयार रहने की आज्ञा भेज दी।

: १० :

महामात्य, महारानी पद्मावती की जो कथा जानता था, उसके अनुसार महाराज को वैशाली पर आक्रमण करने की स्वीकृति देने की आशा नहीं करता था। महारानी पद्मावती आत्मघात कर लेगी पर वैशाली पर आक्रमण नहीं होने देगी। इस प्रकार विचार कर भानुमित्र ने एक महान् कार्य करने का निश्चय कर लिया। वह सीधा राजमाता के पास पहुँच गया।

सूचना मिलने पर राजमाता ने उसे भीतर बुलाया। मल्लिका बहुत ही साधारण सूती वस्त्र पहने राजमाता के चरणों में बैठी थी। महामात्य को उचित आसन पर बैठा राजमाता ने पूछा :

"बेटा भानुमित्र! कैसे आना हुआ?"

"एक बार माताजी ने राज्य-परिवार की रक्षा का प्रबन्ध करने का भार मुझ पर डाला था।"

"हाँ स्मरण है। मुझे जो कुछ राज्य-प्रसाद में हो रहा है, शुभ प्रतीत नहीं होता।"

"जो अशुभ है, उसको दूर करने का समय आ गया है। परन्तु जब शरीर में गड़े काँटे को निकाला जाता है, तो कुछ समय के लिए पीड़ा बढ़ जाती है। इससे उस पीड़ा को सहन करने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

पश्चात् कुछ काल तक अपने विचारों को व्यवस्थित कर बोला, "वैशाली में सेट्ठियों ने उपद्रव कर दिया है। ब्राह्मण और क्षत्रियों को चूहों की भाँति मार-मारकर बिलों में घुसेड़ा जा रहा है। लक्ष्मीकांत देव-धर्मा को हटा स्वयं गणपति बन बैठा है। इसके लिए हमें वैशाली में पुनः सुव्यवस्था स्थापित करनी है। अन्यथा जो आज वैशाली में हुआ है, वह कल अवध में भी हो सकता है।"

इस समाचार से राजमाता को बहुत दुःख हुआ। वह स्वयं लिच्छवी राजपूतों की लड़की थी और राजपूतों पर यह मुसीबत सुन वह घबरा उठी और बोली, "तो महाराज से वैशाली पर आक्रमण कर देने को कहना चाहिए।"

"परन्तु वे मानेंगे नहीं।"

"क्यों?"

"महारानी पद्मावती इसका विरोध करेंगी।"

"वे क्यों विरोध करेंगी?"

"वे स्वयं वैशाली की एक गणिका की लड़की हैं और लक्ष्मीकांत की ओर से अयोध्या में गुप्तचर का कार्य करने के लिए भेजी गई हैं।"

"यह क्या कहते हो, महामात्य? वे तो हस्तिनापुर के सेठ सुमेर की लड़की हैं।"

"माताजी! यह सब झूठ है। पद्मावती वैशाली की एक गणिका की, जिसका नाम रेखा है, लड़की है। उसे गुप्त रूप में वैशाली की नगर-वधू

बनाने के लिए तैयार किया जा रहा था। लक्ष्मीकांत ने इसे उसकी माँ से पाँच सौ स्वर्ण-मुद्रा मासिक पर खरीदा है।"

राजमाता यह सब-कुछ सुन अवाक् रह गई। भानुमित्र ने कहना जारी रखा, "लक्ष्मीकान्त ने उसे महाराज की अर्धांगिनी बना वैशाली को सुरक्षित कर लिया है। इसकी उपस्थिति में महाराज वैशाली पर आक्रमण की आज्ञा नहीं देंगे।

"वैशाली पर आक्रमण अत्यावश्यक हो गया है। केवल इसलिए नहीं कि वैशाली में क्षत्रिय-ब्राह्मणों पर अत्याचार हो रहा है, प्रत्युत् इस कारण भी कि वहाँ की दुर्व्यवस्था अवध में भी प्रथा बन जाएगी।"

"तो क्या करना चाहिए, भानुमित्र ! बताओ।"

"मेरी सम्मति है कि महाराज को यहाँ बुलाकर वैशाली पर आक्रमण करने की स्वीकृति लिखवा ली जावे। यदि वे कहें कि वे पद्मावती से राय करना चाहते हैं, तो उसे भी यहीं बुला लिया जावे। यदि वे स्वीकृति दे दें तो मैं वचन देता हूँ कि एक सप्ताह में वैशाली में पुनः व्यवस्था स्थापित कर लिच्छवियों का गणराज्य स्थापित कर दूँगा।

"यदि महाराज स्वीकृति न दें तो महाराज और महारानी पद्मावती को आपके आगार में एक सप्ताह के लिए बन्दी कर दिया जावे। बाहर विश्वस्त सैनिक बैठा दिये जावें। आप तब तक के लिए राज्य-कार्य चलायें।"

"बहुत विकट बात बता रहे हो, महामात्य !"

"अपने निरंकुश लड़के को सुधारने के लिए माता यदि कठोर व्यवहार करे, तो वह ठीक ही होता है। आप अयोध्या पर और अपने पूर्वजों पर भारी एहसान करेंगी। देश और मान-मर्यादा के लिए अपने लड़के की थोड़ी-सी असुविधा सहन करनी ही पड़ेगी। एक सप्ताह में वैशाली में शान्ति स्थापित हो जावेगी। तब मैं आपसे निवेदन करूँगा कि रानी पद्मावती पर, सेठ सुमेर पर और अन्य लोगों पर, जो इस धोखा देने में सहायक बने थे, अभियोग चलाया जावे। कोई भी राजा की महारानी धोखा देकर नहीं बन सकती।"

राजमाता महामात्य भानुमित्र की स्पष्टवादिता और दूरदर्शिता पर चकित थी। भानुमित्र का यह कहना कि यदि वैशाली में शान्ति स्थापित न की गई और वहाँ पर योग्य और अधिकारी लोगों को पुनः अधिकार न दिलवाये गये तो अयोध्या में भी विग्रह और विद्रोह आ उपस्थित होगा, सत्य ही प्रतीत होता था। आर्य-बौद्ध झगड़ा अभी-अभी शान्त हुआ था। यदि कहीं यह बढ़ जाता तो राज-परिवार को अपने में लपेट लेता।

इस कारण राजमाता ने दासी को भेज महाराज को बुला भेजा। इस काल में महामात्य ने पचास सैनिक बुलाकर राजमाता के प्रासाद में छिपा दिये।

महाराज आये तो साथ ही महारानी पद्मावती भी आईं। वह जानती थी कि राजमाता महाराज को कभी भी अपने आगार में नहीं बुलातीं। इस कारण इस विलक्षणता ने उसके मन में सन्देह उत्पन्न कर दिया था। उसने महाराज के साथ आने का हठ किया। दोनों महामात्य को वहाँ देख हैरान भी हुए और क्रुद्ध भी। राजमाता ने उन्हें आदर-पूर्वक बैठाकर बात आरम्भ की, "बेटा! वैशाली में सेट्ठियों ने विद्रोह कर राज्य पलट दिया है। देवधर्मा को अपने मकान में, आग लगाकर, भस्म कर दिया है। सहस्रों ब्राह्मणों और क्षत्रियों को मौत के घाट उतार दिया गया है।"

राजमाता इतना कह चुप कर गईं। वे इसका प्रभाव अपने पुत्र और पुत्रवधू पर देखना चाहती थीं। महाराज ने तो केवल यह कहा, "बहुत शोकपूर्ण समाचार है।" इसके विपरीत महारानी पद्मावती ने कहा, "काल-चक्र अपने निश्चित मार्ग पर चल रहा है। इसे कोई रोक नहीं सकता।"

राजमाता ने अपनी बात चालू रखी, "यदि यहाँ यह आर्य-बौद्धों का झगड़ा समाप्त न होता तो वह भी इसी प्रकार का रूप धारण कर सकता था। अब भी यदि वैशाली में छोटे वर्ण वालों की जीत रही तो यहाँ पर भी विप्लव हो जाने की सम्भावना है।"

"इतिहास में विप्लव हुआ करते हैं। इसमें भला कोई क्या कर सकता है?" पद्मावती ने कहा।

महामात्य ने बात को शीघ्र ही निश्चित स्तर पर लाने के लिए बात का सूत्र स्वयं ही पकड़ कर कहा,

"महाराज ! समय की माँग यह है कि अपने पड़ोस में अव्यवस्था न होने दी जाय। इस कारण मेरा प्रस्ताव है कि वैशाली पर आक्रमण कर दिया जावे और वहाँ व्यवस्थित राज्य स्थापित कर दिया जाए।"

इस प्रस्ताव को सुन पद्मावती बोल उठी, "यह नहीं होगा।"

महाराज ने कहा, "महामात्य ! यह प्रस्ताव मन्त्री-मन्डल में उपस्थित होना चाहिये। राजमाता का आगार इसके लिए उपयुक्त स्थान नहीं।"

"राजमाता की वैशाली के लिच्छिवियों में विशेष रुचि है। रहा मन्त्री-मन्डल। मैं पूर्ण मन्त्री-मन्डल का प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ। मन्त्री-मन्डल को भय था कि आप आक्रमण करने का विरोध करेंगे और राजमाता इसके पक्ष में होंगी। इसी कारण आपको यहाँ बुलाया है।"

पद्मावती उठ बैठी और महाराज से बोली, "उठिये महाराज ! अब और अधिक अपमान नहीं सहन किया जा सकता।"

राजमाता समझ गईं कि पद्मावती बहुत चतुर स्त्री है। परन्तु महामात्य उसके उद्देश्यों को बता चुका था, इस कारण डाँट कर बोली, "बैठिये महारानी जी ! इस प्रकार घबरा कर भाग जाने से मुसीबत से छुटकारा नहीं हो सकता। राजा-महाराजों को मननशील होना चाहिये। देखो ! वैशाली में मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु और फिर भतीजे-भान्जे विद्यमान हैं। उन पर अन्याययुक्त व्यवहार हो रहा है। मैं अवध जैसे राज्य की राजमाता होते हुए यदि उनको इस मुसीबत से बचा नहीं सकती, तो धिक्कार है मेरे इस राज्य से सम्बन्ध रखने पर। क्या लाभ है इस राज्य की इतनी बड़ी सेना से ?"

पद्मावती बैठी नहीं। इस समय महाराज भी उठ बैठे और बोले, "माता जी ! युद्ध एक साधारण बात नहीं है। इसे मैं इस अनुभवहीन महामात्य के कहने पर आरम्भ नहीं कर सकता। मुझे स्वयं इस विषय पर कुछ दिन पर्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार करने दें। आप नहीं जानतीं, युद्ध में सहस्रों युवक मारे जाएँगे। उनकी स्त्रियाँ विधवा हो जाएँगी। व्यभिचार

बढ़ेगा और देश का सत्यानाश हो जावेगा।"

"विक्रम!" राजमाता ने उसे जाता देख, भागकर द्वार में खड़े हो, मार्ग रोककर कहा, "देखो मैंने तुमसे आज तक कुछ नहीं माँगा। मेरे भाई-बन्धुओं की रक्षा के लिये वैशाली पर आक्रमण आवश्यक हो गया है। इसकी आज्ञा दे दो।

उत्तर पद्मावती ने दिया, "नहीं! यह नहीं हो सकता।" इतना कह राजमाता को हाथ से धकेल कर एक ओर करने का यत्न किया।

इस समय राजमाता ने क्रोध में कहा, "सेनानायक उद्दग! देखना...।" इस समय अगार में भारी पर्दों के पीछे छिपे हुए दस सैनिक नंगे खड्ग लिये आकर महाराज और महारानी के चारों ओर खड़े हो गए। महाराज का हाथ अपने खड्ग के मुठ्ठे पर चला गया, परन्तु राज माता ने डाँटकर कहा,

"विक्रम! एक तरफ हट जाओ। इस स्त्री ने मेरे से बल-प्रयोग करने का यत्न किया है। तुम इसमें न पड़ो।"

"माता जी!" महाराज ने खड्ग के मुठ्ठे से हाथ उठाते हुए कहा, "यह मेरी विवाहिता है। मैं इसका साथ नहीं छोड़ सकता। साथ ही यह मेरे बेटे की माँ होने वाली है।"

"तब ठीक है।" राजमाता ने बात को शीघ्र समाप्त करते हुए कहा, "उद्दग! इन दोनों को मेरे पिछले आगार में बंद कर दो। इनके स्थान पर, जब तक इस लड़के का उन्माद समाप्त नहीं होता, मैं राज्य करूँगी।"

उद्दग ने हाथ से ताली बजाई, बीस सैनिक और आगार में आ गए। विवश महाराज को अपना खड्ग राजमाता के चरणों में फेंक देना पड़ा। उसे तथा पद्मावती को राजमाता के पिछले आगार में बंद कर ताला लगा दिया गया। उस आगार में प्रकाश तथा वायु के लिये छत्त में एक गवाक्ष था। वहाँ आठों प्रहर के लिए दो प्रहरी बैठा दिए गए।

: ११ :

लक्ष्मीकान्त को गणपति का पद सँभाले आठ दिन हो गए थे। इतने

काल में जो उथल-पुथल वहाँ हुई, वह पिछले सौ वर्षों में भी नहीं हो सकी थी। जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध था, एक भी ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय किसी अधिकारपूर्ण पदवी पर नहीं रहा था। नगर आधा जल चुका था और आग लगने की इक्का-दुक्का घटनाएँ अभी भी होती रहती थीं। क्षत्रिय और ब्राह्मण, जिन्होंने सेट्ठियों का धन लूटा था, नगर छोड़ जंगल में चले गए थे और सैनिक दिन को नौकरी करते थे, अर्थात् अपने अधिकारी-वर्ग का कहना मान ब्राह्मणों को पकड़ते थे, परन्तु रात को सेट्ठियों के घरों में घुस उनको लूटते थे।

इस समय बौद्धों का प्रतिनिधि-मण्डल गणपति से मिलने आया और उसने यह माँग उपस्थिति की कि नगर-वधू की प्रथा मिटा दी जावे तथा मृदुला देवी को नगर से अपमानित कर निकाल दिया जावे।

लक्ष्मीकान्त बौद्धों की माँग को एकदम न नहीं कर सकता था। साथ ही वह जानता था कि विनोद-भवन की-सी संस्था को सेट्ठियों के युवक भी स्थिर रखना चाहेंगे। इस कारण उसने कहा, "इस प्रश्न का निर्णय संसद् ही कर सकती है। मैं वहाँ भी आपके पक्ष का समर्थन करूँगा।"

"संसद् की बैठक कब होगी, श्रीमान्?"

"अभी नगर की अवस्था अव्यवस्थित है। मैं शीघ्र ही सुधार कर संसद् बुलाऊँगा।"

उसी सायँकाल लक्ष्मीकान्त एक विशेष लक्ष्य से विनोद-भवन पहुँचा। उपद्रव फूटने के पश्चात् आज पहला दिन था कि विनोद-भवन खुला था। बहुत से दास-दासियाँ भाग गए थे। इस पर भी भवन के भीतर सफाई तथा प्रबन्ध बहुत अच्छा कर दिया गया था। विनोद-भवन में आने वालों की संख्या कम थी, परन्तु आए हुओं में अधिकतर क्षत्रिय लोग थे। वे अपने पदों से च्युत हो कोई स्थान चाहते थे, जहाँ एकत्रित हो पुनः अपनी परिस्थिति पर विचार कर सकें।

नगरवधू ने भवन खोलने से पूर्व अपने सेवकों के द्वारा यह सूचना नगर के प्रतिष्ठित क्षत्रियों और ब्राह्मणों को भेज दी थी कि विनोद-भवन

राज्याज्ञा से खुल रहा है। भवन में आने वाले शिष्ट लोगों को आमन्त्रित किया जाता है।

जब लोग एकत्रित हुए तो वैशाली की एक सप्ताह में हुई दुर्दशा पर विचार-विनिमय होना आरम्भ हो गया। मृदुला और उसकी सुन्दर दासियाँ उन दर्शकों की आवभगत कर रही थीं। मद्य और माँस से सत्कार हो रहा था।

इस समय एक ने कह दिया, "देवधर्मा के साथ भारी अन्याय हो गया है।"

किसी दूसरे ने कहा, "ब्राह्मण की हत्या वैशाली का सर्वनाश किये बिना नहीं रहेगी।"

एकाएक मृदुला उस आगार में आई और ऊँचे स्थान पर खड़े हो घोषणा करने लगी, "मैं नहीं जानती कि इसके क्या अर्थ हैं। आप लोग इसको अच्छा समझेंगे अथवा बुरा, यह भी मुझे पता नहीं। इस पर भी एक सूचना अभी मिली है। वह मैं आपको सुनाना चाहती हूँ। मेरा एक विश्वस्त सेवक यह समाचार लाया है कि श्री देवधर्मा, भूतपूर्व गणपति, अभी जीवित हैं। वह वैशाली के उत्तर द्वार के बाहर शिव-मन्दिर में देखे गए हैं।"

मृदुला जानती थी कि इस समाचार को सुन उपस्थित लोगों को हर्ष होगा और वे लोग अपनी उदासीनता छोड़ एक उद्देश्य विशेष से विचार करने लगेंगे। ऐसा ही हुआ। लोग मृदुला के चारों ओर एकत्रित हो गये और उससे प्रश्न पूछने लगे। मृदुला ने एक सेवक को उनके सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया।

मृदुला यह कह बाहर चली गई और ऊपर की छत पर अपने आगार में जा पहुँची। वहाँ देवधर्मा चिन्ता-ग्रस्त बैठा था। मृदुला ने बताया, "जब मैंने आपके जीवित होने की घोषणा की तो उपस्थित लोगों के मुख देदीप्यमान हो गए और वे कञ्जन से भाँति-भाँति के प्रश्न पूछ रहे हैं।"

देवधर्मा ने कहा, "ठीक है। अभी आज इतना ही पर्याप्त है। कल और घोषणा करूँगा। अभी नीचे चली जाओ और देखो कि लोग कहाँ तक जाने के लिए तैयार हैं।"

मृदुला पुनः सब सम्मिलित लोगों में आई तो वे सब एक स्थान पर एकत्रित हो शिव-मन्दिर में जाने का विचार कर रहे थे। मृदुला ने उनकी बात समझ पूछा, "किस प्रयोजन से आप जाना चाहते हैं वहाँ?"

"श्री देवधर्मा को ढूँढ निकालने के लिये।"

"जिससे उसे मृत्यु-दण्ड मिल सके?"

"बहुत मृत्यु-दण्ड हो चुके। हम अभी तक चुप थे, केवल इस कारण कि हमें सूझ नहीं पड़ता था कि किसके नेतृत्व में एकत्रित हों। हम उन्हें चोरी-चोरी यहाँ लाएँगे और उनको पुनः गणपति बनाने के लिए सिर-धड़ की बाजी लगा देंगे।"

मृदुला का कहना था, "हाँ! आप लोगों को नगर की अवस्था सुधारने के लिए कुछ तो यत्न करना चाहिए।"

इस समय लक्ष्मीकान्त वहाँ आ गया। उसे लोगों से देवधर्मा के जीवित होने के समाचार मिलने का पता चल गया। इससे उसने हँसी में बात उड़ाते हुए कहा, "मृदुला देवी को स्वप्न आया प्रतीत होता है।"

एक ने कहा, "कञ्चन कहता है।"

"वह झूठा है।"

पश्चात् लक्ष्मीकान्त ने मृदुला देवी से कहा, "मैं देवी से बहुत आवश्यक बात करने आया हूँ।"

"हाँ! कर सकते हैं श्रीमान्।"

"यहाँ सबके सम्मुख नहीं।"

"तो आइये। मैं आपको एकान्त में ले चलती हूँ।"

मृदुला लक्ष्मीकान्त को उस आगार में ले गई, जिसमें एक समय महाप्रभु को ले गई थी। वहाँ सत्कार सहित बैठाकर पूछने लगी, "आज्ञा करिये?"

"बौद्ध-मण्डल के लोग यह माँग उपस्थित कर गए हैं कि विनोद-भवन बन्द कर दिया जावे और मृदुला देवी को अपमानित कर नगर से निकाल दिया जावे।"

"फिर ?"

"मैं भी बौद्ध उपासक हूँ।"

"परन्तु आप गणपति हैं। न्याय के संरक्षक हैं। आपका बौद्ध होना इससे दूसरे स्थान की बात है।"

"जब देवधर्मा गणपति था तो बौद्धों के साथ बहुत बुरा व्यवहार होता था।"

"मुझे इस बात का ज्ञान नहीं।"

"पूर्ण वैशाली जानता है। इसी कारण सब उतावले हो देवधर्मा को मार डालने के लिए एकत्रित हो गए थे। मैं तो समझता हूँ कि वह मर गया है। यदि वह कहीं जीवित है और नगर के लोगों के हाथ चढ़ गया तो वैसा उपद्रव फिर खड़ा हो जावेगा, जैसा उसके पद-त्याग के दिन हुआ था।"

"हो जाए। मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं।"

"परन्तु तुम्हारा अपने साथ तो सम्बन्ध है ?"

"निस्सन्देह, और मैं समझती हूँ मैंने आज तक कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसका दण्ड एक स्त्री को अपमानित किया जाना हो।"

"तुमने महाप्रभु को मद्य पिला अपमानित किया था।"

"इसका क्या प्रमाण है, श्रीमान ? महाप्रभु यहाँ आये तो मुझसे पृथक में बातचीत करने को बोले। मैं उन्हें इसी आगार में ले आई। वे यहाँ का वातावरण देख वासना से भर गए। उन्होंने मद्यपान किया। नर्तकी से वीणा सुनी और फिर मेरी एक दासी से प्रेम-प्रलाप किया। जब मध्यरात्रि का घण्टा बजा तो उन्हें यहाँ से भेज देना आवश्यक था। वे मद्य से सर्वथा अचेत पड़े थे। उन्हें उठवा कर विहार में भेज देने का विचार था, परन्तु यह विचार कर कि उनकी अवस्था को देख उनके साथी क्या कहेंगे, उन्हें

यहाँ विनोद-भवन के बाहर ही लेटा दिया गया। अब श्रीमान् समझ सकते हैं कि इसमें मेरा क्या दोष है ?"

इस समय आगार के बाहर भारी भाग-दौड़ आरम्भ हो गई। मृदुला ने विस्मय में आगार के द्वार की ओर देखा। एक दासी भीतर आने की स्वीकृति माँग रही थी। "हाँ! क्या बात है ?" मृदुला ने पूछा।

दासी ने भीतर आ कहा, "गणपति महाराज को उनके भवन से बुलौवा आया है।"

"कौन आया है ?"

"नाम नहीं बताया। कह रहे हैं नगर को चारों ओर से अवध की सेना ने घेर लिया है।"

मृदुला और लक्ष्मीकान्त दोनों विस्मय में दासी का मुख देखते रह गए। मृदुला का हृदय हर्ष से बल्लियों उछल रहा था और लक्ष्मीकान्त का दिल बैठता जाता था। लक्ष्मीकान्त उठ दीवार का आश्रय ले खड़ा हो गया और कहने लगा,

"यह क्या मूर्खता है ! अयोध्या को हमारे अपने कामों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।" मृदुला भी उठ खड़ी हुई और बोली, "श्रीमान जी ! अब आप जाना चाहेंगे। विनोद से अधिक आवश्यक कार्य आपके लिए बन गया है।"

इतना कह मृदुला जाने लगी तो लक्ष्मीकान्त ने कहा, "रात सेठी-पुत्र इस भवन को आग लगा भस्म कर देना चाहते हैं। मैं तुम्हें यह कहने आया था कि तुमको यदि जीवन प्रिय है तो मध्य-रात्रि से पूर्व यह भवन छोड़ मेरे भवन में आ जाना चाहिए। मैं कहने तो कुछ और भी आया था, परन्तु अब समय नहीं। फिर मिलूँगा।"

"धन्यवाद," कह मृदुला आगार से निकल गई। बाहर बड़े आगार में यह समाचार पहुँच चुका था कि नगर पर अवध की सेना ने आक्रमण कर दिया है।

जब गणपति विनोद-भवन से चला तो लोगों का विचार हो गया कि

यदि देवधर्मा यहाँ होता तो नगर को विनाश से बचाया जा सकता था। मृदुला ने कहा, "हम लोगों को जो वैशाली का भला चाहने वाले हैं, अवध-सेना का नगर में स्वागत करना चाहिए। अवध के महामात्य श्री देवधर्मा के मित्र हैं और अवध की राजमाता लिच्छवियों की सन्तान हैं। इससे उनसे हमें अपनी भलाई की आशा करनी चाहिए।"

सेना को देखते ही वैशाली के नगर-पालक ने नगर के द्वार बन्द करा दिये। अवध की सेना ने भानुमित्र की योजना के अनुसार पिछली रात गंगा के इस पार डेरा डाला था और सायंकाल वैशाली नगर को घेर लिया था।

नगर के भीतर लोगों में उत्साह हीनता बढ़ गई थी और लक्ष्मी-कान्त यह जानता था। एक बात उसकी समझ में नहीं आई। वह थी अवध के महाराज की आक्रमण के लिए स्वीकृति देनी। उसका विचार था कि पद्मावती के होते वैशाली पर आक्रमण नहीं होगा।

सबसे पहला काम जो उसने किया वह लोगों में एक घोषणा करानी थी। उसका विचार था कि इससे लोगों में उत्साह और एकता बढ़ जायगी। घोषणा यह थी, "नागरिको और सैनिको! अवध हमारा प्राचीन शत्रु है। वहाँ राजा प्रजा की इच्छा के विरुद्ध राज्य करता है। इस कारण वह समझ नहीं सकता कि प्रजा की शक्ति कितनी बड़ी है। हम अपने घर के स्वयं स्वामी हैं। हम परस्पर लड़ें अथवा हँसें, दूसरों के विचार तथा हस्तक्षेप का विषय नहीं। हमारे घर में झगड़ा देख, हमारा शत्रु यह समझा है कि हम दुर्बल हो गये हैं और सुगमता से परास्त हो जावेंगे।

"आओ हम इस बात को सिद्ध कर दें कि ये राजा लोग प्रजा के राज्य का बल नहीं जानते। हम घर में पाँच और सौ हो सकते हैं परन्तु शत्रु से एक सौ पाँच ही रहेंगे।"

इस घोषणा का प्रभाव जनता पर कुछ नहीं हुआ। लोग घोषणा सुनते थे और मार्ग-तटों पर पेड़ों से लटकते शरीरों को, जो मृत्यु-दंड पाये हुए अभागों के थे, देख लौट जाते थे। वे मन में यह सोच रहे थे कि अवध की सेना जब नगर में प्रवेश करेगी तो वे श्वेत पताका ले उसका स्वागत करेंगे।

यह घोषणा सैनिकों को भी सुनाई गई। वे नियन्त्रण में बँधे हुए नगर की रक्षा के लिए नगर की प्राचीर पर खड़े थे परन्तु परस्पर पूछते थे, "देव-धर्मा को सेट्टियों ने क्यों मार डाला? जब नगर के संरक्षक उसकी रक्षा कर रहे थे तो उन्हें वहाँ से हटा क्यों दिया गया? उस पाप का दंड ही देने को तो अवध की सेना आई है।"

रात-भर अवध की सेना नगर पर आक्रमण करने के लिए उचित मोर्चे बनाती रही। महामात्य स्वयं सेना में घूम-घूमकर सैनिकों का उत्साह बढ़ा रहा था। वह सैनिकों से कहता था, "मैंने राजमाता को वचन दिया है कि एक सप्ताह में वैशाली को दुष्टों के पंजे से छुड़ा दूँगा।"

प्रातःकाल तक सेना आराम कर ऐसे स्थानों पर जमा हो गई थी, जहाँ से आक्रमण आरम्भ किया जा सकता था।

भानुमित्र की आज्ञा थी कि पहले काठ की प्राचीर को आग लगा दी जावे। पश्चात् उस आग को बुझाने वालों पर तीरों की वर्षा की जावे। इस प्रकार जब प्राचीर जलकर राख हो जाए तो नगर के चारों ओर से आक्रमण कर दिया जावे। जो सेना की टुकड़ी सबसे प्रथम नगर के चौमुखे पर पहुँचेगी, वह भारी पारितोषिक पावेगी।

प्रातःकाल जब सूर्य लाल लाल आँखों से वैशाली पर देखता हुआ उदय हुआ तो प्राचीर पर खड़े सैनिकों ने देखा कि विचित्र प्रकार के यन्त्र नगर के चारों ओर गाड़े गये हैं। उन्होंने सुन रखा था कि यूनान देश में शत्रु की सेना पर आग बरसाने के यन्त्र बनाये गए हैं। इनको भी वही यन्त्र समझ सैनिक डर रहे थे।

इस समय सिर से पाँव तक लोह वस्त्र पहने एक सुभट्ट नगर के उत्तरी द्वार के सम्मुख आया। उसके हाथ में श्वेत पताका थी। द्वार पर पहुँच उसने अपने भाले की मुट्ठी से फाटक पर प्रहार किया, तो ड्योढ़ी पर खड़े सैनिकों ने पूछा,

"क्या है?"

"अवध-महामात्य का दूत हूँ। वैशाली के गणपति से मिलने आया हूँ।"

"ठहरो।" इतना कह सैनिक पीछे हट गये। लगभग दो घड़ी के पश्चात् फाटक में से खिड़की खोली गई और दूत को भीतर कर लिया गया। पश्चात् उसे सैनिकों से घेरकर गणपति-भवन में ले जाया गया। वहाँ पूर्ण मन्त्री-मण्डल उपस्थित था।

उसने आदर सहित नमस्कार कर कहा, "श्री १०८ अवध-महिषी राजमाता के महामात्य श्रीमान् भानुमित्र की आज्ञा से यहाँ एक पत्र लेकर उपस्थित हुआ हूँ। साथ ही उनसे एक मौखिक सन्देश लाया हूँ।"

"तुम्हारे दूत होने का प्रमाण-पत्र तो होगा?" गणपति लक्ष्मीकान्त का प्रश्न था।

"हाँ श्रीमान्!" यह कह दूत ने अपने लोह उत्तरीय के नीचे से एक लपेटा हुआ पत्र गणपति के हाथ पर रख दिया।

पत्र पर अवध-राज्य की मुहर थी। गणपति ने पत्र खोला और ऊँचे-ऊँचे पढ़कर मन्त्री-मण्डल को सुना दिया। लिखा था, "पत्र-वाहक उदयन हमारी सेना का एक वीर सुभट्ट है। हमने इसे वैशाली को अपनी सेना भेजने का कारण समझा दिया है। साथ ही हमने इसे समझा दिया है कि सेना वापस अवध कब और कैसे लौटेगी। इसे यह सब कुछ वैशाली के गणपति को बता देने का आदेश है।

"हम आशा करते हैं कि उचित उत्तर इसी उदयन के हाथ भेज दिया जयगा। यदि यह एक प्रहर के भीतर लौटकर नहीं आया तो जैसे हम राज्य के भीतर आये हैं, वैसे ही नगर में चले आवेंगे और फिर अपनी इच्छा पूर्ण करेंगे।"

नीचे अवध की राजमाता के हस्ताक्षर थे।

इस धमकी की बात सुन लक्ष्मीकान्त का मुख विवर्ण हो गया। यदि कोई दुर्बल आदमी धमकी दे तो सबल को क्रोध आता है और यदि बलवान धमकी दे तो दुर्बल भयभीत होता है। इस समय अवध वालों का हाथ ऊँचा था। समय प्राप्त करना लक्ष्मीकान्त का मुख्य उद्देश्य था। इस कारण उसने पूछा, "इस पर महाराज के हस्ताक्षर नहीं हैं। क्या हम जान सकते

हैं कि वे कहाँ हैं।"

"वे रुग्ण हैं।"

"उनकी नई महारानी को राज्य-भार सँभालना चाहिये था।"

"वे महाराज की बन्दी हैं।"

"क्यों?"

"उन पर और उनके पिता सेठ सुमेर पर झूठ बोलने तथा धोखा देने का दोषारोपण है।"

"क्या झूठ बोला है उन्होंने?" गणपति ने उत्सुकता से पूछा।

"यह मेरे बताने की बात नहीं है।"

"हाँ, तो अवध-महिषी का सन्देश भी दे दो।"

"महारानी जी का कहना है कि वैशाली में श्री लक्ष्मीकान्त ने छल से गणपति का पद पाया है। उसने इस पद का दुरुपयोग किया है। क्षत्रियों पर अन्याय और अत्याचार किये हैं। लिच्छिवियों का, जिन की महारानी जी सन्तान हैं, समूल नाश करने का प्रयत्न श्री लक्ष्मीकान्त ने किया है। एक पड़ोसी राज्य में, जो अवध महाराज का ननिहाल है, इस प्रकार का अन्याययुक्त आचरण होते देख चुप नहीं रहा जा सकता। इस कारण महारानी जी ने यह सेना यहाँ शान्ति स्थापित करने के लिये भेजी है।

"महारानी जी की आज्ञा है कि नगर के द्वार खोल दिये जावें। अवध के महामात्य को सेना-सहित नगर पर अधिकार जमाने का अवसर दिया जावे, जिससे वे यहाँ की संसद् का निष्पक्ष निर्वाचन कराकर, संसद् से निर्वाचित गणपति के हाथ में यहाँ की राज्य-सत्ता सौंप सकें। पश्चात् हमारी आज्ञा है कि महामात्य और अवध की सेना, बिना किसी प्रकार का खर्चा वैशाली से लिये, यहाँ की शान्ति और व्यवस्था यहाँ के नागरिकों को उनकी एक पुत्री की ओर से उपहार के रूप में देकर चली आवे।"

"यदि हम महारानी जी की यह बात न मानें तो?"

"तो उनका आदेश है कि नगर पर आक्रमण कर इसे जीत लिया जावे। श्री लक्ष्मीकान्त तथा उनके साथियों को बन्दी बना लिया जावे। उन

सब लोगों को भी बन्दी बना लिया जावे, जिन्होंने अन्याययुक्त आचरण किया है अथवा चलाया है। पश्चात् व्यवस्था स्थापित होने पर निष्पक्ष न्यायाधीशों के सम्मुख इन बन्दियों पर अभियोग चलाया जावे और उचित दण्ड दिलाया जावे।"

महारानी का यह आदेश दूत ने इतने गम्भीर, स्पष्ट और उच्च स्वर में कहा कि मन्त्री-मण्डल के लोग भयभीत हो एक-दूसरे का मुख देखने लगे। लक्ष्मीकांत ने दूत से कहा,

"तो हमारा उत्तर महारानी जी को दे दो। उन्हें कह देना कि उनका वैशाली में सेना भेजना एक-दूसरे राज्य में अनुचित हस्तक्षेप है। यह वैशाली के लोग सहन नहीं कर सकते।"

"महारानी जी यह हस्तक्षेप करना अपना अधिकार समझती हैं। अधिकारों का आधार उद्देश्यों की श्रेष्ठता पर निर्भर है और योग्यता होने पर अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।"

"अवध-महिषी के उद्देश्य अच्छे हैं या बुरे, इसका हमसे कोई सम्बन्ध नहीं। वैशाली स्वतन्त्र है। उसके कार्यों में कोई दूसरा राज्य हस्तक्षेप नहीं कर सकता।"

"स्वतन्त्रता के अर्थ आत्मघात कर लेने का अधिकार नहीं हो सकता।"

"पर हम आत्मघात नहीं कर रहे।"

"आपने बिना न्यायालयों में अभियोग चलाए सहस्रों लोगों को मृत्यु के घाट उतार दिया है। देखिये श्रीमान्! यदि तो आप अवध-महिषी से लगाये दोषों को ठीक समझते हैं तो अवध की सेना को भीतर आने दीजिए और उनसे अपने कुकर्मों के लिए क्षमा-याचना करिये। और यदि आप अपने को निर्दोष समझते हैं तो मैं जाता हूँ और अवध-महिषी से आपका उत्तर निवेदन कर देता हूँ; परन्तु इतनी चेतावनी मैं दे देना चाहता हूँ कि मेरे जाने से एक प्रहर के भीतर भी यदि आपने नगर-द्वार नहीं खोले तो आज रात तक आपके नगर की काठ की प्राचीर जलकर भस्म हो जावेगी

और आपके नागरिकों को सिर छुपाने को स्थान नहीं मिलेगा।"

"दूत ! तुम जा सकते हो। कह सकते हो कि महारानी का दावा कि उनको हमारे घर के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है, हम नहीं मानते।"

दूत उठा और आदर से नमस्कार कर चल पड़ा। वह नगर-द्वार तक वैशाली के सैनिकों से घेरा हुआ पहुँचा दिया गया और पश्चात् नगर के बाहर कर दिया गया।

: १२ :

दूत के चले जाने के उपरान्त गणपति और मन्त्री-गण परस्पर विचार करने लगे। सब लोग भयभीत थे। सब ने कहा कि अवध की राजमाता ने जब उन सब को क्षमा कर देने का वचन दिया है तो द्वार खोल दिया जावे और निर्वाचनों में पुनः शक्ति प्राप्त करने का यत्न किया जावे।

लक्ष्मीकान्त अकेला युद्ध के पक्ष में था। जब सब मन्त्री अवध से विग्रह के विरुद्ध हो गये तो लक्ष्मीकान्त ने कहा कि इस पत्र का उत्तर दे देना चाहिए। उत्तर लिखकर लक्ष्मीकान्त के हस्ताक्षरों से अवध-महिषी राजमाता को भेज दिया गया। पत्र में लिखा था,

"महारानी जी ने जो आश्वासन मौखिक रूप में अपने दूत के द्वारा भेजे हैं, वे ये हैं :

(१) अवध के महामात्य और अवध-सेना यहाँ व्यवस्था स्थापित कर लौट जावेंगे। (२) महामात्य संसद् का नया निर्वाचन करेंगे। (३) किसी पर किसी प्रकार का अभियोग नहीं चलाया जावेगा।

"इन आश्वासनों पर महामात्य अथवा महारानी जी स्वयं हस्ताक्षर कर भेज दें तो नगर के द्वार खोल दिये जावेंगे और वैशाली की जनता अवध की सेना को मित्र-राष्ट्र की सेना मान स्वागत करेगी।"

पत्र दूत लेकर गया तो लक्ष्मीकान्त ने सेना के नाम यह आज्ञा दे दी कि सब सैनिक अपने सरकारी वस्त्र उतार जनता में मिल जावें और अवध

की सेना के नगर में आ जाने पर चुपचाप नगर के बाहर निकल, सब गंगा-पुर से बीस मील पश्चिम की ओर खेतावाड़ी ग्राम में एकत्रित हो जावें।

यह आज्ञा गुप्त रूप से सब सेना-नायकों के पास भेज दी। साथ ही द्वारपालों को आज्ञा दे दी कि तीसरा प्रहर आरम्भ होते ही नगर के सब द्वार खोल दिये जावें और अवध की सेना को बेरोकटोक भीतर आने दिया जावे।

ये सब आज्ञायें देकर उसने अपने परिवार के सब लोगों को भेष बदल साधारण रथों पर सवार हो, एक-एक दो-दो कर नगर से बाहर निकल जाने की राय दी। वह स्वयं यह प्रबन्ध कर विनोद-भवन जा पहुँचा। वहाँ क्षत्रिय लोगों ने एक भारी मोर्चा बना लिया था।

लक्ष्मीकान्त वहाँ गया तो पहले तो लोगों ने उसे पकड़ बन्दी बनाने का विचार किया, परन्तु देवधर्मा ने आज्ञा दी कि इसे आने दो।

लक्ष्मीकान्त को एक घड़ी-भर द्वार पर प्रतीक्षा करनी पड़ी तो वह आग-बबूला हो गया और द्वारपालों को डाँटने लगा कि उसे रोका क्यों जा रहा है। जब तक भीतर से संकेत नहीं हुआ उसे भीतर नहीं जाने दिया गया।

भीतर पहुँच उसने उस दासी को डाँटा, जो वहाँ पर देखभाल कर रही थी, "क्यों जी! तुम्हारी स्वामिन् का मस्तिष्क इतना बिगड़ गया है कि वैशाली के गणपति को भी यहाँ स्वीकृति लेनी आवश्यक हो गई है?"

"श्रीमान्! यहाँ अब स्वामिन् नहीं है। उनका स्थान इन क्षत्रियों ने ले लिया है।"

"मृदुला देवी यहाँ नहीं है?"

"नहीं, श्रीमान्!"

"कहाँ गई है?"

"मैं नहीं जानती।"

"तुम झूठ बोलती हो।" इतना कह लक्ष्मीकान्त आगे चला गया और उस आगार में जा पहुँचा, जहाँ वह मेहमानों का स्वागत करती थी। वहाँ एक और दासी विद्यमान थी। आगार खाली था, "कहाँ है तुम्हारी स्वामिन्?"

"मैं नहीं जानती, श्रीमान्!"

"मैं यह जानना चाहता हूँ कि किससे पूछने में, कि मैं भीतर आऊँ अथवा न, इतनी देरी लगी है।"

"यहाँ के अध्यक्ष श्री देवधर्मा जी से।"

"देवधर्मा? कहाँ है वह?"

"ऊपर की छत्त पर अपने सहायकों से राय कर रहे हैं।"

"उसे बुलाओ।"

"हमें वहाँ जाने की स्वीकृति नहीं है।"

"तो किसको आज्ञा है? मैं स्वयं जाता हूँ।"

इतना कह लक्ष्मीकान्त ऊपर की छत्त पर जाने के लिए सीढ़ियों की ओर बढ़ा। परन्तु वहाँ दो प्रहरी नंगे खड्ग लिए खड़े दिखाई दिये। लक्ष्मीकान्त ने वहाँ पहुँच कहा, "एक ओर हट जाओ।"

"क्या काम है?"

"मैं मृदुला देवी से मिलना चाहता हूँ।"

"वे ऊपर नहीं हैं।"

"कहाँ हैं?"

"श्री देवधर्मा जानते हैं। उन्होंने अपने सहायकों से इस भवन पर अधिकार कर लिया है।"

"मैं देवधर्मा से मिलूँगा।

"हम सूचना भेज देते हैं।"

"शीघ्र करो। मेरे पास समय कम है।"

एक प्रहरी सीढ़ियों के ऊपर चढ़ चला गया और लक्ष्मीकान्त वहीं खड़ा रह गया।

देवधर्मा स्वयं नीचे आया और लक्ष्मीकान्त को सीढ़ियों के नीचे खड़ा देख बोला, "ओह! गणपति जी हैं? आज्ञा करिये सेवक को, क्यों स्मरण किया है?"

"मैं मृदुला देवी से मिलना चाहता हूँ।"

"वे यहाँ नहीं हैं।"

"कहाँ गई हैं ?"

"नगर की स्त्रियों को एकत्रित करने, जिससे वे लोगों में प्रचार कर सकें कि अवध से युद्ध व्यर्थ है।"

लक्ष्मीकान्त मुस्कराया और बोला, "मैं उसे ही ढूँढ रहा था। तो अब मैं उसे नगर में ढूँढ लूँगा।"

"पर गणपति तो मेरे बन्दी हो गए हैं।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं वैशाली के नागरिकों का प्रतिनिधि हूँ और अवध के सेनापति के पास, यहाँ के क्षत्रियों की सहायता लेकर, जा रहा हूँ।"

लक्ष्मीकान्त फिर मुस्कराया और पूछा, "मुझे क्यों बन्दी किया है ?"

"तुमने मुझे मरवाने का षड्यन्त्र किया था।"

"अवध के महामात्य ने मुझे क्षमा प्रदान कर दी है।"

"पर यहाँ तो राज्य मेरा है। अवध के महामात्य का नहीं।"

इस समय मुख्य द्वार की ओर से मृदुला कुछ अन्य स्त्रियों को साथ लिये हुए आई और दूर से ही बोली, "पिता जी !"

"पिता जी ?" लक्ष्मीकान्त विस्मय में कभी मृदुला का कभी देवधर्मा का मुख देखने लगा। मृदुला ने लक्ष्मीकान्त को वहाँ खड़ा देख कहा, "ओह ! वैशाली के गणपति जी ! शायद यहाँ विनोद के लिए आये हैं ?"

इसके पश्चात् मृदुला ने समाचार सुना दिया, "पिता जी ! नगर के द्वार खुल गए हैं और अवध-सेना चारों ओर से भीतर आ रही है। हम जा रही हैं।"

"कहाँ ?" देवधर्मा ने पूछा।

"अवध के महामात्य की, नगर की स्त्रियों की ओर से, आरती उतारने।"

"और हम भी चल रहे हैं, महामात्य के लिए इस लक्ष्मीकान्त का उपहार लेकर।"

देवधर्मा ने अपने समीप खड़े प्रहरियों को कहा, "इस द्रोही के हाथ-पाँव बाँध लो और ले चलो इसे रथ में डालकर भानुमित्र की भेंट के लिए।"

मृदुला आज बहुत प्रसन्न थी। उसके मन का इष्टदेव, आज पुनः विजयी हो इस नगर में आ रहा था और वह नगर की स्त्रियों की नेत्री बन उसकी आरती उतारने जा रही थी।

नगर के चौमुखे पर देखते-देखते एक मंच बना दिया गया था। ऐसा प्रबन्ध किया गया था कि महामात्य का रथ इस मंच के सम्मुख से गुज़रे और नगर की प्रमुख-प्रमुख स्त्रियाँ गाकर महामात्य की आरती उतारें। सोने के थाल और चाँदी के दीपकों में घी जलाकर पुष्प, पत्र और पुष्प-मालाओं से वैशाली के विजेता का वैशाली के नागरिकों ने स्वागत किया।

अवध के महामात्य ने वैशाली पर अधिकार जमा लिया और उसी दिन यह आज्ञा दे दी कि नगर से बाहर कोई न जा सके। यदि कोई जाने का यत्न करे तो पकड़ लिया जाय। बहुत से सेठी लोग नगर से भाग जाना चाहते थे, परन्तु इस आज्ञा के कारण ऐसा कर नहीं सके।

सैकड़ों की संख्या में सैनिक लोग बाहर जाते पकड़ लिए गये, जिनसे वार्तालाप करने पर पता मिला कि लक्ष्मीकान्त नगर के बाहर सेना एकत्रित कर अवध के लोगों को हानि पहुँचाना चाहता था।

: १२ :

लक्ष्मीकान्त पर राज्य का बहुत-सा कोष ले भाग जाने का भी अभियोग था। इससे उसे बन्दी-गृह में रख दिया गया।

पाँच दिन तक देवधर्मा और भानुमित्र नगर में व्यवस्था स्थापित करने में लगे रहे। पश्चात् संसद् का चुनाव हुआ और नई संसद् ने पुनः देवधर्मा को गणपति निर्वाचित किया।

इस समय भानुमित्र को अवकाश मिला। उसने अवध की सेना के बहुत से अंश को अवध लौट जाने को कह और एक सुदृढ़ परन्तु छोटी-सी

सेना की टुकड़ी को वहीं छोड़, जाने का आयोजन कर दिया।

जाने से पूर्व वह मृदुलादेवी से मिलना चाहता था। जब देवधर्मा ने पूछा, "महामात्य कहाँ जा रहे हैं?"

महामात्य का उत्तर था, "वैशाली के तीर्थ-स्थान विनोद-भवन के दर्शन करने तथा वहाँ की देवी से आशीर्वाद लेने।"

देवधर्मा ने कहा, "संसद् में मेरे गणपति निर्वाचित होने के पश्चात् पहला प्रार्थना-पत्र मृदुला देवी का आया। उसमें नगर-वधू ने शेष तीन मास के काल के लिए अपने पद से मुक्ति माँगी थी। मैंने स्वीकार कर लिया है और नई नगर-वधू के चुनाव की घोषणा कर दी है।"

"तब तो मेरा उसके पास जाना और भी आवश्यक हो गया है।"

भानुमित्र रथ ले विनोद-भवन जा पहुँचा। उसने वहाँ ताला लगा पाया। उसके रक्षकों से पूछने पर पता मिला कि देवी का पता नहीं कि कहाँ गई हैं। कल से वे दिखाई नहीं दीं। जाने से पूर्व उन्होंने अपना सब सामान वहाँ नाचने-गाने वाली लड़कियों को बाँट दिया था। स्वयं सर्वथा साधारण सूती वस्त्र पहन भूषण-रहित हो यहाँ से चली गई हैं।

भानुमित्र ने समझा कि शायद देवी भिक्षुणी हो गई हैं। इससे चिन्तित हो वहाँ से लौट देवधर्मा को सब वृत्तान्त से परिचित कर, मृदुला को ढूँढ निकालने की प्रार्थना की।

इसके पश्चात् भानुमित्र एक वेगगामी रथ पर सवार हो अयोध्या को चला गया। अयोध्या में राजमाता को वैशाली की पूर्ण परिस्थिति से परिचित रखा गया था। इस विजय के पश्चात् भानुमित्र का विचार था कि अयोध्या के महाराज और रानी पद्मावती की समस्या को सुलझाने का यत्न करे। इस कारण अयोध्या में पहुँच वह सीधा राजमहल में पहुँचा। वह अपने घर नहीं गया।।

राजमहल में पहुँच राजमाता को जब वैशाली की व्यवस्था का वर्णन सुना चुका तो भानुमित्र ने महाराज तथा महारानी पद्मावती के विषय में बातचीत आरम्भ कर दी। भानुमित्र ने पूछा, "महारानी जी! महाराज के

कहने में कितना तत्व है कि पद्मावती होने वाले राजकुमार की माता बनने वाली हैं।"

"यह सत्य है।"

"तब तो समस्या अति विकट हो जावेगी। आप महाराज को यहाँ बुलायें।"

दासी गई और महाराज को बुला लाई। पहले की भाँति पद्मावती उसके साथ आई। महामात्य ने हाथ जोड़ प्रणाम किया और कहा, "महाराज के प्रताप से अवध की वैशाली पर विजय हुई है। यह विजय बिना एक भी तीर चलाये मिली है। साथ ही वैशाली की विजय के समय हमें विश्वस्त सूत्र से पता मिला है कि रानी जी सेठ सुमेर की लड़की नहीं हैं। पूर्ण अयोध्या को सेठ सुमेर ने धोखा दिया और वैशाली की गणिका रेखा की लड़की ने अवध की महारानी बन, सबकी आँखों में धूल झोंकी है। महारानी जी तथा इनके नकली पिता सेठ सुमेर पर अवध के न्यायालय में अभियोग चलना चाहिये।"

"हम इस बात की आवश्यकता नहीं समझते। हमने विवाह के समय एक-दूसरे का साथ न छोड़ने का वचन दिया है। ये मेरी धर्मपत्नी हैं। मेरे राज्य में इन पर अभियोग नहीं चल सकता।"

"मैं इस विषय में हठ नहीं कर सकता। अब आप अवध के स्वामी हैं। जो मन में उचित जान पड़े, वही कीजिए।"

इतना कह महामात्य गम्भीर विचार में ग्रस्त राजप्रासाद से निकल अपने भवन में जा पहुँचा। वहाँ एक घटना घटी। भवन के द्वार पर ड्योढ़ी के बीच एक स्त्री केश फैलाये और साधारण श्वेत कपड़े पहने, धूनी रमाये बैठी थी। भानुमित्र ने समीप जा देखा कि वह मृदुला है। इससे प्रसन्न और विस्मित हो उसने पूछा, "मृदुला! क्या हो रहा है यहाँ?"

"मैं अपने इष्टदेव के मन्दिर में धूनी रमाये बैठी हूँ।"

"पर क्या प्रचला तथा राका ने तुम्हें गृह के भीतर नहीं जाने दिया?"

"वे बेचारी तो जानती नहीं कि मैं कौन हूँ और क्यों आई हूँ। इस पर

भी उन्होंने मेरी बहुत मिन्नत की कि मैं भीतर बैठ आपकी प्रतीक्षा करूँ। मैं स्वयं ही यहाँ बैठी हूँ। मन्दिर में देवता न हों, तो कौन मन्दिर में जाएगा।"

"उठो मृदुला देवी! यह व्यर्थ में मेरे आतिथ्य का अपमान कर रही हो। चलो भीतर।"

भानुमित्र ने मृदुला को बाँह से पकड़कर उठाया और उसे भीतर ले गया। भीतर जा भानुमित्र ने प्रचला और राका को बुला कहा, "मृदुला देवी मेरी तीसरी पत्नी होंगी।"

प्रचला और राका हँस पड़ीं। साथ ही भानुमित्र ने एक बात और सुनाई, "मैं महामात्य-पद से त्याग-पत्र दे रहा हूँ और कल प्रातः यहाँ से सब-कुछ ले, विदेश चला जाऊँगा।"

प्रचला और मृदुला प्रसन्नवदन ही रहीं। राका को किञ्चित् दुःख अनुभव हुआ, परन्तु यह उदासीनता अधिक काल तक नहीं रह सकी। वह भी अपनी सहेलियों के साथ जाने की तैयारी करने लगी।

रात भर बहुत वेग से महामात्य के जाने की तैयारी होती रही। अपनी स्त्रियों, अपने माता-पिता और अपने भवन का सब सामान रथों पर लाद काशी जी के लिए रवाना कर दिया। पश्चात् अपने पद से त्याग-पत्र लिख, महाराज की सेवा में उसे देने राजप्रासाद में जा पहुँचा। त्याग-पत्र भीतर भेजा तो महाराज स्वयं उससे, इसका कारण पूछने चले आये। भानुमित्र को भीतर ले जाकर आदर से बैठाया और पूछा, "महामात्य! क्या कारण है कि अयोध्या से जाना हो रहा है?"

"मैं तो, महाराज! पहले भी अवध की चाकरी के लिए उद्यत नहीं था। श्री देवधर्मा जी के कहने पर ही तो कुछ वर्षों के लिए आपकी सेवा की है। मैं समझता हूँ कि किसी स्थान पर बैठकर अध्यापन-कार्य करूँगा।"

पद्मावती जो महाराज के साथ उनकी छाया की भाँति लगी थी, कहने लगी, "मैं समझती हूँ कि महामात्य मेरे कारण जा रहे हैं। मैं एक गणिका

की बेटी हूँ और महामात्य को उसे महारानी बनाना स्वीकार नहीं ।"

भानुमित्र ने इसके उत्तर में केवल मुस्करा दिया । इस पर महाराज ने कहा, "मल्लिका से मेरा विवाह भूल थी । वह मुझसे प्रसन्न नहीं थी । और मुझे उसका प्रेम पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हुआ । अवध की महारानी होते हुए भी उसके हृदय में एक काश्मीर के विद्यार्थी के लिए स्थान बना ही रहा ।"

भानुमित्र ने महाराज की बात का भी कुछ उत्तर नहीं दिया और कहा, "मैं अब जाने की आज्ञा चाहता हूँ ।"

उत्तर महारानी पद्मावती ने दिया, "हमें आपके जाने का भारी शोक है परन्तु अवध में अभी क्रीतदासों की प्रथा चली नहीं ।"

: १४ :

महारानी पद्मावती के लड़का उत्पन्न हुआ और महाराज ने अवध-भर में उत्सव मनाने को घोषणा कर दी ।

राज्य की ओर से लाखों स्वर्ण-मुद्राओं का व्यय किया गया, परन्तु जनता में वह उत्साह तथा उल्लास उत्पन्न नहीं हो सका, जो महाराज के विवाह के समय हुआ था । राजप्रासाद में दीपावली की गई, परन्तु इसके उस भाग में, जिसमें राजमाता रहती थीं, दीपावली नहीं हुई, प्रत्युत् नित्य से अधिक अन्धेरा रहा । इसको अयोध्या की जनता ने और महाराज तथा महारानी पद्मावती ने भी देखा ।

पद्मावती ने महाराज से कहा, "देखा है महाराज ! आपकी माता को भी अपने पौत्र के उत्पन्न होने पर हर्ष नहीं हुआ ।"

"देख रहा हूँ, देवी !"

"तो इसका कारण पूछना चाहिए । यदि आप अपने प्रासाद में भी अपनी आज्ञा नहीं चला सकते तो देश में आपकी कौन सुनेगा ?"

"वे मेरी माँ हैं । मैं उन पर आज्ञा नहीं कर सकता ।"

"वे आपकी प्रजा भी हैं । राजकीय कार्यों में आप महाराज हैं और

देश में सब रहने वाले आपकी प्रजा हैं।"

"देवी! कहती तो ठीक हो परन्तु मैं नहीं जानता कि क्या करूँ?"

"देखिये, मैं आपको बताती हूँ। राजमाता की विकृत मनोवृत्ति मल्लिका के प्रभाव से हुई है। मल्लिका भानुमित्र से प्रेम करती है। इससे उसे तो, जब तक भानुमित्र वापस नहीं आ जाता, सन्तोष नहीं होगा। इससे मैं समझती हूँ कि मल्लिका को राजमाता से पृथक् कर बन्दी कर देना चाहिए।"

"इससे बहुत झगड़ा होगा, देवी!"

"यह वही स्त्री है, जिसने महाराज को आठ दिन तक बन्दी रखा था।"

"तो देवी यह समझती है कि राजमाता ने मल्लिका के कहने से हमें बन्दी किया था?"

"निस्सन्देह। यदि वह राजमाता के कान भरने वाली न होती, तो भानुमित्र का कहना क्यों माना जाता?"

महाराज को मल्लिका पर क्रोध चढ़ आया और दासी के हाथ मल्लिका को बुला भेजा।

राजमाता मल्लिका के साथ आना चाहती थीं परन्तु मल्लिका ने मना कर दिया और कहा, "माता जी! आप निश्चिन्त रहें। मैं आपके सुपुत्र का अनादर नहीं कर सकती।"

राजमाता ने कहा, "बेटी! मुझे तो इससे विपरीत बात की आशंका है। कहीं तुम्हारा अनादर न हो जाय।"

"पति पत्नी का अनादर करे तो वह किसी दूसरे के हस्तक्षेप से बच नहीं सकती। माताजी! आप चिन्ता न करें। कुछ नहीं होगा।"

इस प्रकार राजमाता को सान्त्वना दे वह महाराज और महारानी पद्मावती के सम्मुख जा उपस्थित हुई। वह खड़ी रही और उसे बैठने के लिए नहीं कहा गया। बात महाराज ने की, "मल्लिका!"

"हाँ महाराज!"

"यह हमारे लड़का हुआ है।"

"देख रही हूँ, महाराज!"

"तो तुम्हें इसके जन्म से हर्ष नहीं हुआ?"

"संसार में इतने बालक नित्य उत्पन्न होते हैं, किस-किस के जन्म पर हर्ष मनाया जावे।"

"परन्तु यह तो अवध का भावी महाराज है!"

"मुझे इस पर सन्देह है, महाराज!"

"क्या अभिप्राय है तुम्हारे कहने का?" पद्मावती ने कुछ डाँटकर कहा।

"क्रुद्ध होने की आवश्यकता नहीं, महारानी जी! यह लड़का अवध के लिए अशुभ है।"

"ओ डायन!" पद्मावती ने क्रोध से उबलते हुए कहा।

महाराज ने पद्मावती को हाथ के संकेत से शान्त करते हुए कहा, "मल्लिका! यह ईर्ष्यावश कह रही हो। देखो, तुमने प्रासाद के उस भाग में, जहाँ तुम रहती हो दीपावली भी नहीं की। हम इसको पसन्द नहीं करते।"

"आपका ऐसा समझना स्वाभाविक ही है, महाराज! परन्तु जो कुछ मैं.........।"

पद्मावती ने इससे आगे उसे नहीं कहने दिया। उसकी बात को बीच में ही काटकर बोली, "ओ दुराचारिणी! चुप रहो। तुम चाहे कुछ भी करो, भानुमित्र अवध में आ नहीं सकता और तुम्हारी कामनापूर्ति नहीं कर सकता। ठहरो...।"

मल्लिका आगार से बाहर को जा रही थी। उसका मार्ग, पूर्व आज्ञानुसार, दासियाँ रोक कर खड़ी हो गईं। मल्लिका ने दासियों को धकेल वहाँ से निकल जाना चाहा, परन्तु दासियों ने उसे पकड़ लिया और फिर पद्मावती की आज्ञा से उसके हाथ-पाँव बाँध दिये गए।

महाराज सब-कुछ देखते हुए चुप बैठे रहे। उन्हें इस भविष्यवाणी से

कि राजकुमार अवध-राज्य के लिए अशुभ है, असीम क्रोध चढ़ आया था और उन्हें, जो कुछ पद्मावती कर रही थी, उचित ही प्रतीत होता था।

: १५ :

राजमाता को राजप्रासाद में जो कुछ भी हो रहा था, अशुभ लक्षण वाला प्रतीत हुआ था। अब मल्लिका को बन्दी बना किसी दुर्ग में भेज दिये जाने के समाचार से तो उसका दिल बैठने लगा। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि पद्मावती महाराज और पूर्ण अवध-राज्य को धरातल में लिये जा रही है।

भानुमित्र के अभाव में वह अन्य मन्त्री-वर्ग पर आशा लगाने लगी थी। उसने भद्रसेन और वीरभद्र को बुलाया और उनसे राय की। भद्रसेन का कहना था कि वह और वीरभद्र दोनों भानुमित्र के साथ ही त्याग-पत्र देने वाले थे, परन्तु भानुमित्र के कहने पर अभी तक मन्त्री-पद पर नियुक्त हैं। भानुमित्र का कहना था कि उचित समय पर उनके हाथ में सेना और कोष होने से बहुत लाभ की बात होगी।

"तो मन्त्रीगण, वह उचित समय आ गया है। तुमने सुना होगा कि मल्लिका का कितना अपमान किया गया है और उसे अब लक्ष्मणपुर के दुर्ग में बन्दी बना रखा गया है।"

"यह अन्याय है। परन्तु मैं राजमाता जी से पूछता हूँ कि राज्य में एक अधिकारी होना चाहिए, जिसके नाम पर कार्यवाही की जाए। महाराज को यदि अधिकारी माना जावे तो वे न तो महारानी पद्मावती का विरोध कर सकेंगे और न ही बड़ी महारानी को मुक्त कर सकेंगे। यदि आपको राज्य का अधिकारी माना जावे, तो आपको अपने पुत्र का विरोध करना पड़ेगा और फिर आपका कोई उत्तराधिकारी होना चाहिए। अन्यथा राज्य स्थायी नहीं हो सकेगा। एक तीसरी बात भी है, वह यह कि यहाँ पर गणराज्य स्थापित कर दिया जावे। इसके लिए जनता अभी संगठित नहीं है।"

इस समस्या को सुलझाने के लिए राजमाता ने कहा, "मैं समझती हूँ

कि एक गुप्त दूत, यहाँ की पूर्ण परिस्थिति समझाकर, काशी में भानुमित्र के पास भेज दिया जावे और इस विषय में उसकी सम्मति माँगी जावे।"

वीरभद्र ने भानुमित्र को एक पत्र लिख दूत के हाथ भेज दिया। इसमें मल्लिका के साथ पद्मावती का व्यवहार, महाराज का पद्मावती के अधीन रहकर राज्य-कार्य करना, जनता की राज्य के कार्यों से उदासीनता और फिर राजमाता का आदेश और भद्रसेन की आपत्ति लिखकर भेज दी। साथ ही लिखा, "प्रिय भानुमित्र जी! जब आप यहाँ महामात्य का कार्य करते थे तो कहा करते थे, कि भारत-खण्ड की रक्षा और उसमें रहने वाले समाज की उन्नति के लिए यह राज्य, राजा, गणपति तथा मन्त्री इत्यादि लोग हैं। इनको अपने प्रत्येक कार्य को, उक्त दो उद्देश्यों की पूर्ति का ध्यान रख, निश्चय करना चाहिए। अतएव अब समय है कि आप भी अपना कार्य उक्त उद्देश्यों का ध्यान कर निश्चय करें। आप हमें बतावें कि हम क्या करें।"

इस पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा होने लगी। वीरभद्र की गणना थी कि उत्तर एक सप्ताह तक आवेगा; परन्तु पत्र भेजने के पाँचवें दिन सायंकाल के समय एक अश्वारोही ने अयोध्या में दक्षिण-द्वार से घोड़े को सरपट दौड़ाते हुए प्रवेश किया। सायंकाल के धुँधले प्रकाश में द्वार पर खड़े प्रतिहारों ने उसे नहीं पहचाना। केवल उसकी अतिद्रुत गति से घोड़े को नगर में ले जाने पर आपत्ति की और ऊँचे स्वर में पुकारकर कहा,

"धीरे हो! घोड़ा दौड़ाने वाले।"

अश्वारोही भानुमित्र स्वयं था। वह सीधा वीरभद्र के मकान के सम्मुख पहुँच, घोड़े को एक प्रतिहार के हवाले कर, दूसरे प्रतिहार से बोला "सूचना दो। काशी से कोई आया है।"

प्रतिहार ने भूतपूर्व महामात्य को पहिचान लिया और झुककर नमस्कार की। भानुमित्र ने उत्तर में कहा, "शीघ्र करो।" और फिर बिना प्रतीक्षा किये वीरभद्र के पंथागार में जा पहुँचा। वहाँ वीरभद्र और भद्रसेन अपनी योजनाएँ बना रहे थे। वे सोच रहे थे कि भानुमित्र यदि यह कहेगा तो वे

वह उत्तर देंगे और यदि गणराज्य स्थापित करना हुआ तो लोगों को इस परिवर्तन के लिये इस प्रकार तैयार करना होगा।

जब उन्होंने भानुमित्र को पंथागार में आते देखा तो अवाक्मुख खड़े रह गये। भद्रसेन ने विस्मय में पूछा, "आप? हम तो उत्तर की आशा कर रहे थे।"

भानुमित्र ने दोनों के बीच में बैठते हुए कहा, "तनिक अपने प्रतिहारों को आज्ञा दे दो कि मेरे आने की बात किसी से न करें।"

वीरभद्र पंथागार से बाहर गया और प्रतिहारों को उचित आज्ञा दे भीतर चला आया। भानुमित्र ने कहा, "आपका पत्र मिला और साथ ही वैशाली के गणपति का पत्र भी मिला। दोनों पत्रों को पढ़ मैंने आज रात ही अपनी योजना का प्रथम चरण उठाने का निश्चय कर लिया है। आपका दूत तो अभी काशी में मुझसे उत्तर पाने की प्रतीक्षा में ठहरा हुआ है; परन्तु मैंने स्वयं ही यहाँ आना उचित समझा है।

"अब सुनो, मैं क्या करना चाहता हूँ। राजकुमार राजमाता के संरक्षण में अवध का राजा होगा। महाराज मदात्य रोग के रोगी मान, राज्य-कार्य के अयोग्य माने जावेंगे और मन्त्री-मण्डल में वर्तमान महामात्य 'शरभ' को बन्दी बना, उस पर अयोध्या में राज्य पलटने का अभियोग चलाया जाना चाहिये। महारानी पद्मावती का भी यही परिणाम होगा।

"बताओ तुम लोग ऐसा चाहते हो?"

"हमें तो इसमें आपत्ति नहीं। यदि राजमाता राजकुमार की संरक्षिका बनना स्वीकार करें तो।"

"वह करेंगी। वीरभद्र! पूर्व इसके कि मेरा यहाँ आना विख्यात हो, मैं दो बातें चाहता हूँ। एक तो पाँच सौ सैनिकों को, जो परम विश्वसनीय हों, मेरे साथ कर, मेरे साथ तुम दोनों राजप्रासाद में चलो। पचास सैनिकों को अपने घर में यह आज्ञा दे खड़ा करो कि महामात्य शरभ को आते ही बन्दी बना लें।"

सेनापति के घर के पिछवाड़े में सेना की एक चौकी थी। वहाँ से दो

सेना-नायकों को बुलाकर उचित आज्ञा दे दी गई।

इस काल में भानुमित्र ने हाथ-मुख धो उष्ण दुग्धपान किया। दो दिन से उसने कुछ खाया-पिया नहीं था। इस सब प्रबन्ध में दो घड़ी से अधिक नहीं लगा। वीरभद्र ने राजप्रासाद को जाने से पूर्व महामात्य शरभ को अपने निवास-गृह में एक अत्यावश्यक कार्य के लिये बुलाया। वह आया तो उसे बन्दी बना लिया गया। उसे वीरभद्र ने अपने गृह के एक आगार में बन्द कर बाहर सैनिक बैठा दिये। तत्पश्चात् सैनिकों और भानुमित्र को लेकर राजमहल को प्रस्थान कर दिया।

: १६ :

पद्मावती का शिशु ४० दिन का हो चुका था और वह महाराज को कह रही थी कि एक सार्वजनिक राज्य-सभा करनी चाहिये, जिसमें राजकुमार को ले जाकर प्रजा को दर्शन कराने चाहियें। प्रजा को राजकुमार के चरणों में भेंट चढ़ानी चाहिये।

महाराज का उत्तर था कि राजकुमार तीन मास का होगा तो इसका नामकरण संस्कार किया जावेगा। उसी दिन लोगों को इसके दर्शन होंगे।

"तो महाराज! पुरोहित जी को बुला कर इस शुभ कार्य का मुहूर्त निकलवाना चाहिए।"

महाराज ने महारानी का मुख चूमा और फिर बालक का मुख चूम कर कहा, "कल प्रातःकाल मैं यह निश्चय कर मन्त्री-मण्डल से इस उत्सव की घोषणा करवा दूँगा।"

इस समय एक दासी आई और बोली, "सेनापति वीरभद्र मिलने आ रहे हैं।"

उत्तर पद्मावती ने दिया, "उन्हें कहो प्रातःकाल मिलेंगे।"

परन्तु दासी के कहने के साथ ही वीरभद्र, भद्रसेन और भानुमित्र दस सैनिकों के साथ आगार में घुस आये। महाराज ने इतने लोगों को भीतर आते देख, क्रोध में खड़े हो कहा, "यह क्या पागलपन है?"

भानुमित्र ने सैनिकों को, जिन्होंने खड्ग नंगे कर लिये थे, आज्ञा दी, "इन दोनों को घेर लो।" महाराज पद्मावती के समीप खड़े हो गये और बोले, "मुझे मेरी तलवार ले लेने दो। मैं कायर नहीं हूँ। आप में से किसी से भी द्वन्द्व-युद्ध करने को तैयार हूँ।"

भानुमित्र ने एक दासी को आज्ञा दी, "राजमाता को बुला लाओ।"

महाराज ने पुनः साहस कर कहा, "भानुमित्र! तुम कौन हो जो यहाँ हमारे भवन में घुस आये हो?"

"महाराज! मेरा अधिकार अभी आपको विदित हो जावेगा। तनिक ठहरें।"

पद्मावती महाराज से अधिक समझदार थी। वह चुपचाप अपने बच्चे को गोदी में ले, पहरेदारों को डाँट कर बोली, "हट जाओ।"

परन्तु भानुमित्र ने कहा, "महारानी जी! ऐसे नहीं जा सकतीं। इस समय इस प्रासाद पर मेरा अधिकार है।"

"तुम्हारा अधिकार? तुम्हारी मौत तुम्हारे सिर पर खेल रही प्रतीत होती है।"

इतना कह वह दो सैनिकों के बीच में से निकल जाने का यत्न करने लगी। जैसा कि महारानी का अनुमान था, सैनिक महारानी को पकड़ने में संकोच कर रहे थे। इस पर वीरभद्र ने सेना-नायक को कहा, "इस स्त्री को पकड़ क्यों नहीं लेते?"

इस प्रकार आज्ञा पा दो सैनिकों ने महारानी को भुजाओं से पकड़ लिया। सेना-नायक ने शिशु को पकड़ वीरभद्र की गोदी में दे दिया। महाराज लपक कर पद्मावती को छुड़ाने दौड़े, परन्तु कुछ सैनिकों ने उनको पकड़ कर, उनके हाथों को बाँध दिया।

इस समय राजमाता वहाँ आ पहुँची। वह भानुमित्र को वहाँ देख चकित रह गईं। भानुमित्र ने कहा, "माता जी! मन्त्री-मण्डल का यह निश्चय है कि महाराज किसी कारण उन्माद रोग में ग्रसित हो गये हैं और राज्य करने के अयोग्य हो गये हैं। इनकी चिकित्सा के लिये प्रबन्ध किया

जाएगा। जब तक ये स्वस्थ नहीं हो जाते, तब तक इस शिशु को राजा घोषित किया जाता है और आपको इस शिशु तथा राज्य का संरक्षक बनाया जाता है।"

इतना कहने पर वीरभद्र ने शिशु को राजमाता की गोदी में दे दिया। महाराज ने माँ की ओर विनय के भाव में देखते हुए कहा, "माँ! यह सब व्यर्थ है। इस भानुमित्र के जाल में मत फँस जाना। यह बहुत दुष्ट है।"

राजमाता के, अपने पुत्र की दयनीय अवस्था देख, आँसू टपक पड़े, परन्तु तुरन्त ही अपने हृदय को दृढ़ कर बोली, "बेटा! यही बात तो तुम्हारे मस्तिष्क की विकृत अवस्था प्रकट करती है। राजा प्रजा के हित के लिए अपना जीवन दे डालता है और प्रजा उसे धन, सम्पद् तथा अन्य सुख-सामग्री प्रदान करती है। प्रजा का हित एक स्त्री की कामना पर न्यो-छावर नहीं किया जा सकता।"

"परन्तु माँ! ये कौन हैं जो मेरे कामों पर आलोचना करते हैं?"

"बेटा! देश के विद्वान् और शूरवीर लोग ही तो राजा के कामों की आलोचना करने का अधिकार रखते हैं। देखो तुम्हें रुग्णालय में रखा जावेगा। जब तुमको चिकित्सक निरोग घोषित कर देंगे, तुम्हारा राज्य और राजकुमार तुम्हें लौटा दिये जावेंगे।"

इतना कह राजमाता ने सैनिकों को आज्ञा दे दी, "इन दोनों को ले जाओ और महाराज को राजप्रासाद के एक आगार में और राजकुमार की माँ को बन्दी-गृह में रखा जाए।"

जब सैनिक महाराज तथा पद्मावती को ले गये, तो महारानी ने वहीं बैठ यह घोषणा लिख कर दे दी—

"महाराज मुरहारी विक्रम, मेरा सुपुत्र वैशाली की गणिका रेखा की लड़की पद्मावती के प्रेम में फँस उन्मत्त हो गया है। अतएव उसे चिकित्सकों के अधीन कर दिया है और उसके स्वस्थ होने तक राज्य का भार मैंने अपने ऊपर पर ले लिया है।

"महाराज मुरहारी विक्रम का सुपुत्र, जो अभी ४० दिन का है, भावी

अवध-नरेश घोषित किया जाता है और उसकी संरक्षिका मैं होना स्वीकार करती हूँ।

"राज्य-कार भार को सिर पर लेते समय मैं पं० भानुमित्र को पुनः अवध का महामात्य नियुक्त करती हूँ। भद्रसेन तथा वीरभद्र पूर्ववत अर्थ-मन्त्री और सेनापति रहेंगे।

"पूर्ण प्रजा से मैं अनुरोध करती हूँ कि वह राज्य को अपना सहयोग दे जिससे राज्य प्रजा की अधिक-से-अधिक सेवा कर सके।"

यह घोषणा और पद्मावती के विरुद्ध अभियोग की आज्ञा एक साथ की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रजा में भानुमित्र के चले जाने से जो निराशा और उदासीनता उत्पन्न हो गई थी, वह मिट गई।

: १७ :

लक्ष्मीकान्त से खड़े किये उपद्रव का परिणाम यह हुआ कि आधा वैशाली जलकर भस्म हो गया और सब धनी-मानी सेठ लूट लिये जाने के कारण निर्धन हो गये।

देवधर्मा को वैशाली की पूर्व समृद्धता लाने में बहुत कठिनाई अनुभव होने लगी। धनी-मानी सेठों के लुट-पिट जाने के कारण वैशाली का व्यापार नष्ट हो गया। लूट-पाट करने वाले क्षत्रियों में चरित्रहीनता उत्पन्न होने लगी। ब्राह्मण भी गणराज्य-पद्धति पर संदेह करने लगे।

इस उपद्रव को शान्त हुए छः मास से ऊपर हो चुके थे। इस पर भी राज्य-कोष में इतना भी धन नहीं था कि जले मकानों के मलबे को उठवाया जा सके। सहस्रों परिवार थे, जो मकानों के अभाव में झोंपड़ियाँ डाल कर रहने लगे।

व्यापार के नष्ट हो जाने के कारण निर्धन, जो दस्तकारी से जीविकोपार्जन करते थे, बेकार हो गये। उनसे बनाई वस्तुएँ विदेशों में जानी बन्द हो गई और वे भूखों मरने लगे। सबसे बड़ी बात यह हुई कि संसद् के दो दलों में वैमनस्य दिन-प्रतिदिन विषम होता गया।

इन सब बातों का परिणाम यह होने लगा कि वैशाली में इक्के-दुक्के भूख से मरने लगे। जहाँ पंथागारों में भोजन की व्यवस्था राज्य की ओर से होती थी, वहाँ अब दाम देकर भी अन्न मिलना कठिन हो गया।

इस विकट समस्या को सुलझाने के लिए, जो भी योजना देवधर्मा रखता, उसका सेट्ठी लोग विरोध करते। कारण यह कि घूम-घुमाव कर योजना के लिए धन सेट्ठियों को ही देना पड़ता था। अभिप्राय यह कि सेट्ठियों ने राज्य के पुनर्गठन में सहयोग देना छोड़ दिया।

इस परिस्थिति की पराकाष्ठा तब हुई जब संसद् के सदस्य मन्त्रीवर्ग पर अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित करने का यत्न करने लगे। इस समय देवधर्मा ने भानुमित्र को पत्र लिखा कि यदि वह अवध का महामात्य होता तो वैशाली की वैसी ही सहायता कर सकता जैसी एक समय वैशाली ने अवध की की थी। इस पत्र में भानुमित्र को वैशाली का गणपति-पद स्वीकार करने का आग्रह किया गया था।

सौभाग्य से उसी समय वीरभद्र और भद्रसेन का पत्र भी मिला और भानुमित्र ने अपना पथ-निर्माण करने में देरी नहीं की। राजनीति में वह शीघ्र कार्य करने में विश्वास रखता था।

काशी से चलने से पूर्व उसने दोनों राज्यों में कार्य की पूर्ण योजना बना ली थी। अयोध्या में विप्लव करने में दो दिन लगे और पश्चात् उसने वैशाली की ओर ध्यान दिया।

अयोध्या में सार्वजनिक राज्य-सभा में राजमाता तथा राजकुमार की सत्ता का प्रजा से अनुमोदन करा, वह चुपचाप वैशाली जा पहुँचा। अयोध्या से जाने के पूर्व उसने वीरभद्र को यह आज्ञा दे दी थी कि पचास सहस्र सेना गंगा-तट पर, गंगा पार करने के सेतुओं सहित, तैयार रहनी चाहिये। आज्ञा मिलते ही सेना वैशाली के द्वार पर पहुँच जानी चाहिये।

इस बार गंगापुरी पर अधिकार नहीं किया गया और सामने के तट पर अवध की सेना के एकत्रित होने की सूचना वैशाली की जनता और संसद् के सदस्यों को मिलने दी गई। भानुमित्र बिना किसी से पहचाने गये, गण-

पति भवन, जो नया निर्माण किया गया था, में जा पहुँचा। उसे सबसे प्रथम पहचानने वाली प्रभा ही थी।

प्रभा, मुख से उसका परिचय बोलने ही वाली थी कि भानुमित्र ने मुख पर उँगली रख उसे चुप करा दिया। उस समय भानुमित्र पंथागार में बैठा गणपति की प्रतीक्षा कर रहा था।

गणपति भी जब आया तो विस्मय में खड़ा रह गया। भानुमित्र ने उठकर चरण-स्पर्श किये तो देवधर्मा ने उसे छाती से लगा लिया।

दोनों बैठे तो भानुमित्र ने कहा, "मैं अपना वैशाली में होना तब ही प्रकट कर सकता हूँ, जब हम अपनी योजना पूर्ण रूप में बना लें।

"मुझे आपका पत्र मिला तो मैंने समझा कि मुझे अयोध्या में अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिये सो। मैंने वहाँ विप्लव कर दिया है। महाराज तथा महारानी पद्मावती बन्दी बना लिये गए हैं। राजकुमार राजा घोषित हो गए हैं और उसकी संरक्षिका तथा राज्य की संरक्षिका राजमाता बन गई हैं। इस परिवर्तन से प्रजा अति प्रसन्न है। महारानी पद्मावती पर राज्य को धोखा देने तथा राज्य पलटने का षड्यन्त्र करने का अभियोग चलाया जावेगा। मैं पुनः अवध का महामात्य बना दिया गया हूँ।

"मैंने आपका पत्र पढ़ यह समझा कि वैशाली में गणतन्त्र अपनी आयु समाप्त कर चुका है। ऐसी परिस्थिति में कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति यहाँ का राजा बन जाएगा। इसलिए हमें इस दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। राजमाता लिच्छिवी वंश की हैं। यदि उनको यहाँ की रानी घोषित कर दिया जावे और वैशाली को अवध में सम्मिलित कर दिया जावे, तो इसमें सफलता की कितनी आशा है?"

इस सुझाव को सुन देवधर्मा स्तब्ध रह गया। बहुत देर तक वह इस सुझाव के पक्ष-विपक्ष में सोचता रहा। भानुमित्र इस सुझाव के विरोध में देवधर्मा की युक्ति और कारण सुनना चाहता था। इस कारण चुपचाप देवधर्मा के मुख पर के उतार-चढ़ाव देखता रहा। अन्त में देवधर्मा अपने आसन से उठ खड़ा हुआ और वेग से आगार में इधर-उधर घूमने लगा।

फिर अन्तिम निर्णय कर बोला,

"देखो वत्स! यह योजना श्रेष्ठ है। यह सफल भी हो सकती है, परन्तु इसे चलाने के लिये तुम्हें एकदम वैशाली के बाहर पचास सहस्र सैनिक एकत्रित कर देने होंगे।"

"वे हो जावेंगे। एक दिन में गंगापुरी के सम्मुख गंगा के इस तट पर पचास सहस्र अवध के प्रथम श्रेणी के लड़ाके एकत्रित हो जावेंगे।"

"तो तुम समझते थे कि मैं तुम्हारी योजना को स्वीकार करूँगा?"

"केवल इतना ही नहीं। मेरी योजना है कि शिशु राजकुमार के सज्ञान होने तक मैं हस्तिनापुर से पाटलीपुत्र तक एक राज्य संगठित कर दूँ।"

"तो लो मैं तुम्हारी योजना में अपना भाग पूरा कर देता हूँ। भगवान् जानता है कि मैं यह एकीकरण किसी स्वार्थवश नहीं कर रहा। देश और जाति को महान् बनाने की योजना में ही संकुचित राष्ट्रीयता का बलिदान करने लगा हूँ।"

इतना कह देवधर्मा ने दीवार के साथ लगे घड़ियाल को बजाया तो एक प्रतिहार आज्ञा पाने भीतर चला आया। देवधर्मा ने आज्ञा दे दी, "भवन-संरक्षक को बुलाओ।"

वह आया तो उसे आज्ञा दी गई, "सब मन्त्रियों को तुरन्त गणपति भवन में एकत्रित होने की सूचना भेज दो। दो घड़ी में एक आवश्यक विषय पर विचार होना है।"

भानुमित्र जैसे चुपचाप आया था, वैसे ही वैशाली से बाहर निकल गया।

मन्त्री-मण्डल एकत्रित हुआ तो गणपति ने भानुमित्र से लिखा हुआ एक पत्र सुना दिया—

"मुझे अभी एक दूत द्वारा यह पत्र मिला है। लिखा है—

"पूज्य गणपति जी,

अवध में महाराज मुरहारी विक्रम महारानी पद्मावती से अतिशय प्रेम करने के कारण मन से दुर्बल हो गये हैं। अतएव प्रजा ने उनको राज्य से पृथक् कर, उन्हें चिकित्सा के लिए रुग्णालय में भेज दिया है।

महारानी पद्मावती को अवध राज्य पलटने का षड्यन्त्र करने का अपराधी मान, उन पर अभियोग चलाया जा रहा है।

वर्तमान काल में राजमाता चन्दन अवध का राज्य चला रही हैं। अवध की प्रजा इस परिवर्तन से अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न है। मुझे पुनः अवध का महामात्य नियुक्त कर दिया गया है।

वैशाली में क्षत्रियों की दिन-प्रतिदिन बढ़ रही दुर्दशा को राजमाता देख अत्यन्त दुःख अनुभव कर रही हैं। एक वर्ष हुआ अवध-राज्य ने करोड़ों स्वर्ण-मुद्रा व्यय कर अपनी सेना यहाँ भेज शान्ति स्थापित की थी! उस समय अवध-महिषी यह आशा करती थीं कि वैशाली के सेट्ठी लोग अपने दुष्कर्मों को छोड़, वैशाली-निर्माण में संलग्न हो जावेंगे। एक वर्ष के इतिहास से महिषी इस परिणाम पर पहुँची हैं कि वैशाली में लोग इतने चरित्रहीन हो गये हैं कि यहाँ गणराज्य असम्भव हो गया है।

अतएव अवध-महिषी ने यह निर्णय किया है कि वैशाली की भलाई के लिए इस राज्य को अवध-राज्य में सम्मिलित कर लिया जाए।

इस अर्थ महारानी जी ने मुझे आज्ञा दी है कि अवध की सेना लेकर, वैशाली पर अधिकार कर यहाँ की प्रजा के हित में राज्य की व्यवस्था करूँ।

मैं इस समय गंगापार से पत्र लिख रहा हूँ। प्रातःकाल हमारी सेना गंगापार करेगी। आपको यह पत्र इस कारण लिख रहा हूँ कि आप हमारा विरोध अथवा सहायता, जो भी करना चाहें कर सकें।

पिछले वर्ष हमारी सेना का वैशाली पर अधिकार करने का उद्देश्य नहीं था। इस कारण बिना किसी को सूचना दिये हम यहाँ चले आये थे और वैशाली को विनाश के पथ पर जाने से रोक, उसे बचा, यहाँ से चले गये थे। अब हमारा विचार वैशाली को अवध में सम्मिलित कर लेने का है। इस कारण आपको यथासमय सूचित कर देना उचित समझता हूँ।

इतना निवेदन और कर देना चाहता हूँ, कि महारानी जी जो कुछ कर रही हैं वह लिच्छिवियों के हित का ध्यान रख कर रही हैं। वे भली भाँति जानती हैं कि वैशाली का अवध से युद्ध कर सकना तो दूर रहा अपने-आप

अपनी अवस्था को सुधार सकना भी असम्भव है। अतएव व्यर्थ में नर-रक्त बहाना बुद्धिमत्ता नहीं होगा। शेष वैशाली के द्वार पर पहुँच कर निवेदन करूँगा।

आपका वत्स

भानुमित्र"

इस पत्र को सुन सब भयभीत हो एक-दूसरे का मुख देखने लगे। पत्र के विषय में देवधर्मा से भाँति-भाँति के प्रश्न पूछे गए। देवधर्मा के उत्तर देने के पश्चात् सेनापति ने वक्तव्य दिया,

"वैशाली की सेना की दुर्दशा अपार है। सैनिकों के वस्त्र फट चुके हैं। जूतों के तलों में छिद्र हो चुके हैं और भोजन पर्याप्त न मिलने से प्रायः क्षीण हो चुके हैं। सेना के आधे से अधिक लोग छुट्टी लेकर गये हुए हैं।

"वास्तव में सेना अवध की सेना का विरोध करने में अशक्त है। यदि हम रात को पूरी सेना लेकर गंगा-तट पर पहुँच जावें तो अवध की सेना को एक दिन के लिये अवश्य रोक सकते हैं, परन्तु अधिक काल तक विरोध करना असम्भव है।"

इसके पश्चात् अर्थ-मन्त्री ने बताया, "वैशाली का कोष सेठियों और क्षत्रियों ने लूट लिया था। इस समय तो युद्ध के खर्चे के लिए हमारे पास धन नहीं है।"

इसी प्रकार एक एक कर सब मन्त्रियों ने वैशाली की रक्षा में असमर्थता बताई।

देवधर्मा ने कहा, "मैं वैशाली को कभी भी अवध के साथ सम्मिलित करने के पक्ष में नहीं था; परन्तु वर्तमान परिस्थिति में शायद इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं है। इस पर भी मैं इस प्रश्न को कल संसद् के सम्मुख रख देना चाहता हूँ और बिना संसद् की सम्मति के इस विषय में कुछ नहीं करूँगा।"

अगले दिन संसद् की बैठक दिन के दूसरे प्रहर बुलाई गई। उसमें

भी भानुमित्र का पत्र पढ़कर सुनाया गया। सेट्ठी लोग, जिनकी संख्या संसद् में अधिक थी, युद्ध की सम्भावना से भयभीत हो गए और अयोध्या से सन्धि करने के पक्ष में कहते रहे। क्षत्रियों में कुछ लोग थे, जो युद्ध की घोषणा करने को कहने लगे। दूसरे लोग युद्ध का विरोध करने लगे।

देवधर्मा ने भी तीन घड़ी-भर युद्ध के पक्ष में व्याख्यान दिया, परन्तु सेनापति ने सेना की बुरी अवस्था का वर्णन कर देवधर्मा की उत्तेजनामय वक्तृता का प्रभाव नष्ट कर दिया।

संसद् सायंकाल तक किसी निर्णय तक नहीं पहुँच सकी और इस समय तक अवध की सेना की हरियावल वैशाली नगर की प्राचीर के बाहर पहुँच गई थी। नगर के द्वार बन्द कर लिए गये थे, परन्तु सेना ने लड़ने से इन्कार कर दिया।

अगले दिन प्रातःकाल तक अवध की पचास सहस्र सेना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित वैशाली के बाहर आ टिकी थी।

दिन के एक प्रहर गये पर किसी ने नगर के द्वार खोल दिये और लोगों को भयभीत हो और विस्मय में देखते-देखते अवध की सेनाओं ने नगर पर अधिकार कर लिया।

इस प्रकार वैशाली का गणराज्य डेढ़ सौ वर्ष की आयु भोग समाप्त हो गया।

: १८ :

वैशाली की जनता अपने पर अवध का साम्राज्य स्थापित होता देख विस्मय में खो गई। पचास सहस्र अवध के सैनिक नगर की देख-रेख में लग गए और किसी प्रकार से भी झगड़ा खड़ा करने वालों के मन में आतंक उत्पन्न करने लगे।

उस रात लोगों को लूटमार मचने की आशंका थी, परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। देवधर्मा, भानुमित्र और वीरभद्र नगर में घूम-घूमकर, जहाँ अव्यवस्था का होना रोकते रहे, वहाँ नागरिकों के मन में विश्वास दिलवाते

रहे। अगले दिन नगर का कारोबार, ज्यों-ज्यों जनता में सुरक्षा का विश्वास बैठता गया, आरम्भ होता गया। तीसरे प्रहर तक बाज़ार खुल गए।

इस समय तक विद्युत की भाँति द्रुत गति से कार्य करने वाले भानुमित्र ने वैशाली के शासन का ढाँचा बना लिया था। उसने शासन में एक वैशाली का उपसेनापति अवध की सेना में से नियुक्त कर दिया और सेना अवध और वैशाली के क्षत्रियों की मिश्रित कर दी। वैशाली के क्षत्रियों में से एक युवक को वैशाली का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया, परन्तु वैशाली का मुख्य न्यायाधीश अवध का एक धर्म-शास्त्री बना दिया।

इस प्रकार वैशाली के योग्य व्यक्तियों को शासन में सम्मिलित कर स्वयं पूर्ण राज्य का महामन्त्री होने से वास्तविक शासक बना रहा।

एक सप्ताह के भीतर वैशाली के नगर-सेठों को बुलाकर एक करोड़ स्वर्ण-मुद्रा का पाँच-पाँच वर्ष के लिए ऋण दे दिया। नगर के गिरे मकानों को अवध के धन से निर्माण करवाना आरम्भ कर दिया।

छः मास में वैशाली पुनः व्यापार का केन्द्र बन गई और इस कार्य को चालू करने में लगा हुआ अवध का धन, पुनः अवध के कोष में वापस आने लगा।

जब धन का बाहुल्य होने लगा, लोगों को करने के लिए काम-धन्धा मिलने लगा और जीविकोपार्जन सुगम हो गया तो लोग भूल गए कि वैशाली में गणराज्य-जैसी कोई वस्तु थी।

वैशाली में राज्य-पद्धति बदलने से भानुमित्र को विनोद-भवन-जैसी संस्था की आवश्यकता नहीं रही। उसने इस भवन का नाम कला-भवन रख दिया और यहाँ पर एक चित्र-कला का शिक्षण-केन्द्र बना दिया।

देवधर्मा काशी में जाकर रहने लगा था। प्रभा के विवाह का प्रबन्ध भानुमित्र ने कर दिया। अयोध्या में मैलन्द पण्डित की सम्पत्ति से खुले विद्यालय में एक यासक नाम का न्याय-शास्त्री अध्यापन-कार्य करता था। उसे बहुत धन मिलने की आशा दे प्रभा से विवाह के लिये राजी कर लिया।

यासक बंग प्रदेश के एक अति निर्धन ब्राह्मण का लड़का था। काशी

में न्याय-दर्शन को पढ़ अयोध्या के मैलन्द विद्यालय में कार्य करने लगा था।

भानुमित्र का परिवार पुनः अयोध्या में आ गया था। उसकी तीनों पत्नियाँ बहुत आनन्द में रहती थीं। परस्पर झगड़े में कोई कारण नहीं था। भोजन, वस्त्र और अन्य सुविधाएँ सबको प्राप्त थीं।

प्रचला के विषय में देवधर्मा ने एक रहस्योद्घाटन किया। प्रभा का विवाहोत्सव मनाया जा रहा था और देवधर्मा अपने पूर्ण परिवार सहित अयोध्या आया हुआ था। विवाह के अगले दिन, जब परिवार के सब लोग बैठे भोजन कर रहे थे, तो प्रचला की बात चल पड़ी। भानुमित्र ने गम्भीर भाव बना कहा,

"जब मैं प्रचला देवी से विवाह कर चुका तो महाराज अवध और अवध-महिषी मल्लिका देवी ने मेरे चुनाव की श्रेष्ठता पर आशंका प्रकट की थी। मेरे अन्य मित्र, जिनमें उस समय के प्रायः मन्त्री-वर्ग थे, यह समझते थे कि प्रचला एक गँवार लड़की होने से मेरा जीवन कष्टमय कर देगी। मल्लिका देवी ने तो यहाँ तक कहा था कि इससे विवाह कर मैंने अपने भविष्य पर तुषाराघात कर दिया है।

"मुझे इसकी बुद्धि की प्रखरता पर और इसके माता-पिता के कुलीन होने का विश्वास था। इससे मैं समझता था कि इसमें श्रेष्ठता का बीज उपस्थित है और ठीक भाँति से इसके मन को कला-ज्ञान से सींचने पर, यह बीज प्रस्फुटित हो पड़ेगा और इसको पत्नी के रूप में रखना एक सौभाग्य की बात बन जावेगी। मुझे अपने विचारों में निराशा नहीं हुई। यद्यपि मैं अपनी तीनों रानियों में प्रतियोगिता नहीं करना चाहता, तो भी प्रचला के बचपन का ध्यान करने से, मैं उसे सर्वश्रेष्ठ कह दूँ तो अनुचित नहीं होगा।"

प्रचला के समीप मृदुला बैठी थी। उसने भानुमित्र को उसकी प्रशंसा करते सुन, उसके गले में बाँह डाल, सस्नेह उसका मुख चूम लिया। राका ने भी यह सुना तो अर्थ-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी।

देवधर्मा भानुमित्र का प्रचला के विषय में प्रशंसात्मक वक्तव्य सुन गम्भीर

हो बोला, "वत्स ! भावी बहुत प्रबल है। मृदुला के विषय में तुम जानते ही हो कि वह मेरी लड़की है। आज मैं प्रचला के विषय में भी एक रहस्य की बात बता देना चाहता हूँ।

"लगभग बीस वर्ष की बात है कि वैशाली में एक गांधार कन्या नगरवधू बनी थी। उसका नाम मैं बताना नहीं चाहता। वह इस समय भारत के एक शक्तिशाली राज्य की महिषी है और एक भावी सम्राट की माँ है।"

"वह अभी सोलह-सत्रह वर्ष की थी, जब नगरवधू बना दी गई। नगर भर के धनीमानी उससे प्रेम करने लगे थे और उसे प्रसन्न करने के लिए लाखों स्वर्ण-मुद्रायें न्योछावर करते रहते थे। उसका अपना प्रेम मुझ पर था। यद्यपि मैं उसे उसकी पदवी के उत्तरदायित्वों का ध्यान दिलाता रहता था, परन्तु वह लड़की नहीं मानी और हमारा सम्बन्ध दिन-प्रति-दिन घनिष्ट होता गया।

"उसके गर्भ ठहर गया। मैं उसे वैशाली से बाहर ले जाकर कहीं सुरक्षित स्थान पर रखना चाहता था। इसके लिए एक षड्यन्त्र करना पड़ा। वैशाली के नगर सेठ का एक लड़का, श्रीपति उससे अति प्रेम करता था। उसके साथ भाग जाने की नगरवधू ने योजना बना ली। श्रीपति एक मध्य रात्रि को विनोद भवन के सम्मुख रथ लेकर पहुँच गया। उस दिन उसने विनोद भवन के सेवकों तथा दासियों को सहस्रों स्वर्ण मुद्रा देकर अपना साथी बना लिया था। जब नगरवधू विनोद भवन से निकल रथ पर चढ़ने लगी तो राज्य के सैनिक वहाँ पहुँच गये। नगरवधू उनको देख रथ छोड़ मार्ग के दूसरी ओर पेड़ों के अन्धेरे में भाग कर जा छुपी। वहाँ एक अश्वारोही एक खाली परन्तु जीन से कसा हुआ घोड़ा लिए खड़ा था। नगरवधू उस पर सवार हो अश्वारोही के साथ नगर के बाहर भाग गई और सेठ का लड़का श्रीपति पकड़ लिया गया।

श्रीपति पर अभियोग चलाया गया और विनोद भवन के दास-दासियों ने उसके विरुद्ध साक्षी दी। नगरवधू पर उस समय तक पन्द्रह सहस्र स्वर्ण

मुद्राएँ व्यय हो चुकी थीं। इस कारण श्रीपति को इतना दण्ड कर दिया गया।

"नगरवधू को गंगापुरी के एक साधारण से गृह में एक लड़की उत्पन्न हुई, जिसके पालन-पोषण का भार बौद्ध-विहार के पाचक कालमेघ को दे दिया गया। उसे इस कार्य के लिए पचास स्वर्ण मुद्रा प्रति वर्ष दी जाती थीं। यह लड़की प्रचला है।

"नगरवधू गंगापुरी से काशी चली गई। वहाँ उस पर एक महाराजाधिराज की दृष्टि पड़ गई और उसने उनसे विवाह कर लिया।"

यह रहस्योद्घाटन सुन सब चकित रह गये। प्रचला अपने माता-पिता का परिचय पा प्रसन्नता से देदीप्यमान हो उठी। वह बचपन से ही यह अनुमान लगा रही थी कि उसके माता-पिता कोई बड़े लोग हैं। आज उसकी यह धारणा सत्य सिद्ध हुई।

वह उठ कर अपने आगार में गई और अपनी कंठी, जो उसके बचपन के कपड़ों के साथ कालमेघ ने रखी हुई थी, उठा लाई। उस कंठी के नीचे स्वर्ण की डिबिया खोल, उसमें बनी स्त्री का चित्र दिखा पूछा, "यह मेरी माँ है क्या?"

देवधर्मा ने चित्र देखा और प्रसन्नता से चमकते हुए कहा, "हाँ। चित्रकार ने तुम्हारी माँ की रूपरेखा के साथ न्याय ही किया है।"

भानुमित्र का पिता महीदेव भी वहीं बैठा था। इस कथा को सुन उसने हँसी-हँसी में पूछा, "मित्र! बहुत ही रसिक रहे हो युवा अवस्था में। भाभी सुनीला तो उन दिनों रुष्ट रहती होंगी?"

देवधर्मा हँस पड़ा। उसने कहा, "सुनीला देवी को मेरे जीवन की सब बातें विदित थीं। मन में वे क्या समझती होंगी। मैं नहीं जानता। हाँ प्रत्यक्ष में तो उन्होंने कभी असन्तोष प्रकट नहीं किया, मैं तो समझता हूँ कि उनको मुझसे रुष्ट होने में कभी कारण उत्पन्न ही नहीं हुआ।"

: १६ :

अयोध्या में राज्य पलटने से महारानी मल्लिका को लक्ष्मणपुर के दुर्ग

से छुड़ा कर अयोध्या में ले आया गया। जब उसे पूर्ण परिस्थिति का पता लगा तो वह अपने कर्तव्य पर विचार करने के लिये विवश हो गई।

उसे कारागार में रहने और उससे पूर्व राजमाता के साथ एकान्तवास करने से अपने मन की अवस्था को जानने का बहुत अवसर मिला था। गम्भीर मनन तथा राजमाता की सौम्य सम्मति से वह कुछ परिणामों पर पहुँची थी। उनमें से एक तो यह था कि उसको अवध-नरेश से विवाह भूल प्रतीत होने लगा था। सुख और शान्ति धन-वैभव और पद से भिन्न वस्तु हैं। ऐसा वह मानने लगी थी। साथ ही वह इस परिणाम पर पहुँची थी कि कर्तव्य-पालन करना एक व्यक्ति के अधीन है परन्तु उसका फल प्राप्त करना उसके अधीन नहीं। फिर फल प्राप्ति की गति भी तो अकथनीय है। प्रायः इस जन्म के कार्यों के फलों की प्राप्ति की आशा अगले जन्म में ही करनी ठीक है।

जब वह अयोध्या पहुँची, तो भानुमित्र वैशाली को अयोध्या में सम्मिलित कर चुका था। भानुमित्र की, इस प्रकार एक के पश्चात् दूसरी सफलता को देख, उसे भानुमित्र की श्रेष्ठता का भान होने लगा था। इससे उसे भानुमित्र को छोटा मान उससे विवाह न करने पर शोक अनुभव होने लगा था। उसने पीतल को सोना मान ग्रहण किया था। उसने सीपी में पानी की बूँद को मोती माना था। इस भूल के कारण उसे आत्म-ग्लानि हो उठी थी। वह अपने भविष्य के विषय में गम्भीरतापूर्वक सोचने लगी।

अयोध्या में पहुँच वह राजमाता के पास पहुँची तो राजमाता ने उसकी पीठ पर हाथ फेर आशीर्वाद दिया और कहा, "बेटी! मुझे अपने पुत्र के तुम्हारे प्रति व्यवहार पर बहुत लज्जा अनुभव हो रही है। परन्तु इसे टालने की शक्ति किसी में नहीं थी। हम तुम तो क्या गिनती रखती हैं, भानुमित्र जैसा चतुर सचिव भी इस विपदा को टाल नहीं सका। अब जो कुछ है, हमें उस पर ही सन्तोष करना चाहिए। यह बालक है और यह राज्य है। ये दो सूत्र हैं, जिन्हें तुम पकड़कर, अपने कर्तव्य में संलग्न रह सकती हो।"

"पर माता जी!" मल्लिका ने आँखों में आँसू भरते हुए कहा, "इस

सब का क्या प्रयोजन है ? मेरा महाराज से विवाह भूल थी, इससे अवध महारानी बनना भूल हुई। इस भूल को, अब क्यों चिरन्तन करती जाऊँ, इस बहती बालू को क्यों बटोरने का यत्न करूँ, यह जन्म तो गया, अब आगे की सुध क्यों न लूँ ?''

''देखो बेटी ! यह कहना कठिन है कि इस संसार में हमारा जन्म क्यों हुआ है। इतना तो तुम समझ ही सकती हो कि संसार में हमारा आना और यहाँ से हमारा जाना हमारे अपने बस की बात नहीं है। हमें यहाँ एक अवधि तक रहना है और इसकी ऊँची-नीची तरंगों पर तैरना है। यदि यह है तो फिर घबरा कर इससे भाग जाने में, अथवा इसकी दुष्करता को देख आँखें मूँद लेने से तो काम नहीं बन सकता। हमें अपने पथ का निर्माण करना है। भूल हुई है तो उसे यथा विधि सुधारने का यत्न करना है।

''पद्मावती का प्रभाव महाराज पर इतना रहा था कि वह उसके अधीन कठपुतली की भाँति कार्य करने लगा था। दुर्भाग्य यह था कि पद्मा दुष्टा और मूर्खा था। इससे अपने प्रभाव से वह कोई शुभ कार्य कराने की न तो इच्छा करती थी न ही यत्न। वह अपने मन से स्वार्थ सिद्धि के पीछे लगी थी परन्तु मूर्ख होने से वह अपने स्वार्थ को भी समझ नहीं सकी।

''अब महाराज अमितपुर के दुर्ग में हैं। वहाँ पर उनके मनोरञ्जन और मानसिक विकास के लिए कई संगीत, नृत्य, चित्रादि कलाओं के विज्ञ कलाकारों तथा ज्ञान-ध्यान के ज्ञाता विद्वानों का समारोह कर दिया है। भानुमित्र का विचार है कि एक वर्ष में वह स्वस्थ चित्त हो जावेंगे। तब तक हमें यहाँ का कार्य चलाना चाहिए।''

मल्लिका से भानुमित्र की भेंट हुई तो वह उसे देख भीतर-ही-भीतर क्षुब्ध हो उठी। उसकी आँखों से टपटप आँसू बहने लगे। भानुमित्र उसके दुःख को अनुभव करता था। इससे उसे सांत्वना देने के लिए बोला, ''देवी ! संसार तो शतरञ्ज का खेल है। कोई हारता है और कोई जीतता है। फिर कई बार हारने वाले जीतने लगते हैं और जीते हुए हार जाते हैं। इससे मेरा आग्रह है कि खिलाड़ी की भाँति निर्विकार और निर्लेप होकर ही यहाँ

रहना चाहिए।"

"परन्तु मित्र! मैं तो यह समझने लगी हूँ कि यह जीवन विफल हो गया है। इससे चिपटा रहना एक कुत्ते का हड्डी चूसने की भाँति ही हो गया है।"

मल्लिका के इस निराशा भरे वाक्य को सुन भानुमित्र का मन पसीज उठा। वह वास्तव में उससे प्रेम करता था और उसे दुःखी देख स्वयं दुःख अनुभव करने लगा था। उसे एक बात सूझी और उसने मन में एक योजना बना डाली। दो क्षण तक सोच उसने कहा, "महारानी जी को सुखी और प्रसन्न रखने के लिए ही मैंने यह सब-कुछ किया है। यदि वे मुझे आज्ञा दें तो मैं अपनी योजना की अन्तिम कड़ी भी पूर्ण कर दूँ। महारानी जी को अमितपुर में जाकर रहना चाहिए और महाराज से पुनः सम्बन्ध उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिए। छोटी महारानी की अनुपस्थिति में महाराज को पुनः ठीक मार्ग पर लाना कठिन नहीं होगा।"

पहले तो मल्लिका इस बात के लिए अपने को तैयार नहीं कर सकी। कई दिन के विचार-विमर्श के पश्चात् वह अपने मन को महाराज से मिलने पर मना सकी।

अमितपुर के दुर्ग में महाराज मुरहारी विक्रम बहुत उदास चित्त रहता था। उसने अपनी माँ से महारानी पद्मावती तथा अपने लड़के को माँगा था। राजमाता ने महामात्य की सम्मति से ऐसा करने से इन्कार कर दिया। पद्मावती और वैशाली के सेठ सुमेर पर अभियोग चलाया गया। दोनों को अवध-राज्य के नष्ट-भ्रष्ट करने का अपराधी पाया गया और दोनों को आजन्म कारावास की आज्ञा हुई।

इस सूचना पर महाराज मुरहारी विक्रम के मन को भारी आघात पहुँचा। जो कलाकार उसके मनोरंजन के लिए वहाँ जाते थे, उनसे महाराज का झगड़ा हो जाता था। उपनिषदों और रामायण कथा में भी महाराज के मन को शान्ति नहीं मिल रही थी।

इस समय मल्लिका वहाँ पहुँची। परन्तु महाराज ने उसके आने की

सूचना पा, मिलने से इन्कार कर दिया। इस पर भी मल्लिका मिलने गई।

मल्लिका को देख महाराज को क्रोध चढ़ आया। उसने कहा, "देखो मल्लिका! मत समझो कि मैं मूर्ख हूँ। भानुमित्र से मिलकर तुमने जो षड्यन्त्र किया है, मैं उसको भली भाँति समझता हूँ।"

मल्लिका ने महाराज के विकृत मुख को देख कहा, "देखिये महाराज! आपको मूर्ख किसी ने नहीं कहा। आपके मस्तिष्क में भ्रान्ति हो रही है। आप मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र मान भूल कर रहे हैं।"

"तुम यहाँ क्यों आई हो?"

"श्रीमान की इस रुग्णावस्था में सेवा करने के लिए।"

"तो तुम भी मुझे बीमार समझती हो?"

"अपना मुख दर्पण में देखिये। मुझे उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।"

"यह तो उस पाजी भानुमित्र के कारण हुआ है।"

"श्रीमान्! उस पाजी ने तीन बार आपके राज्य की रक्षा की है। अब आपके सुपुत्र का लालन-पालन कर रहा है। अन्यथा वह आज मगध राज्य का महामात्य हो सकता था।"

"तो तुम समझती हो कि यह सब-कुछ उसने मेरे लिए किया है? मैं जानता हूँ, उसका तुम्हारे साथ क्या सम्बन्ध है। यह सब उसने तुम्हारे लिए किया है।"

"यदि मेरे लिए किया भी मान लिया जावे तो क्या हानि है? मैं भी तो आपका और अवध राज्य का अंग ही हूँ।"

"न, मेरी तुम कुछ नहीं हो। अब चली जाओ। मेरा क्रोध और अधिक न बढ़ाओ। कहीं ऐसा न हो कि मैं तुम्हारी हत्या कर बैठूँ।"

मल्लिका इस विकृत मानसिक अवस्था को देख चुपचाप बैठी रह गई। महाराज को उसे वहाँ देख क्रोध बढ़ता ही गया।

: २० :

मल्लिका मुरहारी विक्रम के चित्त को शान्ति नहीं दे सकी। उसे अपने

बन्दी होने का बहुत दुःख था। पद्मावती के वियोग ने तो उसे पागल बना रखा था। इससे उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन बिगड़ता जाता था।

मल्लिका ने बहुत यत्न किया कि वह पुनः उसके चित्त को प्रसन्न कर उन्हें राज सम्हालने योग्य बना सके। परन्तु मुरहारी विक्रम के मन में यह बात बैठ चुकी थी कि मल्लिका भानुमित्र से अनुचित सम्बन्ध रखती है और भानुमित्र ने उसे दुःखी करने के लिए उसे वहाँ भेज रखा है।

मल्लिका दिन-प्रतिदिन महाराज से घृणा करने लगी थी। यद्यपि वह भारतीय नारियों की परम्परा को जानती थी कि एक स्त्री को किसी भी परिस्थिति में पति की सेवा करनी चाहिये, इस पर भी वह गान्धार-निवासिनी होने के कारण कभी-कभी इस मूर्ख अथवा धूर्त पति को त्यागने पर उद्यत हो जाती थी।

एक दिन घटना ऐसी हुई कि तिनका टूटे बिना नहीं रहा। भानुमित्र ने मुरहारी विक्रम को एक पत्र लिखा था, जिसमें महाराज कुमार के एक वर्ष के होने पर बधाई भेजी थी। महाराज ने मल्लिका को पत्र दिखाया। मल्लिका ने पत्र पढ़ बिना किसी प्रकार का भाव प्रकट किये पत्र लौटा दिया।

"क्यों हृदय में धड़कन नहीं होती यह देख कर?"

"होती है, श्रीमान्!"

"भला बताओ तो, क्यों होती है?"

"अवध के महाराज कुमार के शुभ समाचार से हृदय प्रफुल्लित होना ही चाहिये।"

"महाराज कुमार के शुभ समाचार से अथवा अपने उपपति के पत्र को देख कर?"

"कितनी विकृत मनोवृत्ति है आपकी!"

"सत्य कहता हूँ, इस कारण न।"

"यह झूठ है।"

"मैं झूठा हूँ, ओ दुष्टा? मुझे ठग नहीं सकती। बताओ तुम भानुमित्र से प्रेम करती हो या नहीं?"

"प्रेम ?" मल्लिका ने माथे पर त्योरी चढ़ा कर कहा, "हाँ मैं उससे प्रेम करती हूँ और तुमसे घृणा करती हूँ परन्तु··· ।"

इससे आगे मल्लिका कुछ कह नहीं सकी। मुरहारी विक्रम ने समीप पड़े चान्दी के पानदान को उठा उसके सिर पर दे मारा। साथ ही कहा, "तो यह लो जाओ, उससे प्रेम करने के लिए स्वतन्त्र हो जाओ।"

मल्लिका चीख मार अचेत हो गई। मुरहारी विक्रम ने समझा कि वह मर गई है अथवा मरने ही वाली है। इससे उसकी टाँग पकड़ उसे घसीट कर अपने आगार के बाहर फेंक दिया। मल्लिका के रक्त से आगार की भूमि लाल हो गई थी।

सेवकों ने मल्लिका को अचेत देखा तो उसे उठाकर ले गये। मुरहारी विक्रम पर नियुक्त वैद्य को बुलाया गया तो उसने सिर में से बहते रक्त को रोका और दिन-भर के प्रयत्न के पश्चात् उसे सचेत कर दिया।

जब मल्लिका स्वस्थ हो गई तो उसके मन में मुरहारी विक्रम के प्रति ग्लानि इतनी प्रबल हो गई कि वह एक दिन दुर्ग से निकल असीम संसार में विलीन हो गई।

भानुमित्र को इस घटना का पता चला तो बहुत दुःखी हुआ। उसने मल्लिका को ढूँढने के लिये गुप्तचर चारों ओर दौड़ाये, परन्तु सफलता नहीं मिली।

गांधी युग पर

श्री गुरुदत्त के पाँच अनुपम उपन्यास

१९४२ में श्री गुरुदत्त जी का प्रथम उपन्यास 'स्वाधीनता के पथ पर' छपा। छपते ही इस उपन्यास ने श्री गुरुदत्त जी को श्रेष्ठ उपन्यासकारों की श्रेणी में ला बैठाया। सब ओर से इस उपन्यास की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी। इसके पश्चात् १९४४ में इसी शृङ्खला में आपका दूसरा उपन्यास 'पथिक' प्रकाशित हुआ। इन दोनों उपन्यासों ने हिन्दी-उपन्यास-जगत् में एक नवीन क्षेत्र को जन्म दिया। हिंसा-अहिंसा तथा हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर विवेचनात्मक उपन्यास इससे पहले किसी ने नहीं लिखे थे। इन दोनों में विषय की पकड़ और उसका विश्लेषण ऐसा था कि लेखक के विचारों से मतभेद रखने वाले भी, उसके समझने में भूल नहीं कर सकते थे। विषय के विवेचन के साथ-साथ रोचकता किसी भी उच्च कोटि के उपन्यास के तुल्य ही थी।

तदनन्तर १९४९ में इसी शृङ्खला का तीसरा उपन्यास 'स्वराज्य-दान', १९५२ में चौथा 'विश्वासघात' और १९५३ में पाँचवां 'देश की हत्या' प्रकाशित हुए। इस प्रकार लेखक ने १९२१ से लेकर १९४७ तक, जो भारतवर्ष में गांधी युग के नाम से विख्यात है, की पृष्ठभूमि पर अपने ये पाँचों उपन्यास लिखकर, जहाँ अपने विचार इस काल के विचार-संघर्ष पर व्यक्ति किये हैं, वहाँ इस काल में देश की प्रगति का दिग्दर्शन भी कराया है। इस पर भी ये उपन्यास कला के नाप-तोल से उत्कृष्ट उपन्यासों में गणना पाते हैं।

'स्वाधीनता के पथ पर' में कथा उस काल से आरम्भ होती है, जब महात्मा गांधी ने अपना असहयोग आन्दोलन वापिस ले लिया था और

उसके फलस्वरूप देश में निराशा उत्पन्न हो गई थी। महात्मा जी ने यह आशा दिलाई थी कि एक करोड़ रुपया और एक करोड़ स्वयंसेवक मिल जाएँ तो वे भारत को एक वर्ष में स्वराज्य ले देंगे। एक करोड़ रुपया मिल गया और स्वयंसेवक भी भारी संख्या में मिले। स्वयंसेवकों के आँकड़े नहीं हैं और कोई नहीं कह सकता कि कितने भर्ती हुए। महात्मा जी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया। इसका अर्थ यही है कि आन्दोलन के लिए पर्याप्त स्वयंसेवक थे। 'चौरी चोरा' में कुछ लोगों ने, जो कदाचित् स्वयंसेवक नहीं थे, एक पुलिस चौकी को आग लगा दी, जिसमें कुछ पुलिस के कर्मचारी जल कर मर गए और महात्मा जी के विचार में देश में वह अहिंसात्मक प्रवृत्ति नहीं बनी, जिसको वे चाहते थे। इस कारण उन्होंने आन्दोलन वापिस ले लिया।

यह आशा कि एक वर्ष में स्वराज्य मिल जावेगा, जितनी बड़ी थी, उतनी ही अधिक निराशा हुई। इसका परिणाम हुआ हिंसात्मक क्रान्तिकारी दलों का बनना। इन दलों का दलन पश्चात् महात्मा जी के 'नमक-कर' सत्याग्रह के अवसर पर हुआ।

नमक सत्याग्रह भी उसी प्रकार असफल रहा, जैसे असहयोग आन्दोलन। न स्वराज्य मिला, न नमक-कर हटा और न अन्य कर कम हुए। नमक सत्याग्रह ने दो बातें कीं। एक तो क्रान्तिकारी दलों की अन्त्येष्टि कर दी। सब युवक जो देश के लिए अपनी जान से खेल सकते थे, कांग्रेस में सम्मिलित हो गए और जो कुछ अन्य थे, वे जेलों में बन्द हो गए और फाँसी के तख्तों पर झूल गए।

दूसरा प्रभाव नमक-कर सत्याग्रह का यह हुआ कि मुस्लिम लीग, जो मृतप्राय: संस्था थी, बल पकड़ गई। इसके बल पकड़ने में मुख्य कारण था महात्मा जी का बार-बार कहना कि बिना मुसलमानों के सहयोग के स्वराज्य नहीं मिल सकता और वे इस सहयोग को प्राप्त करने के लिए 'ब्लैंक चैक' तक देने को तैयार हो गए।

मुसलमानों को महात्मा जी के 'ब्लैंक चैक' पर इतना विश्वास नहीं हुआ, जितना ब्रिटिश सरकार की ईमानदारी पर। परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों ने वही किया, जो ब्रिटिश सरकार चाहती थी। अर्थात् हिन्दुओं

के विरुद्ध जहाद बोल दिया। अवस्था बिगड़ती गई। इस हिन्दू-मुसलमानों के परस्पर बिगड़ते सम्बन्धों के दिनों की पृष्ठभूमि पर लेखक का दूसरा उपन्यास 'पथिक' लिखा गया।

सन् १९४१ में मुस्लिम लीग ने घोषणा की कि वे पाकिस्तान चाहते हैं और कांग्रेस ने घोषणा की कि देश का विभाजन नहीं होगा। किस प्रकार १९४२ के 'क्विट इण्डिया' आन्दोलन में मुस्लिम सहयोग प्राप्त करने के लिए मौलाना आजाद ने, जो उस समय कांग्रेस के प्रधान थे, कांग्रेस की घोषणा का विरोध कर, पाकिस्तान की आशा मुसलमानों को दिलाई और फिर 'क्विट इण्डिया' आन्दोलन के पहले तथा पीछे महात्मा जी तथा कांग्रेस की मुसलमानों से सौदेबाजी की हिन्दुओं के मन में प्रतिक्रिया, यह है श्री गुरुदत्त जी के इस शृङ्खला के तीसरे उपन्यास 'स्वराज्यदान' की पृष्ठभूमि। उस समय देश में कांग्रेस और मुसलमान, दोनों की नीति से पृथक् रहकर स्वराज्य प्राप्ति की भावना जागृत हो उठी थी, परन्तु कई कारणों से उस भावना के अधीन किसी योजना के बनने से पूर्व ही ब्रिटिश सरकार ने स्वराज्य देने का निश्चय कर लिया।

सिमला में 'वेवल कान्फ्रेन्स' हुई और महात्मा जी का असत्य दावा कि कांग्रेस मुसलमानों का भी प्रतिनिधित्व करती है, इस कान्फ्रेन्स के असफल होने में कारण हुआ। लार्ड वेवल ने इस दावे की परीक्षा के लिए चुनाव साधन बनाया। १९'४६ के चुनाव में कांग्रेस को ९८ प्रतिशत हिन्दू वोट मिले और केवल दो प्रतिशत मुसलमान वोट। परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग मानी गई। कांग्रेस को, लोग, जो उसकी मुस्लिम तुष्टिकरण नीति का विरोध करते थे, बार-बार कहते थे कि वस्तुस्थिति को समझकर अपनी माँग का आधार निश्चय करें। परन्तु १९४६ में महात्मा जी के और उनके द्वारा कांग्रेसी नेताओं के मस्तिष्क में वह गड़बड़ मची जिससे डायरेक्ट एक्शन ने उनके छक्के छुड़ा दिए। वे हिन्दुओं से किये गए वचन को भूल गए। यह है "विश्वासघात" की पृष्ठभूमि।

१९४७ में देश का विभाजन हुआ। देश-विभाजन के तुरन्त पूर्व तथा

पश्चात् पाकिस्तान बनने वाले क्षेत्रों में हिन्दुओं के साथ क्या-क्या हुआ और उसके उत्तर में महात्मा जी ने क्या कहा और किया, यह है 'देश की हत्या' की पृष्ठ-भूमि। इस-गांधी युग का अन्त अति दुखद् रूप में हुआ और इस दुःख में ही श्री गुरुदत्त जी के इस युग के पाँचवे उपन्यास की दुःखान्त कथा समाप्त हुई।